मनोरंजन पुस्तकमाला-२८

लेखक

दुर्गाप्रसाद सिंह एल० ए-जी०

संशोधक

पं० प्यारेलाल गर्ग

(अध्यापक कृषि कालेज, कानपुर)

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

द्वितीय बार]　　१९२८　　[मूल्य १।)

श्रीगणेशाय नमः

पूर्वाभास

कृषि इस पुण्यभूमि भारतवर्ष का प्रधान व्यवसाय सहस्रों वर्ष से चला आता है। इस पुनीत व्यवसाय से करोड़ों जीवों का पालन-पोषण होता है जिसमें विद्वान्, राजा, रंक, चतुर, मूर्ख सभी शामिल हैं। भारतवर्ष की कृषि की अवस्था किसी समय उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँची हुई थी जिसके चिह्न अभी तक वर्तमान हैं। धरती को साफ करना, उसको कई बार जोतना, अच्छा बीज बोना, कृषक अभी तक भूल नहीं गए हैं।

पैरी पर पशुओं द्वारा भूसा और दाना अलग करना, ओसाई, निराई तथा पानी में सनई या पटुए को भिगोकर उसके डाँठ को पानी पर पीटकर सन सरल रीति से अलग कर लेने की रीतियाँ आज तक विद्यमान हैं। इन सुगम और सरल अनेकानेक रीतियों को बिना विद्या और गुण के एक दिन में किसी ने स्थापित न कर लिया होगा। इन मंत्रों के सिद्ध करने में बहुत समय लगा होगा क्योंकि आज दिन लों दुःखी दरिद्र धनी सभी कृषक इनके आश्रित देखे जाते हैं।

परंतु समय तथा आवश्यकताओं में अंतर पड़ने से यदि ऐसे लोग आजकल के कृषि-व्यवसाय में उन्नति के प्रयोगों को नुमाईशी, और आडंबरपूर्ण कहें तथा मशीनों के प्रयोग के संबंध में शंका प्रकट करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। समय के परिवर्तन से प्राकृतिक, राजकीय और व्यापारी अवस्था में घोर अंतर पड़ जाता है।

हमारे यहाँ के लोग प्राय: गाँव में रहकर खेती करते चले आए हैं। प्रति ग्राम के पुनीत स्वर्गतुल्य जीवन-वृत्तांत की कथा विस्तीर्ण है। रही सही शिक्षा-रहित यादगार भी इस पुण्य-भूमि के उच्च आदर्श की याद दिलाती है। हर गाँव की आवश्यकता के अनुसार जो कुछ वहाँ उत्पन्न होता था उससे लोग अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करते थे। करीब करीब हर एक गाँव अपनी आवश्यकता पूर्ण कर लेता और संतुष्ट रहता था। अब हर गाँव में नाना प्रकार की वस्तुएँ, जो उस गाँव में उत्पन्न नहीं होती हैं, आती हैं और गाँव अपनी आवश्यकता से बची वस्तु बाहर भेजता है। आवा-गमन के सुभीतों की बरकत से काल-पीड़ित क्षेत्रों में अनाज और पशु-भोजन घास तथा भूसा पहुँचाया जाता है।

परंतु अनेक कारणों से कृषि की बहुत कुछ अवनति हो गई है तथा पशुओं की अवस्था संतोषजनक नहीं है। साथ ही कृषि-विभाग के उपयोगी अनुभवों ने सिद्ध कर दिया है कि इस देश में कृषि-कार्य्य और कृषि-विद्या के प्रचार का बड़ा

क्षेत्र है। विद्वान्, दूरदर्शी और लोकहितैषी सज्जनों ने इस उपयोगी और पुनीत कार्य्य की महत्ता विचारकर सरकार का हाथ बटाया है और इस ओर वे दत्तचित्त हुए हैं।

प्रजा को बाधित करना, अर्थात् पीड़ा देना, उन्नति नहीं है। उनको इस विद्या का चाव उत्पन्न कराके इसकी ओर प्रवृत्ति कराना, उनमें परिश्रम का अभ्यास कराके, उनको उचित रीति से और उचित समय पर अपना कार्य्य करने को प्रेरित करना जिससे उनको अपने परिश्रम का फल प्राप्त हो, उन्नति का मूल मंत्र है। मुकद्दमेबाजी की बुरी आदतें, भूलभुलैयाँ की सी निविड़ पेंचदार कार्रवाइयाँ, षड्यंत्र, घर की बरबादी, विद्या का अभाव, लागडाँट, ऊपरा-चढ़ी में समय का नष्ट करना, शराब और गाँजा इत्यादि तथा उनके सहायक दुर्व्यसन, शौकीनी के निविड़ और नाजुक रास्ते पर अपनी शुद्ध और कष्ट से प्राप्त की हुई सम्पत्ति की आहुति देना, कृषि पर कुठाराघात करना है। इस ओर से शुद्ध पथ पर आकर परिश्रम से शुद्ध जीवन निर्वाह करना कृषि में उन्नति का मार्ग है।

शुद्ध और पुनीत नीअत कृषि में अत्यंत बरकत देती है। इससे ईश्वर पर विश्वास करके अपने कर्तव्य से मुँह न मोड़ना चाहिए। समय पर संतोष और परिश्रम से अपना कार्य्य करना उचित है।

शिक्षित समाज के महानुभाव प्रायः कृषि की ओर से नाक भौं सिकोड़ना अपनी मर्य्यादा समझते हैं। इसकी ओर

नजर करना वे अपनी मानहानि ही समझते हैं। विद्या-विहीन कृषक से बात करने में उनका सिर दर्द करता है, उन्हें चक्कर आने लगता है, यदि काम पड़ने पर पीछा छूटा तो 'जान बची लाखों पाए' की हालत होती है। शिक्षित और अशिक्षित एक दूसरे से तने और खिंचे रहते हैं। कृषि का रोजगार मोटा और भद्दा कहकर उसका तिरस्कार किया जाता है। इन आशा-स्तंभों से निराशा ! कृषि की कैसे उन्नति हो !

अनुभव ने पहले से और पुनः इस कठिन युद्ध ने इस पुनीत और आवश्यक व्यवसाय की महत्ता स्थापित कर दी है।

पूर्व समय से प्रायः लोग गांव इलाका खरीदने में अपना रुपया लगाना लाभदायक समझते आए हैं। परंतु उसका प्रबंध उपर्युक्त कारणों और अवस्थाओं में कारिंदों की अवस्था के अनुसार चला आया है। अपने अज्ञान से केवल इलाके की आमदनी की तादाद के उसकी पूरी हालत मालूम नहीं होती और न तो उसमें विशेष दिलचस्पी ली जाती है।

कृषि की उन्नति इन अवस्थाओं में कृषि के उचित ज्ञान द्वारा ही हो सकती है। यह ज्ञान पुस्तक द्वारा नहीं आ सकता। समय समय पर खेतों में जाना होगा। नेत्रों से देखना होगा कि किस समय कौन सा काम कैसे और कब किया जाता है।

यह मूल मंत्र हृदय-पट पर स्वर्णाक्षरों में अंकित रहे कि 'हर काम के करने की रीति होती है'। यह रीति विद्या

द्वारा प्राप्त होती है। छोटे से छोटे काम के करने की विद्या होती है। काम की विद्या सब लोग नहीं रखते। जो विद्या-विहीन होता है वह धोखा खाता है। रस्सी बनाना, रस्सी से पगहा बनाना, गँडास चलाना इत्यादि सरल काम हैं परंतु सब लोग इनको नहीं कर सकते! उन्हें क्यों करना नहीं आता!! यदि किसी से यह करवाना हो तो, जब स्वयं ही नहीं जानते उसे सिखलावें कैसे!!

झाड़ू देना एक सरल काम है। एक मनुष्य से झाड़ू देने के लिये कहा गया। उसने झाड़ू दी। परंतु उसको झाड़ू देने नहीं आता था। झाड़ू तो दी पर काम ठीक न कर सका, फर्श पर बहुत सी गर्द रह गई, बीच बीच में जहाँ झाड़ू बराबर नहीं पड़ी थी गर्द देखकर बुरा मालूम होता था!! इसी काम को एक जानकार आदमी से कराया गया। उसने कितनी सफाई, सरलता और जल्दी से बिना परिश्रम फर्श साफ कर दिया!!!

केवल पुस्तक पढ़ना और गढ़ी, छीली, साफ सुथरी भाषा लिखकर उच्च विद्या प्रगट करना विद्या नहीं है, और न इसी पर विद्या खतम हो जाती है। झाड़ू देना, जूता सीना, भोजन बनाना, इत्यादि भी विद्या के आश्रित हैं। इन उपयोगी कामों का, जिनको हमें हर वक्त काम पड़ता है, भली भाँति सीखना, न आवे तो पुनः सीखना, फिर फिर सीखना उपयोगी विद्या है, जो समय पर गुणकारी होती है। हम

रोज उस काम को छोटा समझकर न करें अथवा उसे करने की आवश्यकता हमको उससे महान् कामों के आगे न पड़े, परंतु इन कामों को जानना और हर व्यक्ति को जिसे ये काम पड़ें उसे अच्छी तरह सिखाना हमारा कर्तव्य है। उठते बैठते जो काम हम देखते हैं उन पर हमें विचार करना चाहिए कि कितने आदमी उस काम को जानते हैं और अच्छी तरह कर सकते हैं। यह विद्या-प्रचार बिना स्कूल के ही होता है और बड़ा गुणकारी है। ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और हर प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है।

कृषि की उन्नति में लोग प्रायः अपने तत्कालीन लाभ ही को उन्नति समझकर उसको तृष्णा के साथ ढूँढ़ते हैं। अधिक परिश्रम ही से केवल यह लाभ नहीं मिल जाता। उसकी रीति और उस काम के करने की विद्या जब तक प्राप्त नहीं कर ली जाती, इच्छित फल नहीं प्राप्त होता। विचारवान् और विद्यावान् पुरुष अपने नेत्रों से देखता रहता है और सोच विचार से उस काम के करने की रीति निकाल लेता है।

कृषि की उन्नति में कृषि का प्रबंध और उसकी रीति का भी पता रखना चाहिए।

उदाहरणार्थ एक रियासत को लीजिए। यह देखना चाहिए कि यहाँ के कृषक अच्छी रीति के अनुसार पूर्ण परिश्रम से कृषि करते हैं? आलसी तो नहीं है? धनाभाव से कृषि के पात्र, बीज और बैल, तथा मजदूरी की मदद का अभाव

तो नहीं है ? पानी मिलता है या नहीं ? यदि ये बातें हैं तो प्रबंध में तो खराबी नहीं है, रिआया मुकद्दमेबाजी तो नहीं करती, हिसाब किताब सही रखा जाता है, रिआया पीड़ित तो नहीं है। यदि कृषि का ज्ञान होते हुए स्वयं मौके पर जाकर कोई साधारण बुद्धि का व्यक्ति इनके कार्य्य और कारणों के प्रश्न करेगा तो उसके उत्तर मिलने के लिये उसे अधिक न ठहरना पड़ेगा। बहुत सी बातें जो दूर से विचित्र, पेचीदा, मालूम होती हैं वे स्थान पर सरल और साधारण प्रतीत होती हैं।

इस पुस्तक में कृषि करने की साधारण रीतियों का जो इस प्रांत में व्यवहृत हो रही हैं, दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की गई है।

पाठक इन बातों को अपने सफर में तथा अपने पास के गाँव में देखकर अनुभव प्राप्त करके अपने बंधुओं के उत्साह को बढ़ावेंगे। उनको ज्ञात होगा कि किस कष्ट से मिट्टी से अन्न वस्त्र उत्पन्न होते हैं। सजे हुए कमरों में अथवा खस की टट्टियों तक में खेतों और उनकी उपज से संबंध नहीं टूटता। अधिक और अधिक ज्ञान से हम एक दूसरे के सुख को बढ़ा सकते हैं।

कृषि से अनेक विद्याओं का संबंध तथा उनके द्वारा कार्य का वर्णन यथास्थान पर किया गया है। इसके पूर्व हमको याद रखना चाहिए कि मानसिक और व्यावहारिक विद्या का काम जीवन-यात्रा में हर जगह पड़ता है। साधारण कृषक इसको नहीं जानते और न जान सकते हैं। अच्छी तरह काम

की पतवार को चलाने के लिये इनका जानना लाभदायक होता है। विद्वान् और परिश्रमी परंतु उत्साहहीन तथा मूर्ख और डरपोक व्यक्ति अधिक काम नहीं कर सकता। कार्य-क्षेत्र में कार्य्य-कुशल और साहसी पुरुष का काम पड़ता है। जिसका जीवन शुद्ध है, जो पुनीत कार्य्य का व्यवसायी है उसे किसी का क्या डर है। बड़ों के बीच में बैठने और यात्रा करके जगह जगह कार्य्यों को देखने और उन पर विचार करने से कोई व्यक्ति कार्य्य-कुशल हो सकता है। बाजार का आदमी गांव के रहनेवालों से अधिक जानता है, क्योंकि वह हर प्रकार के पुरुषों से संबंध रखता है। अल्पज्ञानी से अज्ञान अच्छा होता है। विचारों में प्रौढ़ता तथा ज्ञान की अधिकता द्वारा मनुष्य उच्च पद को प्राप्त होता है। आज दिन हर गाँव या उसके आस पास ऐसे व्यक्ति पाए जाते हैं जिनके शुद्ध जीवन और कार्य्य-कुशलता द्वारा अनेक व्यक्तियों को फायदा पहुँचता है। उनमें अभिमान का लेश नहीं, वे सरल रीति से काम को काम के हेतु करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

पूर्व पीढ़ी के ऐसे सरल शुद्ध आचरणयुक्त व्यक्तियों के सीमाबद्ध ज्ञान के आगे नवीन रोशनी के लोग अपने ज्ञान से परिपूर्ण होकर अधिक उन्नति कर सकते हैं।

विनीत

दुर्गाप्रसाद सिंह

विषय-सूची

कृषि-कौमुदी

—▸▸◂◂—

पहला परिच्छेद

कृषि

कृषि पर विचार करने से ज्ञात होता है कि जब से मनुष्य ने सभ्यता की ओर धीरे धीरे उन्नति करना प्रारंभ किया तभी से उसने पहले पहल अपना ध्यान कृषि की ओर दिया। आदि में वह जंगल के कंद, मूल, फल ही पर अपना जीवन-निर्वाह किया करता था, परंतु उनका मिलना सब समय निश्चित न था। समय तथा स्थान के अनुकूल होने पर उसे वे प्राप्त होते थे। इस कारण उसने पशु-पालन पर अवलंबन किया। कुछ समय व्यतीत होने पर उसे कृषि-कर्म्म के तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त हुआ और राबिनसन क्रूसो के दानों के समान उसने अपने शस्यों को बोना और बढ़ाना आरंभ किया। उसने शिकार के अनिश्चित कर्म्म को भी छोड़कर कृषि की ओर अधिक ध्यान दिया। कुछ समय तक वह पत्थर के औजारों पर आश्रित रहकर कृषि करता रहा पर जब धातु के औजार बने तब उसने पत्थर के औजारों को त्यागकर उनसे सहायता ली।
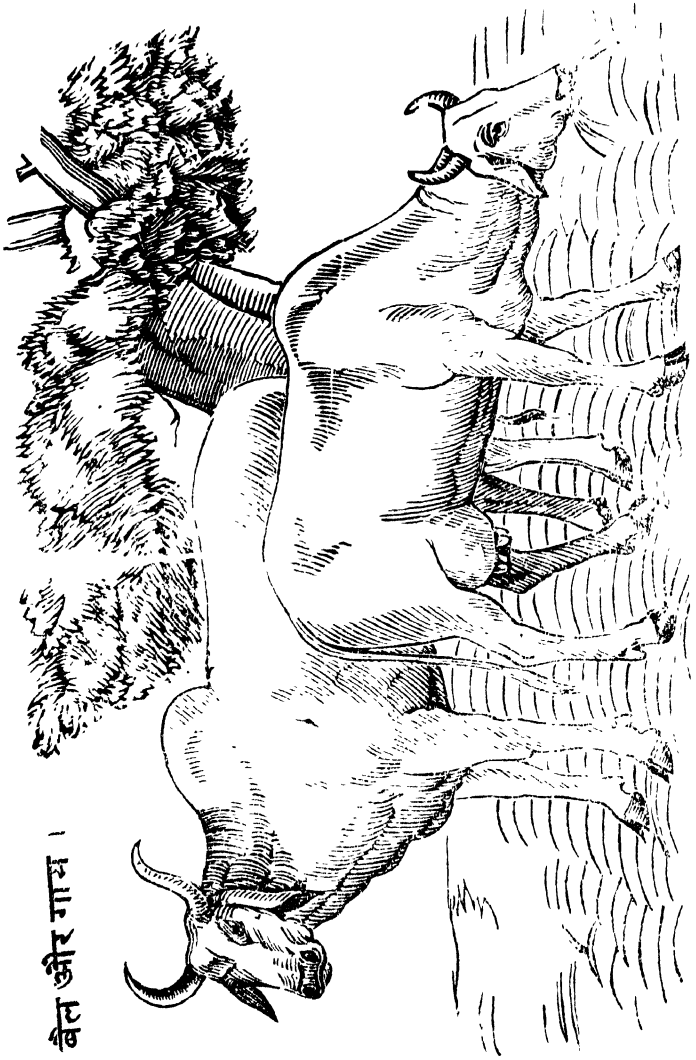
बैल और गाय ।

क्रमशः धातु के औजारों और कृषि-संबंधी विचारों की उन्नति होती गई, यहाँ तक कि आज बिजली और भाप की सहायता अनेक कृषि-कर्म्मों में ली जाती है, उनसे पानी उठाया जाता है, हल चलाए जाते हैं, दाना माड़ा जाता है, शस्य काटे जाते हैं इत्यादि। कृषि की पैदावार निश्चित करने के लिये कृषि के तत्त्वों पर विचार करके पौधों की आवश्यकता के अनुसार खादों का प्रयोग किया जाता है। जहाँ एक पत्ती पैदा होती थी वहाँ दो पत्ती पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है। जहाँ दस मन पैदावार थी वहाँ बीस मन की आशा की जाती है। भारतवर्ष में सबसे प्राचीन दशा की रीति पर कृषि करनेवाले मध्य देश के असभ्य गोंडों तथा भीलों की प्रथाओं से लेकर प्रयोगक्षेत्रों (Experimental Farms) में अथवा शिक्षित जमींदारों के यहाँ वैज्ञानिक रीति पर खेती की रीतियों तक की प्रथाएँ देखने में आती हैं। हर साल बहुत सी जमीन जोत में बढ़ती चली जाती है और अधिक शस्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है।

कृषि-कर्म्म से आशय पृथिवी को जोतना है। परंतु साधारण रीति से कृषि कर्म्म में उन सब कर्म्मों की भी गणना है जिनसे पृथिवी से वनस्पति तथा पशुओं से पशु-पदार्थ अर्थात् घी, दूध, मक्खन, ऊन इत्यादि उत्पन्न हो सकें। इसमें खेत संबंधी तथा पशु-पालन संबंधी अनेक क्रियाएँ सम्मिलित हैं। भोजन के पदार्थ, वस्त्र के पदार्थ, रंग इत्यादि, पौधों तथा पशुओं के द्वारा प्राप्त होते हैं। पौधे पृथिवी पर उत्पन्न होते हैं और पशु

उनके भोजन पर आश्रित रहते हैं। गेहूँ, चावल, रूई, नील, शक्कर, पौधों से प्राप्त होते हैं। दूध, मक्खन, घी, रेशम, ऊन पशुओं से प्राप्त होते हैं।

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। यहां दस में छः आदमी केवल कृषि पर आश्रित हैं; बाकी चार में से कुछ व्यवसायी, दस्तकारी तथा व्यापार और वाणिज्य करनेवाले हैं: एक उनमें से पढ़ा लिखा और अनस्थिर रोजगार नौकरी-चाकरी पर आश्रित है। यहाँ कुछ जातियाँ—जो कृषि में निपुण समझी जाती हैं—जाट, काछी, कुर्मी, कोयरी, खटिक इत्यादि हैं. उच्च वर्णवालों की कृषि के प्रबंध का ढङ्ग मजदूरों के मिलने न मिलने के अनुसार बदलता रहता है। कुछ जातियाँ पशु-पालन में दक्ष हैं, जैसे गऊ और भैंस अहीर या ग्वाले और भेड़ या बकरी गड़रिये पालते हैं और उनकी सेवा टहल करते हैं, दूध बेचते हैं तथा घी और मक्खन निकालते हैं। कृषि करनेवालों को किसान, कृषक अथवा रैयत कहते हैं। कानूनी विभाग के अनुसार जमीं-दार और किसान स्वत्व में दो श्रेणियों में समझे जाते हैं। यदि व्यवसाय एक है, तो व्यवसाय के अनुसार उनमें कोई भेद नहीं। वर्ण-व्यवस्था के भेद के अनुसार कृषि करने से कृषि की उन्नति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। उच्च जातियाँ कृषि की मजदूरी बढ़ने से बड़ी बुरी दशा में पड़ जाती हैं। दस्तकारी की मजदूरी और कृषक की मजदूरी के मुकाबले का प्रश्न कृषि-कर्म के सामने उपस्थित है जो संपत्ति-शास्त्र का एक गूढ़ विषय है।

यों तो आधुनिक विज्ञान की वृद्धि की सहायता से मनुष्य सब प्रकार की वनस्पति, उनकी आवश्यकताएँ कृत्रिम रूप से एकत्रित करके उत्पन्न कर सकते हैं परंतु कृषि का मुख्य कर्तव्य पृथिवी से शस्य उत्पन्न करना है। कृषक का अभिप्राय सर्वदा यही रहता है कि मेरी धरती का बल कम न होने पावे और मैं बराबर शस्य पैदा कर सकूँ जिससे कुछ लाभ हो। कृषक के व्यवसाय को कृषि-कर्म कहते हैं। किसी समय भारतवर्ष में यह एक अत्यंत श्रेष्ठ कर्म समझा जाता था और उसके अनुसार एक कहावत भी प्रचलित है "उत्तम खेती मध्यम बान। निकृष्ट चाकरी, भीख निदान"। कृषि के आश्रित ज्ञानी, मूढ़, पंडित, धनी, दरिद्र, राजा, प्रजा सभी हैं और यह एक अत्यंत अहिंसात्मक व्यवसाय है। कृषि अमेरिका आदि देशों में जहाँ कि शिक्षा और धन की अधिकता है अब भी उसी आदर की दृष्टि से देखी जाती है जैसा कि उसका आदर पहले भारतवर्ष में होता था, जब कि यहाँ भी धन और विद्या का बाहुल्य था।

कृषिकार साथ ही साथ अपनी आवश्यकता के अनुसार पशु-पालन भी करता है। बाजारों के निकट कस्बों और शहरों में कृषक तरकारियों की खेती से अधिक लाभ उठा सकता है। इसी प्रकार वह दूध के व्यवसाय से भी अधिक लाभ की आशा कर सकता है। बाग लगाना कृषि के अंतर्गत है। उसमें पेड़ों की अधिक सेवा की आवश्यकता पड़ती है। फूल के बाग से मालियों

का संबंध है। बिक्री के अनुसार फूल से अधिक लाभ होता है। फल का व्यवसाय करके कृषक अपनी आमदनी बढ़ा सकता है, जैसे अमरूद, नीबू, नारंगी, शरीफा इत्यादि। बड़े वृक्ष—जैसे आम, जामुन, शीशम, बबूल—फल तथा लकड़ी के काम में आते हैं। कुछ काल की सेवा के बाद वे दीर्घ काल तक लाभ पहुँचा सकते हैं। भेड़ बकरी से, पालने की विधि के अनुसार; ऊन, दूध, मांस द्वारा लाभ की आकांक्षा की जाती है।

जो कर्म साधारण कृषक करता है अच्छा जमींदार उसे अधिक सुगमता तथा बड़े विस्तार से करके अधिक लाभ उठा सकता है। वह अपने कृषक की दशा सुधारने, उसे अच्छा बीज पहुँचाने, उसकी जमीन की उपयोगिता बढ़ाने में सहायता दे सकता है। जमींदारों के कृषि विद्या के तत्त्वों पर ध्यान देने से उनका बहुत लाभ हो सकता है। उनकी जमीन का अच्छा प्रबंध हो सकता है, उनकी आय बढ़ सकती है, अच्छी फसलें उत्पन्न हो सकती हैं, पैदावार अच्छी हो सकती है, नवीन और मूल्यवान् फसलों का चलन हो सकता है, जिनसे लाभ और सुगमता की वृद्धि हो सकती है।

कृषि-विद्या के अंतर्गत संसार की बहुत सी विद्याएँ हैं, जिनसे कृषक को काम पड़ता है। उसे रसायन से पृथ्वी और शस्य संबंधी तत्त्वों का ज्ञान होता है। वनस्पति और पशु-शास्त्र से उसे वनस्पति और पशु की बनावट, उत्पत्ति, बाढ़, रहन सहन इत्यादि उनके संबंधी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता

है। इंजिनियरी विद्या (Engineering) से कल और पुर्जों का ज्ञान होता है। सर्वे (Survey) से पृथ्वी की नाप और काट का काम चलता है। वायुशास्त्र (Meteorology) से आकाश की घटनाओं—आँधी पानी—का विवरण मालूम होता है। पशु और वनस्पति-रोगशास्त्र (Plant Diseases and Remedy) द्वारा उनके रोग, चिकित्सा और निदान का पता चलता है। कीटपतंगशास्त्र, भौतिकशास्त्र (Physics), गणित (Mathematic), रेखागणित (Geometry), हिसाब किताब, इत्यादि अनेक उपयोगी विद्याएँ कृषक को अत्यंत उपयोगी होती हैं।

यह हमें भली भाँति विचार करना उचित है कि कृषिविज्ञान-शास्त्र और जमींदारी का प्रबंध—ये दो अलग अलग विषय हैं। कृषि-विज्ञान में कृषि किस प्रकार उत्तम रीति से की जाती है अथवा उसका आदर्श रूप इस समय क्या है, इसके वर्णन करने की चेष्टा की गई है। जमींदारी का प्रबंध एक अन्य गूढ़ विषय है। यदि कृषि-विज्ञान का अच्छे से अच्छा विद्वान् प्रबंध में दक्ष नहीं है तो उसके व्यवसाय के लाभदायक होने में कसर रह जाती है।

बुरे प्रबंध से आय-व्यय का हिसाब नहीं रहता, आपस में लड़ाई झगड़ा हो जाता है, मुकद्दमेबाजी होने लगती है, रू किए हुए काम अधूरे अथवा बेकाम या अल्पायु होते हैं। कृषक को साधारण ज्ञान की वृद्धि से तथा जगह जगह घूमने वा यात्रा करने से इस काम में दक्षता प्राप्त हो सकती है।

———

दूसरा परिच्छेद

खेतों की परिचर्या

अच्छे या बुरे खेतों के अनुसार कृषिकार को हानि या लाभ होता है। यदि खेत उपजाऊ है, पानी निकट है, खेत समतल है, पानी का निकास उत्तम है, उसमें कंकड़ पत्थर नहीं हैं, काँस या पेड़ों की जड़ें और गहरी जड़ोंवाले पौधे नहीं हैं, पेड़ों की साया नहीं पड़ती है, रेह जमा नहीं होता है, जल-वायु अच्छा है, सिंचाई के लिये पानी मौजूद है, तो दैव की कृपा से विधिवत् खेती करने से खेती की पैदावार अच्छी हो सकती है तथा किसान और उसके पशु आनंदपूर्वक रह सकते हैं।

कृषि के प्रतिकूल जो जो बाधाएँ पड़ती हैं और जिनका निवारण हो सकता है, यथाशक्ति उनको हटाना चाहिए। इन बाधाओं के हटाने में यद्यपि व्यय और परिश्रम होता है परंतु ऐसा करने से खेत और अच्छी कृषि की सामग्रियाँ अनुकूल हो जाती हैं और धीरे धीरे लाभ से व्यय पूरा हो जाता है।

१—खेतों का बनाना

खेतों का स्थल—यदि धरती बिलकुल ढालू है या बिलकुल खड़ी है, तो उस पर कृषि नहीं हो सकती। यदि

ढाल काबू में लाने योग्य है तो सुविधा के अनुसार छज्जां अर्थात सीढ़ियों में काटने से खेती करने में बड़ी सुविधा होती है कुछ समय पश्चात् परिश्रम और लागत निकल आती है। ढाल
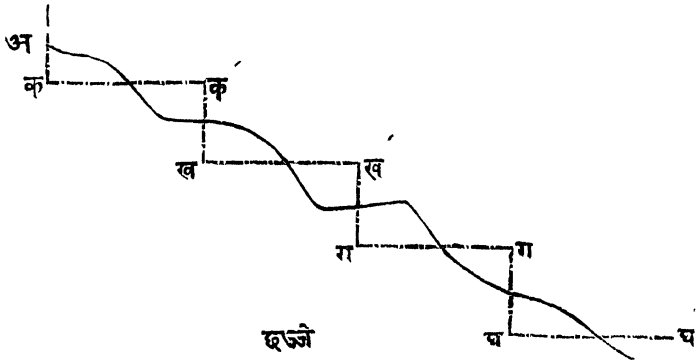
खेत पर पानी नहीं ठहरता, हल चलाने और पाटा देने तथा क्यारी बनाने में परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है। यह परिश्रम और कष्ट अधिक या कम ढाल के अनुसार अधिक या कम होता है। ढाल को छाँटकर उभरी हुई मिट्टी से निम्न स्थान को पाट देना चाहिए और एक, दो या तीन—जैसा अवसर हो—छज्जे या सीढ़ियाँ चौड़ाई में हल या पाटा चलाने की सुविधा के अनुसार बनानी चाहिएँ। इसमें दो या तीन समतल सीढ़ियों की धरती मिल जायगी। समतल धरती पर कृषि करना अच्छा होता है। पानी यदि ऊपर से लगता है तो बहुत सुभीता है, और यदि नीचे से ऊपर चढ़ाना है तो

ढालू स्थल की अपेक्षा समतल भूमि पर एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर सुगमता से पहुँचाया जा सकता है।

खेतों में गड्हों के, ऊभड़-खाभड़ धरती के, या बीच में छोटे छोटे मिट्टी के ढेरों के होने से कृषि-कर्म्म अच्छी तरह नहीं होता। इनसे कृषि-संबंधी यंत्रों पर दबाव पड़ता है और और वे टूट जाते या निकम्मे हो जाते हैं। नीची ऊँची धरती की अपेक्षा समतल धरती पर कृषि करना लाभदायक होता है। समतल धरती पर जोताई, बोआई, सिंचाई, कटाई इत्यादि कृषि-कर्म्मों में सुविधा होती है, पौधों को भोजन बराबर मिलता है और उनकी देख-भाल में आसानी होती है। इस प्रकार खेती के लिये चौरस धरती चाहिए। चौरस धरती पर आवश्यकतानुसार एक एक या दो दो बीघे के खेत बनाने चाहिएँ। खेतों के किनारे गाड़ियों के वास्ते सड़क बनाने की आवश्यकता नहीं। समतल खेत में शस्य काटने पर गाड़ी आ सकती है। सारी धरती जोत में लानी चाहिए। खेती जब बड़े क्षेत्रफल पर की जाती है तब सड़कें बनाने की आवश्यकता होती है। इनसे खाद, चारा आदि ढोने में सहायता मिलती है और बोए हुए खेतों की शस्य को हानि नहीं पहुँचती।

कंकड़ पत्थर इत्यादि—पहाड़ी जिलों की धरती में या जहाँ पर कोई मकान गिर पड़ा हो या खेरा रहा हो और धरती नई तोड़ी गई हो ऐसे स्थानों के खेतों में कंकड़, पत्थर, बजरी, ईंट इत्यादि वस्तुएँ मिलती हैं। उनसे खेतों की दशा

खराब हो जाती है, हल तथा फावड़ा, या कृषि के अन्य यंत्र निकम्मे हो जाते हैं, जोताई, खोदाई में अधिक परिश्रम और व्यय होता है। कहीं कहीं नीचे की धरती पोला रहती है। ऊपर जब दरारें फूटती हैं तो उनमें सिंचाई का जल भरता है और पानी का नुकसान होता है। धरती में कंकड़ पत्थर होने से पौधों की जड़ों का फैलने और भोजन प्राप्त करने में कठिनाई पड़ती है, और वे नहीं पनपते।

कंकड़ पत्थर यदि अधिक हैं और उन्हें हटाने में अधिक व्यय लगता हो तो उन्हें पहले खेतों के किनारे एकत्रित करना चाहिए जिससे जब तक वे हटाए न जायँ उनसे चारदीवारी का काम निकले। यदि थोड़े बहुत छोटे छोटे कंकड़ हैं तो उनसे खेतों को हानि नहीं पहुँच सकती, क्योंकि इनसे पृथ्वी खुल जाती है और उसमें हवा जाने का अच्छा सुभीता हो जाता है।

वृक्ष आदि—नई धरती का खेती के वास्ते तैयार करना एक बहुमूल्य कार्य है। नई धरती जब साफ और समतल नहीं होती तो उस पर खेती करने से लाभ का होना निश्चय नहीं होता। इसके लिये जंगलों तथा झाड़ियों का काटना और बड़े पेड़ों का गिराना आवश्यक हो जाता है। परन्तु उससे भी अधिक कठिन और मूल्यवान काम उनकी जड़ों का निकालना है। जड़ें बहुत दूर तक धरती में फैली हुई रहती हैं। उनसे कृषि के औजारों के चलने में बाधा पड़ती है तथा

बहुत सा भोजन-पदार्थ व्यर्थ नष्ट हो जाता है। पहाड़ों पर चाय और कहवा की खेती के लिये खेत बनाने में प्रायः इस कठिनाई का अधिक सामना करना पड़ता है, या मैदानों में उस समय जब कि बाग खेती के काम में लाए जाते हैं, अथवा जब खेतों के किनारे के पेड़ निकट होते हैं और बढ़ जाते हैं तब उस कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उनकी छाया से भी आस-पास की फस्ल मारी जाती है। इनके हटाने में यद्यपि व्यय अधिक पड़ता है, तथापि ऐसा कर देने से कृषि-कर्म निश्चित हो जाता है। कुछ समय में लाभ से व्यय पूरा हो जाता है।

हानिकारक पौधे, जिनकी जड़ें धरती के भीतर बहुत गहराई तक चली जाती हैं, अपना भोजन आस पास से खींचते हैं। कुछ पौधे जैसे काँस, बायमुरई प्रभृति बड़े वेग से बढ़ते हैं और खेतों पर अपना पूरा अधिकार जमा लेते हैं। उन्हें अकसर लोग ऊपर से काटकर फेंक देते हैं। पेड़ और पत्तियाँ तो अलग हो जाती हैं, पर जड़ धरती के भीतर मौजूद ही रह जाती है, जिससे थोड़े काल में पौधा फिर बढ़ जाता है। जहाँ तक जल्द हो सके उन्हें जड़ मूल से खोदकर निकाल बाहर कर देना चाहिए क्योंकि ऐसी हानिकारक वनस्पति को बढ़ने देना उचित नहीं है।

ऐसे पौधों में काँस एक घास है, जिसकी जड़ें बड़ी शीघ्रता से धरती में बढ़ती हैं। जब कभी यह किसी खेत में देख पड़े उसी दम उसे जड़ मूल से निकाल देना चाहिए, क्योंकि यदि

इनका रुकाव नहीं किया जायगा तो कुछ समय में ये खेत को घेर लेंगी और साधारण कृषिकार को इन्हें निकालना यदि असंभव नहीं तो अत्यन्त दुस्तर प्रतीत होगा। जिन खर पत-वारों की जड़ें धरती में गहराई तक गई हैं उनको प्रायः फावड़े, कुदाल और खुर्पी से निकालते हैं। इस काम के लिये नवीन कई प्रकार के हल और कलें भी बनाई गई हैं जिनके प्रयोग से मेहनत की बचत होती है।

रेह—रसायन-तत्त्व-वेत्ताओं ने पृथिवी की जाँच से यह सिद्ध कर दिया है कि धरती में बहुत से खार हैं, जो पानी में घुल जाते हैं। इनमें से बहुत से खार पौधों के भोजन के आवश्यक अंश हैं। उनके न रहने से पौधों को पूर्ण भोजन नहीं प्राप्त होता। जिस खार की पौधे को जितनी आवश्य-कता होती है यदि वह उन्हें न प्राप्त हो तो पौधे नहीं पनपते या मर जाते हैं और पृथिवी अनुपजाऊ हो जाती है। इन खारों का आवश्यक प्रमाण में होना लाभकारी होता है, पर इनका या इनमें से किसी एक का आवश्यकता से अधिक प्रमाण में होना हानिकारक है जिसके कारण पौधे न तो जमते और न बढ़ते हैं। इनमें से सोडा मुख्य है। यदि १००० में एक अंश से अधिक सोडा होता है तो वह पृथिवी के लिये हानिकारक होता है।

रेह इसी प्रकार के कई खारों के मिश्रण से बनती है, जिसके कारण बहुत सी धरती अनुपजाऊ हो जाती है। संपूर्ण भारतवर्ष में एक बहुत बड़ा क्षेत्रफल रेह के कारण कृषि के

अयोग्य पड़ा हुआ है। ऐसी धरतियों को कृषि के योग्य बनाना एक महत्वपूर्ण कार्य है और यह गहन समस्या कृषि-विज्ञान-वेत्ताओं के सामने उपस्थित है जिस पर वे विचार कर रहे हैं।

कुछ विद्वानों ने इसके विषय में प्रयोग किया है जिससे सिद्ध होता है कि यदि उस पृथिवी की, जिस पर रेह प्रभृति हानिकारक खार मौजूद हैं, रासायनिक मीमांसा कर ली जाय, जिससे यह ज्ञात हो जाय कि इस धरती में कितनी रेह है, अथवा अन्य खार के प्रमाण क्या हैं; आसपास की हालतों पर विचार कर लिया जाय, कि कोई नदी नाला या और पानी का कोई निकास है या नहीं; कई जमींदार लोग एकमत होकर सहायता पर तत्पर हों और काफी धन एकत्रित कर लिया जाय, तो रेह की धरती को उपजाऊ बनाने की यह रीति है, कि धरती को पानी से भर देवे और पानी का निकास किसी नाले या नदी द्वारा करे। इस प्रकार धरती की कुल रेह धुल-कर पानी के द्वारा बह जायगी और बार बार धोते धोते दस पंद्रह वर्ष में धरती धुल जायगी और रेह निकल जाने पर धरती कृषि के योग्य हो जायगी। क्रमशः ऐसी धरतियों से लाभ होने लगता है और कुछ काल में व्यय की पूर्ति हो जाती है।

थोड़े क्षेत्रफल के लिये जहाँ धरती की ऊपरी सतह में रेह पाई जाती है, कृषिकार ऊपरी सतह की धरती को खोद-कर बाहर फेंक देता है और गर्भतल की सतह पर खेती करता है। उसमें अधिक खाद देता है और पानी पहुँचाता

है। कहीं कहीं ऊपरी तल की धरती को पानी के बहाव से धोकर उसका रेह से भरा हुआ पानी किसी गड्ढे में बहा देते हैं। पूर्वोक्त महती प्रक्रिया का यह एक छोटा रूप है।

अथवा रेहयुक्त धरती में मेंड़ बाँधकर उसमें वर्षा का जल एकत्रित करते हैं, और जब पानी सूख जाता है तो रेह ऊपर की सतह पर जमा हो जाती है। इसके जमा करने में आसानी होती है। दो चार वर्ष बराबर ऐसा करते रहने से धरती इस योग्य हो जाती है कि उस पर पौधे जम सकें। इस अवस्था में कुछ वर्षों तक अधिक खाद देने की आवश्यकता पड़ती है। गोबर और घूर की खाद इस अवस्था में अच्छी होती है।

रेह की जमीनों के वास्ते ढाक* (जिसको पलाश का पेड़ कहते हैं), केला, बबूल, शीशम, झाऊ, सरपत, मदार प्रभृति पेड़ों का बोना लाभदायक होता है। रेहयुक्त धरतियों पर कुछ ऐसे पौधे उगते हैं जो खार में कमी करते हैं। उसे पंजाब में 'लाना'† कहते हैं और इस सूबे में "उसरहटा" घास कहते हैं। ऐसी घासें रेह प्रभृति खार में कमी करती हैं।

धान कुछ रेह रहने पर भी धरती में पैदा हो सकता है। कुछ वर्ष तक धान की खेती होने के पश्चात् मकई, ज्वार प्रभृति पौधों की खेती भी होने लगती है।

---

* Butea Frandosa.

† Salsola Soda Plant or Scientifically Salicornia Fruticosa (Pagson).

छाहों मारना—यदि खेतों पर आस पास के पेड़ों का साया पड़ता है तो उनके निकट के पौधे आरोग्य नहीं रह सकते और न अच्छी तरह से बढ़ते और न फूलते फलते हैं। इसका कारण यह है कि पौधों को काफी प्रकाश और धूप नहीं मिलती। पेड़ों की गहरी जड़ें कुछ दूर तक खेतों में नीचे नीचे पहुँची रहती हैं और पौधों का भोजन खींच लेती हैं। इस अवस्था में यदि पेड़ काट डाले जायँ तो समीप के खेतों को लाभ होगा। पर यदि किसी कारण से पेड़ न काटे जा सकें तो उनका साया निवारण करने के लिये यह रीति ग्रहण कर सकते हैं। खेत के पास जिस ओर पेड़ों का साया पड़ता हो उस ओर गड़हे खोदने चाहिएँ जिससे पेड़ों का साया गड़हों में रह जाय और दूर तक न फैल सके।

अनुपजाऊ, परती, बंजर और ऊसर धरतियाँ—फसलों के बोने से विदित होता है कि खेत उपजाऊ है या नहीं। यदि पैदावार अच्छी और पौधे नीरोग और हरे भरे पैदा होते हैं तो खेत उपजाऊ समझना चाहिए; इसके विपरीत जिस पर पौधे पीले छोटे छोटे मुरझाए हुए होते हैं उन्हें अनुपजाऊ खेत कहते हैं।

यदि उपर्युक्त कारणों में कोई मुख्य कारण बाधक नहीं है तो विचार करना चाहिए कि पौधों के भोजन की कमी, खेती करने की रीति, दूषित बीज अथवा खराब जलवायु, कोई रोग अथवा कोई दैवी दुर्घटना के कारण तो खराबी नहीं है। इन

कारणों के निवारण में यथासंभव दत्तचित्त होना कृषक का मुख्य कर्तव्य है।

गाँव में बहुत सी धरती पड़ी रहती है जिस पर यथारीति खेती करने से फसलें पैदा हो सकती हैं। ऐसी कृषियोग्य धरतियों को बंजर कहते हैं। इसके विपरीत कृषि-कर्म के अयोग्य धरती को जिस पर किसी प्रकार का कोई पौधा नहीं पनप सकता "ऊसर" कहते हैं।

गांवों में गाय बैल के चरने के लिये गोचारण छोड़ा जाता था। प्राचीन काल में गोचारण एक कानूनी विषय था। इस समय कोई कानून बाध्य नहीं करता है कि हर गाँव में इतना क्षेत्रफल गोचारण के लिये छोड़ना पड़ेगा।

खेत अलग करना—सुभीते के अनुसार खेतां को एक एक बीघे के क्षेत्रफल में अलग कर लेना चाहिए। उनकी मेड़ होनी चाहिए जिससे एक खेत दूसरे खेत से अलग हो सके।

धान के खेतों में मजबूत मेड़ें होती हैं। इन मेड़ों की आवश्यकता होती है क्योंकि खेतों में पानी इन्हीं के द्वारा थमता है। परंतु रबी के खेतों में पानी थामने के लिये क्यारियों की आड़ काफी होती है। इस हालत में मेड़ों का काम केवल खेत का हद्द निर्वाचन करना ही होता है। कहीं कहीं सरपत या कुस अथवा घास के जुट्टों (समूह) के द्वारा हद्द का पता लगाया जाता है, पर मेड़ों के न रहने और

पास में अन्य लोगों के खेत रहने के कारण प्रायः भारी झगड़े हुआ करते हैं। इससे निश्चित मेड़ों का होना लाभदायक होता है।

जहाँ अपनी ही धरती है और किसी की सरहद का झगड़ा नहीं है वहाँ विचारणीय क्षेत्र-फल मेड़ों से बचाए रहना अच्छा है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि नाम मात्र को एक या दो इंच मेड़ होती है। कहीं कहीं मुख्य फसल से परे कोई दूसरी फसल किनारे किनारे बोई जाती है जिससे अपने अपने खेतों की हद मालूम हो जाती है।

२—खेतों के विभाग

कृषिकार प्रायः गाँव में रहते हैं। आबादी के पासवाले खेतों को गोईंड, गोहान, गायँड तथा बाड़ा कहते हैं। इन खेतों में अधिक और हर साल खाद पड़ती है। प्रायः इन खेतों में लाभदायक फसलें बोई जाती हैं। गाँव के समीप रहने से उनमें खाद देने में सुगमता होती है।

गाँव से कुछ दूरवाले खेतों को माँझा अथवा बीच के खेत कहते हैं। इनमें साल में थोड़ी खाद पड़ती है।

गाँव से दूरवाले खेतों को पालो या ग्योंड़ा कहते हैं। इनमें कभी कभी खाद पड़ जाती है। कहीं कहीं माँझा की बजाय 'अच्छी पालो' और 'खराब पालो' अथवा पालो एक, पालो दो, पालो तीन यथाश्रेणी पैदावार के विचार से नाम रखते हैं।

धनकर या क्यारी धान के खेतों को कहते हैं। कहीं कहीं अच्छे धान के खेतों को क्यारी और मोटे अथवा बिना खादवाले खेतों को धनकर के नाम से कहकर भेद प्रकाशित करते हैं।

नदी के तीर जिस धरती पर खेती होती है उसे 'कछार' या खादर कहते हैं। प्राय: यह धरती नदी के बढ़ने या घटने से कम या ज्यादा होती रहती है। नदी के साथ बहुत से उपजाऊ अंश आते हैं जिनसे कछार धरतियों पर पैदावार अच्छी होती है। परंतु कभी कभी ऐसा भी देखने में आता है कि उपजाऊ कछार पर नदी के साथ बहती हुई बालू जमा हो जाती है जिससे धरती अनुपजाऊ हो जाती है। ऐसी ही अवस्था में उपजाऊ अंश जमा होने से बलुई धरतियाँ उपजाऊ हो जाती हैं और उपजाऊ धरतियाँ अनुपजाऊ हो जाती हैं। ऊसर धरती उसे कहते हैं जिस पर कुछ पैदा नहीं हो सकता; उसे बाँझ धरती भी कहते हैं।

पलिहर या परती उस धरती को कहते हैं जिसमें फसलें बोई जाती हैं और कुछ काल के विश्राम के लिये बिना बोए छोड़ दी जाती हैं। पलिहर धरती प्राय: एक ही फसल बिना बोई छोड़ी जाती है। इससे अधिक बिना बोई छूटी हुई धरती को परती कहते हैं। पलिहर खेत रखने का यह आशय होता है कि खेत को भोजन संचित करने का अवसर मिले। प्राय: पलिहर धरती में दूसरे फसल में कोई लाभदायक और जोरदार फसल बोते हैं।

ऊख बोने के लिये जो धरती पलिहर रखते हैं उसका विशेष नाम "ऊखाव" या "पांडारा" है।

सिवान खेतों के उस समूह को कहते हैं जहाँ एक या कई प्रकार की धरती होती है। प्राय: सिवानों के कई नाम होते हैं जैसे "नोनिया पार", "डीह पार" इत्यादि।

३—कुआँ बनाना

खेतों की सिँचाई के लिये दो एक कुएँ बना लेने से खेतों की हैसियत अच्छी हो जाती है। जब ताल, पोखरे और नहरें सूख जाती हैं उस समय अच्छे कुएँ का पानी नहीं सूखता। अच्छा कुआँ कृषक के लिये बहुत उपयोगी है। कुआँ बनाने के लिये समय समय पर सरकार तकावी देती है, अथवा सहकारी बंकों से कम सूद पर रुपया मिल सकता है। कुआँ बनाने की रीति का वर्णन यथा-स्थान किया जायगा। कहीं कुएँ पक्के और कहीं कच्चे बनाए जाते हैं। इनारा बड़े और पक्के कुएँ को कहते हैं जिनमें अधिक पानी होता है।

जिन स्थानों पर ताल और पोखरे अधिक हैं और उनसे सिँचाई के लिये पानी मिल सकता है उनसे बहरवान और नहरें बनाना सिंचाई के लिये लाभदायक होता है। स्थान के अनुसार कुएँ की अपेक्षा पोखरा या बाँध डालने में सुविधा होती है।

४—चारदीवारी बनाना

अपने खेतों को जानवरों, चोरों तथा अधिक हवा से बचाने के लिये चारदीवारी बनाना चाहिए। चारदीवारी मिट्टी या

कच्ची ईंट की कच्ची अथवा पक्की ईंट या पत्थर की पक्की बनाई जाती है। मिट्टी की नीची चारदीवारी कहीं कहीं मिट्टी छोपकर बनाते हैं। इसे "खांवाँ" कहते हैं। इनसे पशुओं का निवारण होता है। पक्की चारदीवारी में अधिक व्यय होता है परंतु उससे अधिक काल के लिये छुट्टी भी हो जाती है। इसकी बार बार मरम्मत नहीं करानी पड़ती। पक्की चारदीवारी बागों में शोभा और हिफाजत के मतलब से भी बनाई जाती है।

खेतों को लोहे के काँटेदार तारों से घेरकर पशुओं और चोरों से रक्षित कर सकते हैं। काँटेदार पेड़ जैसे सेंहुड़, नागफनी, हाथी-चिग्घाड़ इत्यादि को चारदीवारी के काम निकालने के अभिप्राय से भी लगाते हैं।

विलायती बबूल, बिगोनिया इत्यादि वृक्षों की घनी बोआई चारदीवारी के काम में आती है। पर इन वृक्षों को खेतों के किनारे लगाने से यह हानि है कि कुछ दूर तक खेतों की नमी और पौधों का भोजन ये अपनी जड़ों द्वारा खींच लेते हैं जिससे खेत का कुछ अंश कम उपजाऊ हो जाता है।

किसी विशेष बल की आवश्यकता न होने पर केवल आड़ के लिये बाँस की कैन (पतली डालियाँ), बबूल की काँटेदार डालियाँ, अरहर, एरंड, सनई, पटुवा, ज्वार, नील प्रभृति पौधों के डंठल, सरपत इत्यादि वस्तुओं की सूखी टट्टियाँ बाँधकर खड़ा कर देने से हवा और पशुओं से बचाव हो सकता है।

लकड़ी की थूनी गाड़कर बेंड़े बेंड़े बाँस बाँधकर भी चारदीवारी बनाते हैं जिनसे पशुओं से बचाव होता है। पर दीमक और चोरों से चारदीवारी की हिफाजत करनी पड़ती है क्योंकि ईंधन के लिये, जिसकी दिक्कत प्रायः देखने में आती है, लोग लकड़ी चुरा ले जाते हैं।

फसलें बोने के साथ खेतों के किनारे पर अलसी, सरसों, रेंडी, पटुवा प्रभृति फसलें जिसकी हिफाजत के लिये बोते हैं जिनसे कुछ हद तक चारदीवारी का मतलब निकलता है। जैसे जौ के खेतों के किनारे अलसी की फसलों की एक कतार डाल देते हैं। गाय बैल अलसी कम खाते हैं। जौ तक पहुँचने में उन्हें आगे बढ़ना पड़ता है।

ऊख के खेतों में कभी कभी किनारे के ऊख को एक दूसरे से उनकी फुनगी पकड़कर बाँध देते हैं जिससे बीच बीच में जानवर न घुसें।

गाँव के बाहरी निकास की चारदीवारी अथवा किसी जंगल के समीप खेतों की बचत के लिये चारदीवारी बनाने में अधिक व्यय की आवश्यकता होती है। उन्हें पक्का बनाना पड़ता है जिससे सूअर, सियार, साही, हिरन और नीलगाय के झुंड से फसलों की रक्षा हो। ऐसे कामों में यदि गाँव के सब लोग थोड़ी थोड़ी सहायता करें तो अच्छा होता है।

तीसरा परिच्छेद

वे दशाएँ जिनका प्रभाव कृषि पर पड़ता है

भारतवर्ष की कृषि का विस्तार इतना बड़ा है कि इसके भीतर संसार भर का समस्त ज्ञान आ जाता है। यहाँ का जलवायु पहाड़ी, मैदानी, रेगिस्तानी स्थानों के अनुसार भिन्न है। स्थान स्थान के अनुसार कृषि संबंधी आवश्यकताएँ, रीतियाँ और सुभीते भी भिन्न हैं।

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है, जहाँ कृषि की सुविधाओं के होने से हर एक प्रकार की फसलें उत्पन्न होती हैं। संसार भर में खेती के अनुकूल इससे बढ़कर दूसरा देश नहीं।

अधिकांश भारतवर्ष में कृषि कर्म्म बैलों और भैंसों की सहायता से अथवा अपने हाथों से किया जाता है। कुछ समय से थोड़ी बहुत सहायता कल और इंजन से मिलने लगी है। कृषि के लिये बैल अत्यंत उपयोगी पशु हैं और इन पर कुछ भी अत्याचार का होना सर्वथा अन्याययुक्त है।

साधारणतः भारतवर्ष का कृषक अत्यंत मितव्ययी और संतोषी होता है। उसकी आवश्यकताएँ अति सूक्ष्म और सीमाबद्ध होती हैं। वह अपने कुटुंब के साथ गाँव में रहता और खेती करता है। प्रायः उसका मन खेती में ही लगा

रहता है। उसकी रहन सहन साधारण और आडंबर-रहित होती है। प्रायः वह निरक्षर और मूर्ख होता है और प्राचीन रीतियों का अनुसरण करता है। उसकी हैसियत तथा आवश्यकताएँ और उसके विचार उसकी खेती और परिवार के प्रसार तथा शिक्षा के अनुसार बढ़े हुए या संकुचित होते हैं।

गाँव के प्रबंध, रीतियाँ और रिवाज स्थान स्थान पर भिन्न देखे जाते हैं जिनका प्रभाव लोगों के विचारों और रहन सहन पर पड़ता है। खेती का व्यवसाय प्राचीन समय से भारत-वर्ष में हो रहा है। बहुत से स्थानों के कृषक अपने व्यवसाय में दक्ष हैं यहाँ तक कि उनको उन्नति की रीतियाँ बतलाने की आवश्यकता नहीं, परंतु कितने ऐसे स्थान हैं जहाँ अज्ञानता के कारण कृषि की दशा शोचनीय और प्रारंभिक अवस्था में पड़ी हुई है।

कृषिकार कुछ फसलें अपनी जीविका के लिये बोता है जिस पर कि वह अपने परिवार सहित अवलंबन करता है। अच्छी फसलें और अच्छा अनाज तथा तेलहन और रेशे की फसलें बोकर वह जो द्रव्य उपार्जन करता है उससे वह पहि-नने के लिये कपड़े खरीदता है, लगान अदा करता है और अन्य ऐसी ही छोटी जरूरतें—नमक, तंबाकू, सुर्ती और दवा आदि—खरीदकर पूरी करता है। इसके उपरांत करजा चुकाता है या बुरे दिन के लिये कुछ बचा रखने की चेष्टा करता है।

कुसमय पड़ने पर कृषिकार का धन अथवा उसके सहायक बैल, गाय, भैंस बिक जाते हैं। प्राय: बुरी अवस्था में उन्हें कम कीमत पर अलग करना पड़ता है। उसका खेत रेहन हो जाता है और धीरे धीरे वह ऋण के निविड़ जाल में फँस जाता है। उसको कभी बीज के लिये कर्ज लेना पड़ता है, कभी बैल खरीदने के लिये, कभी सिंचाई के प्रबंध के लिये। ऐसी अवस्था में जब उसके खाने के अन्न की कमी हो जाती है वह क्षुधा से सपरिवार पीड़ित हो दु:खी हो जाता है।

दुर्दिन में उसे कर्ज के निविड़ पंजे से बचाने अथवा उसे कर्ज दिलाने—क्योंकि कितने ही कड़े सूद पर भी कभी कभी उसे कर्ज नहीं मिलता—उसको खेती करने के लिये बैल, बीज, इत्यादि एकत्रित करने के लिये द्रव्य की आवश्यकता पूर्ण करने का प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है। यह समय और स्थान के अनुसार भिन्न है। कहीं जमींदार, कहीं महाजन और कहीं गवर्नमेंट सहकारी बैंकों द्वारा उसे मदद पहुँचाते हैं।

१—भूमि

कृषिकार की प्रथम आवश्यकता धरती, हल और बैल हैं। जिस हैसियत की धरती उसके पास है उसी के अनुरूप उसको हानि वा लाभ हो सकता है। वह भूमि की हैसियत धीरे धीरे बढ़ा सकता है।

पूर्व परिच्छेद में भूमि का दिग्दर्शन कराया गया है। आगामी परिच्छेद में पृथिवी का वर्णन, उसकी बनावट, जोत,

पौधों की आवश्यकता, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति, तथा उनके अभाव से विदित हो जायगा कि भूमि से कृषिकार कितना और कैसा लाभ उठा सकता है।

भूमि से शस्य उत्पन्न करना और उसकी शक्ति स्थिर रखना कृषिकार का मुख्य उद्देश्य है। यदि पृथिवी अधिक फसल लेने से कमजोर हो गई है तो उसको खाद देकर अथवा परती छोड़कर या उस पर अदल बदलकर फसल बोने से कृषि की उन्नति हो सकती है। बहुत दिनों तक खेती करने और उसके बदले खेतों को खाद न देने से जमीन कमजोर हो जाती है। देश के आय-व्यय, जल-वायु, पानी इत्यादि कारणों का जमीन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

जमीन कृषिकार की पूँजी है; यही कृषिकार का अवलंबन है। जमीन को रेहन से बचाने के निमित्त कानून बनाए गए हैं, पर कुसमय में बैल के अतिरिक्त रुपया पाने का और कोई मार्ग नहीं; इसलिये कृषिकार को अच्छे समय में अपने परिश्रम पर पूर्ण विश्वास करके बुरे दिन के लिये यथाशक्ति कुछ बचाना चाहिए। उसे मुकद्दमों तथा कुव्यवसायों में अपनी गाढ़ी कमाई का रुपया न फूँकना चाहिए।

२—समय

कृषिकार खेती के अतिरिक्त यदि उसे समय मिलता है तो सुतली बनाता है और उससे टाट तथा रस्से बनाकर बेचता है; कुछ लोग रेशम के कीड़े पालते हैं अथवा

अन्य व्यवसाय अपनी रीति के अनुसार करके लाभ उठा सकते हैं।

जो लोग शहर अथवा बाजार के निकट हैं उन्हें तरकारियों का व्यवसाय अधिक लाभकारी होता है। साल भर आवश्यकता की फसलें, साग सब्जी, गोभी, आलू, ककड़ी, तरबूज इत्यादि बोकर वे लाभ उठाते हैं। जहाँ साहब लोग रहते हैं वहाँ उनकी आवश्यकता की चीजें जैसे स्ट्राबेरी, विलायती भाँटा (टोमैटो), मीठी मटर, इत्यादि बोकर अच्छा लाभ हो जाता है। खटिक प्रभृति जातियाँ, जिन्हें परहेज नहीं है, वे अंडे और मुर्गी के व्यापार से लाभ उठाती हैं।

बाजारों के समीप गेहूँ, चना, गुड़, तेलहन, रेशे की फसलें, पोस्ता, तमाखू से भी अच्छा लाभ प्राप्त होता है। उनके ग्राहक अधिक मिलते हैं और चढ़ा ऊपरी में दाम अच्छे मिलते हैं। बाजार से दूर यदि व्यापारी घर पर जाता है तो वह उठाने के खर्चे के बहाने अधिक लाभ करके दबाता है। माल बेचने के लिये बाजारों का होना आवश्यक है। जमींदार लोग अपने यहाँ बाजार स्थापित करके बिक्री की बड़ी सुविधा कर सकते हैं।

जिस फसल की माँग अधिक होती है उसके दाम भी अच्छे लगते हैं और उसकी जल्दी बिक्री भी होती है।

शहरों के निकट पशुशाला से अच्छा लाभ हो सकता है। जहाँ दूध की माँग है वहाँ दूध का प्रबंध करना और

कृषि-कार्य के निमित्त अच्छे बैल उत्पन्न करना कृषि का एक मुख्य अंग है।

भारतवर्ष में कृषि के सुधार के लिये बड़े बड़े विद्वान्, दूरदर्शी, हितैषी वैज्ञानिकों तथा शासन-वेत्ताओं के ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्हें गाँव में रहनेवाले कृषिकारों की कठिनाइयों का ज्ञान होना चाहिए और उन पर विचार करके यथासाध्य उनको हटाने की कोशिश करनी चाहिए। उनके व्यवसाय को मोटा और गँवार समझकर उन पर हँसना और मुँह मोड़ना उचित नहीं। वरन् उनके प्रति सहानुभूति दिखानी चाहिए। समय और काल के अनुसार कृषि पर भार अधिक बढ़ता जाता है। जिन जातियों का रोजगार छूट जाता है वे भी अपना अवलंबन गिरती पड़ती कृषि में ही ढूँढ़ती हैं। धरती की शक्ति स्थिर रखने, बुरे समय के लिये कुछ बचा रखने का प्रश्न अथवा जहाँ एक पत्ती थी वहाँ दो उत्पन्न करने का महान् प्रश्न स्वतः आ उपस्थित होता है।

कोई भारी लगान की शिकायत करता है, कोई कृषि की खराब प्रणाली पर रोता है। कोई अति वृष्टि या अनावृष्टि इत्यादि से दुःखी हो जाता है। कहीं न कहीं अकाल विद्य-मान रहता है। अच्छे समय में खींच तान करके यदि आय व्यय बराबर भी हुआ तो अकाल पड़ते ही दिवाला निकल जाता है, घर में एक छटाक अन्न तथा एक पाई भी नहीं रह जाती। जिनके पास कुछ बचा रहता है वे अच्छे रहते हैं।

एक स्थायी राज्य, जिसके लाभ हमें भोगने का सौभाग्य है, कृषि के हेतु अत्यंत सहायक है। लूट के डर और चोरी के भय से रक्षा करने की चिंता पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं रहती। हमें अपनी प्रजापालक गवर्नमेंट से अपनी आवश्यकताएँ कहने पर उनका समाधान होते दीख पड़ता है। हमारे प्रतिनिधि कृषि संबंधी ज्ञान से परिपूर्ण होने चाहिएँ।

३—जल-वायु

निम्नलिखित कारणों के विचार करने से किसी स्थान के जल-वायु का पता चल सकता है।

उस स्थान की ऊँचाई, समुद्र तथा अन्य जलाशय से दूर या निकट होना, जंगल से दूर या निकट होना, बदली रहना या आकाश का निर्मल होना, पानी का बरसना, भूमि की दशा, भूमध्य रेखा के निकट या दूर होना इत्यादि।

भारतवर्ष में एक प्रकार का जलवायु नहीं है। इसमें भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न प्रकार का जलवायु है। इसलिये भिन्न भिन्न प्रांतों के जलवायु के विचार से कृषि-कर्मों तथा फसलों का विचार करना आवश्यक होता है। बहुत काल से कृषि करते करते इसके नियम और फसलें बोने का समय और रीतियाँ इतनी निश्चित हो गई हैं कि उनमें परिवर्तन की बहुत ही कम आवश्यकता होती है। नवीन वैज्ञानिक रीतियों के अनुसार कृषि की उन्नति का मार्ग खुला हुआ है।

भूमध्य रेखा के निकट के देशों में गर्मी अधिक पड़ती है क्योंकि वहाँ सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। समुद्र तथा अन्य जलाशयों के निकट रहने से जलवायु शीतोष्ण हो जाता है क्योंकि पानी देर में गरम और देर में ठंढा होता है जिससे गरम देशों की गर्मी और ठंढे देशों की ठंढक कम हो जाती है। जो प्रांत समुद्र तथा अन्य जलाशयों के तट से दूर हैं उन पर उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। वे गर्मी में अधिक गरम और सरदी में अधिक ठंढे रहते हैं। धूप में पत्थर और बालू इत्यादि जल्द तपने लगते हैं और सरदी पाकर जल्द ठंढे हो जाते हैं परंतु पानी की गरमी सरदी बहुत देर में घटती बढ़ती है। इसलिये समुद्रतट की आबोहवा बारहों मास मातदिल रहती है। इसके विपरीत मैदानों में जाड़े में सरदी और गरमी में तपन खूब होती है। देश की उँचाई का प्रभाव जलवायु पर पड़ता है जैसे भूमध्य रेखा के निकट मद्रास के समीप नीलगिरि पर्वत पर गरमी के दिनों में भी जाड़ा पड़ता है। भूमध्य रेखा से दूर बनारस और लाहौर इत्यादि नगरों में जाड़े में अधिक जाड़ा और गरमी में अधिक गरमी पड़ती है।

वृक्षों तथा जंगलों का होना देश के लिये अत्यंत उपयोगी है क्योंकि इनसे देश की गरम और ठंढी हवा से रक्षा होती है जिसका जलवायु पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कुछ काल तक बेपरवाही से वृक्ष गिरा दिए गए जिसका परिणाम लाभ की अपेक्षा हानिकारक हुआ। वृक्ष जो उपस्थित हैं उन्हें

काट डालना सहज है पर उनके बढ़ने में बहुत काल लगता है। वृक्षों के रहने से वर्षा अधिक तथा जलवायु शीतोष्ण हो जाती है। जहाँ वृक्ष नहीं हैं वहाँ का जलवायु सूखा होता है। वहाँ गरमी में अधिक गरमी और जाड़े में अधिक जाड़ा पड़ता है। पशुओं और आदमियों को शरण नहीं मिलती। वृक्षों से मकान, हल, हेंगा, गाड़ी बनाने को लकड़ी मिलती है। अकाल में पीपल, गूलर इत्यादि पेड़ों की पत्तियों से पशुओं की प्राण-रक्षा होती है। सरकार ने जंगल-विभाग स्थापित करके वृक्षों की रक्षा की है। इसके अतिरिक्त रेल की सड़कें, नहरों के किनारे, बंजर जमीन, ऊसर धरती, सड़कों के किनारे और ऐसे ही स्थान वृक्ष लगाने के लिये ठीक हैं।

जल-वृष्टि और बदली का प्रभाव देश के जलवायु पर पड़ता है। पानी का अधिक बरसना कृषि-दशा के अनुकूल नहीं कहा जा सकता। एक या दो बार अधिक पानी का बरसना नदी नालों के बढ़ने तथा तालाब पोखरों के भरने के लिये लाभकारी है। इस प्रकार अकस्मात् अधिक वृष्टि के होने से और अधिकतर पृथिवी के सूर्य की किरणों से तपने से उसमें नमी स्थिर नहीं रहती। पौधों को पानी की तृष्णा बनी ही रहती है। एक स्थान पर सत्तर अस्सी इंच पानी बरस सकता है। यदि इतनी वृष्टि एक बार हो जाती है तो ऐसी अवस्था में देश में बाढ़ आ जाती है। अधिक जल से खेत कट जाते हैं।

पृथिवी पर नाले बन जाते हैं, अच्छी मिट्टी बह जाती है और खाद्य पदार्थों की हानि होती है तथा देश का जल-वायु शीत-पूर्ण हो जाता है जिससे नाना प्रकार के ज्वर तथा अन्य रोग उत्पन्न होते हैं। अनावृष्टि से देश में सूखा पड़ जाता है।

४—जल-वृष्टि

कृषि के लिये मातदिल आबोहवा और समय समय पर थोड़ी थोड़ी जल-वृष्टि अनुकूल होती है।

इस प्रांत में मई, जून, जुलाई के महीनों में अच्छी जल-वृष्टि की आशा की जाती है जिससे तृषित पृथिवी तृप्त हो और जल सोखकर नरम हो जावे ताकि खेत की जोताई और बोआई हो सके। समय समय पर आकाश का खुला रहना कृषि-कर्म्मों के लिये अच्छा होता है। समय समय पर जल-वृष्टि होती रहनी चाहिए जिससे नवीन फसलें बढ़ती रहें।

बीच सितंबर और अक्तूबर के महीने में रबी के लिये जल-वृष्टि की आवश्यकता होती है। जिससे रबी के खेत तैयार किए जाते हैं और फसलें बोई जाती हैं, पिछले धान को लाभ पहुँचता है। अगस्त और सितंबर में अधिक वृष्टि से खरीफ की तैयार फसलों को जो खेत में खड़ी रह जाती हैं हानि पहुँचती है। नवंबर के महीने में निराई और सोहाई होती है। मध्य दिसंबर तथा शुरू जनवरी तक फिर पानी की आशा की जाती है जिससे बढ़ती फसलों को लाभ पहुँचता है और सिंचाई की मेहनत बच जाती है। इस समय जल-

वृष्टि से पाले का भय कम हो जाता है। अधिक बदली से फसलों में गिरूई लगने का भय होता है। इस समय पाला पड़ने से कृषि की हानि होती है। आगे चलकर पानी हानिकारक होता है। फूलती फसलों में दाना नहीं पड़ने पाता। मार्च, अप्रैल में पानी की आशा नहीं की जाती। इस समय शस्यों के पकाने के लिये पछुवाँ हवा और खुले आकाश सहायक होते हैं। इस समय खेत काट लेने पर खेत में जो कुछ नमी बाकी रहती है उसी समय उन्हें जोत डालने से बड़ा लाभ होता है। हानि-

रेन-गैज अर्थात्
बरसात का पानी नापने का यंत्र।
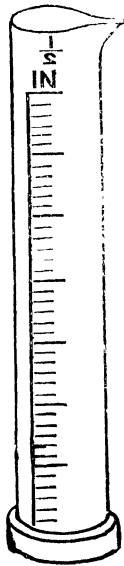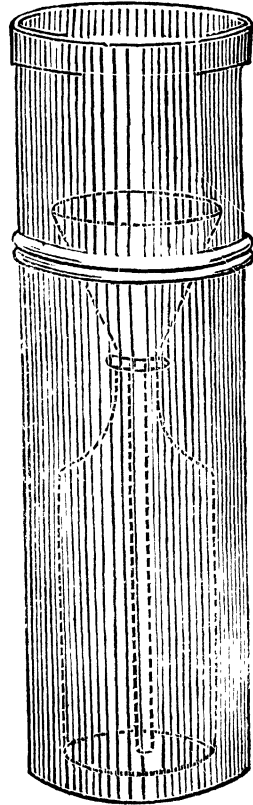
कारक गुबरैले तथा पतिंगों के अंडे नष्ट हो जाते हैं और उनका आक्रमण आगामी फसलों पर कम हो जाता है। पृथिवी खुल जाती है जिससे वर्षाकाल में अच्छी तरह जल सोखती है।

भारतवर्ष की जल-वृष्टि एक प्रकार की वायु पर निर्भर है जो समुद्र की ओर से बहती है और अपने साथ बहुत सा जल बादलों में लाती है। इसे अँगरेजी में मॉनसून कहते हैं। अप्रैल, मई, जून गरमी के महीनों में मैदान की हवा गरम होकर तप जाती है और ऊपर उठती है, क्योंकि हलकी वस्तु ऊपर को उठती है तो ठंढे देशों और समुद्र के ओर की वायु जो ठंढी होती है मैदान की ओर बड़े वेग से बढ़ती है। यह वायु भारी होती है और इसमें पानी के अदृश्य अणु भरे होते हैं। सैकड़ों मील समुद्र-तल पर होते हुए यह वायु हिंद-महासागर से उठती है और अरब की खाड़ी पार करते हुए पश्चिमी घाट पर टकराती है—जहाँ पहाड़ों की ठंढी वायु के मेल से जल वृष्टि होती है। इसे नैर्ऋत्य अथवा दक्षिणी-पश्चिमी मॉनसून वायु कहते हैं। इसके प्रभाव से भारतवर्ष के दक्षिणी और पश्चिमी भागों को जल-वृष्टि मिलती है। इसी प्रकार बंगाल की खाड़ी से होते हुए अग्निकोण अथवा पूर्व-दक्षिण कोण की मॉनसून वायु पानी लाती है जिससे बंगाल तथा उत्तरी भारतवर्ष को जल मिलता है। गरमी में प्रांतों के तपने तथा इस मानसून के शीघ्र तथा विलंब से उठने पर हमारे

भागों में समय तथा कुसमय पर जल-वृष्टि होती है। तीसरी वायु ईशान कोण से उठती है जिससे मध्य भाग को जल मिलता है। नैर्ऋत्य और अग्निकोण की वायु जून, जूलाई, अगस्त, और सितंबर चार महीने बहती है। उत्तरी-पश्चिमी वायु से जब हिमालय पर्वत की बरफ गलती है उस समय बहुत सा जल उत्तरी भारतवर्ष को प्राप्त होता है जो रबी की फसलों को लाभकारी होता है। भारतवर्ष के पश्चिमी भाग राजपूताना, सिंध, गुजरात, बिलोचिस्तान में इन वायुओं की रोक नहीं, इस कारण वे देश अनावृष्टि के कारण सूखे रह जाते हैं।

भारतवर्ष की कृषि में केवल किसी नवीन चमत्कार ही का दिखला देना कृषि की उन्नति नहीं है। इसमें विशेष रूप की उन्नति की आवश्यकता है। परंतु जिस पर साधारणतः करोड़ों प्राणियों का जीवन निर्भर है और जो इस भूमंडल के अनेक देशों को अन्न, वस्त्र की देनेवाली है उस कृषि की उन्नति पर विचार करना और उसकी यथासाध्य सहायता करना सबका प्रथम कर्त्तव्य है।

इस बात का जान लेना आवश्यक है कि कहाँ वर्ष में कितनी औसत जल-वृष्टि होती है। इस ज्ञान से खेती के काम में बड़ी सुगमता हो जाती है। एक साधारण सा चोंगा होता है जो खुले मैदान में गाड़ दिया जाता है। इसमें एक छोटा सा गिलास होता है। इस पर इंच के निशान बने

रहते हैं। जब पानी बरसता है तो इस छोटे गिलास में उसकी बूँदें इकट्ठी होती जाती हैं। पीछे से देखने पर यह जाना जाता है कि अमुक दिन की वृष्टि में कै इंच पानी बरसा। सभी मुख्य मुख्य स्थानों में ये यंत्र रहते हैं और इनका लेखा बराबर समाचारपत्रों में छपता रहता है। इन लेखों से जाना जा सकता है कि वर्ष में कहाँ पानी अधिक और कहाँ कम बरसा।

चौथा परिच्छेद

पौधा

१—पौधों की बनावट

कृषिकार का मुख्य उद्देश्य पौधों की बढ़ती करने का है। वह नाना प्रकार के पौधे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बोता है। दाना, रेशा, शक्कर, रंग, पत्तियाँ, फूल, लकड़ी इत्यादि के पौधे प्रतिदिन उसके काम में आते हैं। इस कारण हम उनकी बाहरी और भीतरी बनावट, उनका जमना और बढ़ना, उनके भोजन और भोजन की विधि पर विचार करेंगे।

कृषिकार पौधों की खेती कुछ तो उनकी जड़ जैसे मूली, गाजर, शलगम इत्यादि पदार्थों के लिये; कुछ पेड़ों के लिये जैसे पौंड़ा, ईख, आलू इत्यादि; कुछ छाल के लिये जैसे पटुआ, हाथी-चिग्घाड़ इत्यादि; कुछ दाने के वास्ते जैसे गेहूँ, जौ, चना, चावल इत्यादि; कुछ उनकी पत्तियों के लिये जैसे चाय, तँबाखू इत्यादि; कुछ रेशे के लिये जैसे, रूई, मदार इत्यादि के लिये, करते हैं। इनमें से मनुष्य अपने भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यकताओं की सामग्री और अपने पशुओं के लिये चारा एकत्रित करता है।

किसी साधारण पौधे को लीजिए। जाड़े में सरसों के पौधे हर जगह प्राप्त होते हैं। सरसों के पौधे के पास खड़े

सरसों
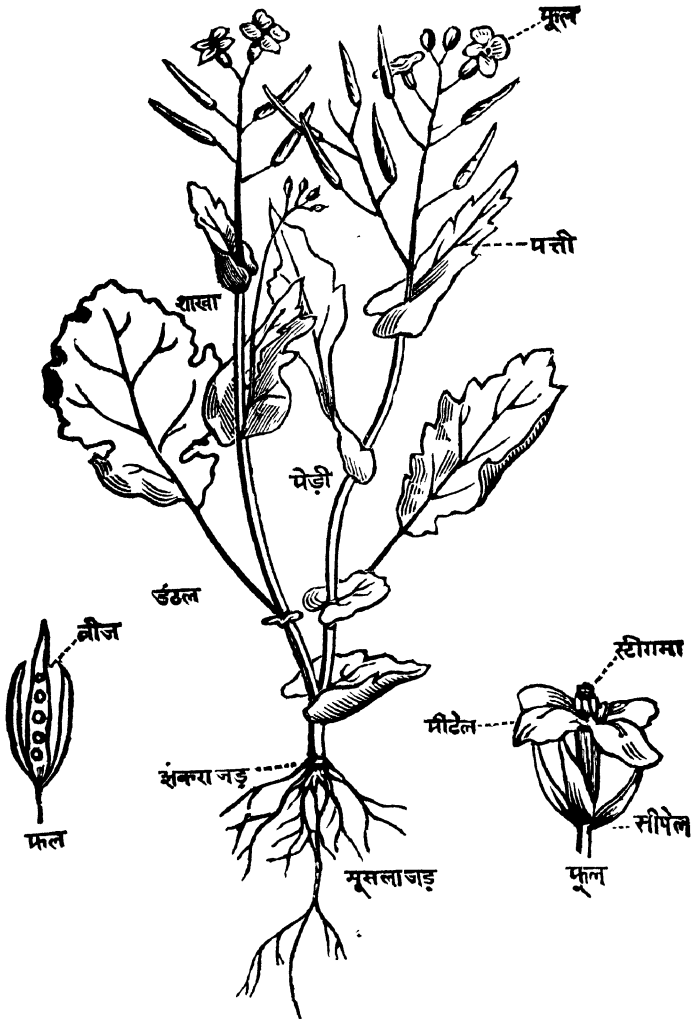
होकर देखने से ज्ञात होता है कि इसका एक अंग पृथिवी के भीतर है जिसके सहारे वह जमीन के ऊपर खड़ा है। इस अंग को जड़ कहते हैं। जमीन के ऊपरी भाग को, जिसमें डालियाँ, पत्तियाँ और फूल लगे हुए हैं, पेड़ी कहते हैं।

सावधानी से पौधे को पृथिवी से अलग करने पर और उसकी जड़ को पानी में धो डालने से उसकी मिट्टी अलग हो जाती है। तब देखने से ज्ञात होता है कि जड़ कितनी लंबी है जो जमीन के भीतर चली गई थी। जड़ में कितनी ही शाखाएँ हैं जिनमें कुछ बहुत पतली और धागे के समान हैं। इन जड़ों के सिर पर बाल के समान बहुत छोटे रेशे हैं। इन्हें जड़-केश (Root-Hairs) कहते हैं। ये अत्यंत उपयोगी हैं क्योंकि इनके द्वारा पौधे का भोजन पृथिवी से प्राप्त होता है। ये बाल के समान जड़ें धरती के कणों में लिपटकर अपना भोजन प्राप्त कर लेती हैं जो ऊपर जड़ों की शाखाओं, पेड़ी और डालियों में होता हुआ पत्तियों तक पहुँचता है।

इस प्रकार जड़ें पौधों को भोजन पहुँचाती हैं और उसे जमीन पर एक स्थान पर थाँभे रहती हैं जिससे कि पौधा हवा पानी से उड़ या बह नहीं जाता। जड़ें पौधे के अनुसार कई आकार प्रकार की होती हैं। कितनी जड़ें जमीन में पौधों के आकार से कई गुना भीतर फैली होती हैं। मुख्य दो प्रकार की जड़ें होती हैं एक 'मूसला' और दूसरी 'झकरा'। मूसला जड़ जमीन में सीधी चली जाती है, जैसे अरहर, सरसों

इत्यादि पौधों की। झंकरा जड़ रेशे के समान कुछ उलझी हुई होती है, जैसे गेहूँ और जौ के पौधों की। ऊसर और कँकड़ीले स्थानों में जड़ें बहुत दूर तक फैलती हैं क्योंकि उन्हें बहुत दूर तक अपने भोजन की तलाश में जाना पड़ता है।

पेड़ी—यह साधारण अवस्था में पृथिवी-तल पर सीधी हवा में बढ़ती है। वह पौधे का मुख्य अंग है जिसमें से शाखाएँ, पत्ते, फूल और फल निकलते हैं। पेड़ी अनेक आकार प्रकार की होती है। कोई कोई तो जड़ों के समान पृथिवी के भीतर बढ़ती है। जड़ों और पेड़ी में अंतर यह है कि जड़ पौधों का भोजन प्राप्त करती है पर पेड़ी यह नहीं कर सकती। पेड़ी से नए पौधे उत्पन्न होते हैं। आलू, अद-रख इत्यादि पौधों की इस प्रकार की पेड़ियाँ होती हैं। कोई कोई पेड़ी पत्ते के समान चपटी होती है जैसे नागफनी; कोई पेड़ी हवा में सीधी खड़ी रहती है जैसे अरहर; कोई जमीन पर फैलती है जैसे दुधिया घास, नोनिया साग इत्यादि; कोई जड़ द्वारा दीवार पर चढ़ती हैं, जैसे दोदुनिया; कोई गुच्छों द्वारा ऊपर चढ़ती है, जैसे लौकी, कोहड़ा इत्यादि; कोई पेड़ी खोखली होती है, जैसे गेहूँ, जौ, बाँस इत्यादि पौधों की और किसी किसी पौधों में ठोस पेड़ी होती हैं, जैसे मकई, अरहर, शीशम, आम इत्यादि में।

डाल—पेड़ी से डालियाँ निकलती हैं और डालियों पर पत्तियाँ लगती हैं। फूलदार पौधों में फूल लगते हैं।

पत्तियाँ पौधे का भोजन बनाने और उसके पालन करने के लिये मुख्य अंग हैं। इनमें अनेक क्रियाएँ होती हैं जिनसे पौधे का भोजन बनता है। जड़ों द्वारा जो रस पौधा प्राप्त करता है वह तत्काल ही पौधे के काम का नहीं होता, वह पौधे में आकर सम पदार्थों में परिवर्तित होता है तब पौधा उसको अपने काम में ला सकता है जिससे उसके अंग बनते हैं, दाना बनता है और उनका पालन होता है।

पत्तियों में अगणित नलियाँ होती हैं जिनके द्वारा भोजन तैयार होकर पौधे के अंगों में घूमता है। कुछ तो पौधे के काम में आता है और कुछ पौधे के भविष्य के काम के निमित्त एकत्रित होता है। ये भोज्य पदार्थ कई प्रकार और गुण के होते हैं। स्टार्च या आटे के समान एक भोज्य पदार्थ है जो आलू में जमीन के भीतर जमा होता है; जौ, गेहूँ, मकई इत्यादि के दानों में स्टार्च पाया जाता है। इसी प्रकार कई तरह के और भोज्य पदार्थ हैं जिनको इन्युलीन, तेल, शकर कहते हैं। ये पौधों के किसी भाग में एकत्रित होते हैं। कुछ पौधे भोज्य पदार्थ एकत्रित नहीं करते।

पत्तियों में सबसे मोटी नली बीच में होती है। इसकी बहुत सी शाखाएँ पत्ती भर में फैली होती हैं। क्रमशः वे फैलती हुई पतली हो जाती हैं यहाँ तक कि आँख से नहीं दिखाई पड़तीं।

अधिकांश पत्तियों में नीचे की ओर बहुत छोटे छोटे छेद होते हैं। इन्हीं छेदों द्वारा पौधा साँस लेता है और जड़ द्वारा

पानी लेता है जिसमें पौधे के भोज्य पदार्थ घुलकर पौधे को प्राप्त होते हैं और वह पृथिवी से पौधे की पत्तियों तक चढ़ते हैं। यह पानी यदि पौधे की आवश्यकता से अधिक होता है तो पौधा इन्हीं छेदों द्वारा उसे त्याग देता है। इन्हीं छेदों द्वारा पौधा वायु भी त्याग देता और ग्रहण भी करता है। इन छिद्रों को अँगरेजी भाषा में स्टोमैटा कहते हैं। प्रकाश में ये छेद खुलते और अँधेरे में बंद हो जाते हैं।

पौधों में हरा रंग क्लोरोफिल द्वारा आता है। क्लोरोफिल एक पदार्थ है जो पौधों के समस्त अंगों में पाया जा सकता है। सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से देखने में यह हरे दाने के समान दिखाई देता है। प्रकाश की उपस्थिति और क्लोरोफिल के द्वारा पौधा कारबन डी आक्साइड का प्रयोग कर सकता है। क्लोरोफिल के अभाव से पौधा सफेद अथवा पीला पड़ जाता है।

मुख्य वायु जो पौधा वायु-मंडल से ग्रहण करता है कार्बन डि आक्साइड है। इस वायु द्वारा पौधे का पालन होता है और पौधों के अंग निर्मित होते हैं। वायु-मंडल के अगाध कोश में वायु दो पदार्थों के मिलने से पाई जाती है। इन्हें कार्बन और आक्सिजन कहते हैं। जब पौधा इन्हें ग्रहण करता है, उस समय ये संयुक्त अवस्था में होती हैं।

दोनों पदार्थ पौधे पर सूर्य के प्रकाश की गरमी के प्रभाव से अलग अलग हो जाते हैं। पौधा कार्बन को अपने काम में लाता है और आक्सिजन को त्याग देता है।

पौधा कार्बन डि आक्साइड प्रकाश में अपने हरे अंगों ही द्वारा ग्रहण कर सकता है। अँधेरे में यह क्रिया बंद हो जाती है। यह वायु मनुष्यों और अन्य पशु प्राणियों के लिये हानिकारक है। इसी कारण रात्रि के समय पेड़ों के नीचे सोना हानिकारक है; क्योंकि रात्रि के समय पौधे अधिक कार्बन डि आक्साइड का त्याग करते हैं। यह वायु मनुष्यों और अन्य प्राणियों के साँस लेने से बाहर आती है और मरुत-कोष में मिलकर वनस्पति के लिये उपयोगी होती है। अग्नि के जलने और पदार्थों के सड़ने से भी प्रतिदिन बहुत सा कार्बन डि आक्साइड मरुत-कोष में मिलता है।

कार्बन साधारण कोयले को कहते हैं। जब इसका संसर्ग आक्सिजन वायु से होता है तो इस संयुक्त पदार्थ को कार्बन डि आक्साइड कहते हैं। कार्बन और अन्य पदार्थों से जिन्हें पौधे ने पृथिवी से ग्रहण किया है, पौधे अपनी पत्तियों द्वारा भोज्य पदार्थ तैयार करते हैं और इन्हें अपने उन अंगों में भेजते हैं जहाँ बाढ़ होती है। इनसे पौधों के अंग बनते हैं अथवा वे इन्हें अपने किसी अंग में अपने आगामी काम के लिये एकत्रित करते हैं।

फूल—जब पौधा तरुण अवस्था को प्राप्त होता है उसमें फूल आने लगते हैं। फूलों से दाना बनता है। अच्छा और अधिक दाना उत्पन्न होने के निमित्त अधिक और निर्दोष फूलों की आवश्यकता है। साधारण अवस्था में फूलों के

चार अंग होते हैं। इन्हें अँगरेजी में क्रमशः सीपेल, पीटेल, एँड्रोशियम और गायनीशियम कहते हैं। क्रमशः ये चारों अंग एक डंठल पर घेरे के आकार में एक के ऊपर एक करके बैठे होते हैं। बाहर की ओर पहले सीपेल या अंखड़ी का घेरा होता है। इसके भीतर पीटेल या पंखड़ी का घेरा, इसके भीतर एँड्रोशियम या वर और इसके भीतर गायनीशियम या मादा का घेरा होता है। उदाहरण के निमित्त हम सरसों का फूल देखें। साधारण सरसों का फूल पीला होता है। पीला अंश जो तुरंत ही दृष्टिगोचर होता है बहुत ही मुलायम पत्तियों का बना होता है। यह फूल का दूसरा घेरा है; इसे पीटेल कहते हैं। पहला घेरा इसके बाहरवाला है, जिसकी पत्तियाँ छोटी, पतली और पीटेल घेरे की पत्तियों से कुछ कड़ी होती हैं। इस घेरे को सीपेल का घेरा कहते हैं। प्रत्येक पत्ती को सीपेल कहते हैं।

पीटेल के भीतर तीसरी कटोरी को एँड्रोशियम कहते हैं। इस कटोरी पर सरसों के फूल में बहुत ही सूक्ष्म छः मुलायम डंठल होते हैं और इन छः डंठलों पर छः थैलियाँ लगी होती हैं। इन थैलियों को अँगरेजी भाषा में ऐंथर कहते हैं जिनमें पराग केसर होता है। पराग केसर आटे के समान होता है और सरसों में पीले रंग का होता है। इन डंठलों को थैलियों समेत स्टैमन कहते हैं।

पराग केसर की छानबीन यदि सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से की जाय तो प्रति दाना गोलाकार दिखाई देता है। पराग केसर

का अधिक होना अति आवश्यक है, जिससे वे हवा में उड़कर तथा मधुमक्खियों द्वारा गर्भ तक पहुँच सकें और उनके संयोग से दाना बने। पराग केसर को अँगरेजी में पोलन ग्रेन अथवा पोलेन कहते हैं।

फूल का चौथा अंग गर्भ का है। यह चौथी कटोरी तीसरी कटोरी के भीतर होती है। इसे अँगरेजी भाषा में गाय-नीशियम कहते हैं। बढ़ने पर यह गर्भ फली, फल तथा बीज बन जाता है।

पूरे तौर से तैयार हुए गर्भ को बीज कहते हैं। वास्तव में बीज एक छोटा पौधा है जो बढ़कर एक दूसरी सूरत धारण कर लेता है। यदि हम किसी फल के दाने को लें तो हमको ज्ञात होगा कि उस पर छिलका चढ़ा है। यह कई आवरण में होता है। छिलके का काम बचाव करना होता है। बीज के दो हिस्से होते हैं। एक संचित भोज्य पदार्थ जो भावी पौधे के काम में आता है। दूसरा अंकुर जो बीज का जीवित भाग है और जिसमें से आगामी जड़ और पेड़ी पैदा होती है। गेहूँ, चावल, मकई में संचित पदार्थ (Food material) को हम आटे के काम में लाते हैं।

अंकुर को अँगरेजी में एम्ब्रिओ कहते हैं। एम्ब्रिओ के दो भाग होते हैं, प्लीम्यूल (Plimule) और रेडिकल (Radical), प्लीम्यूल से भावी पेड़ी और पत्ते और रेडिकल से भावी जड़ पैदा होती है। बीज में दो छेद होते हैं। एक

हाइलम कहलाता है, दूसरा माइक्रोपिल। हाइलम वह स्थान है जहाँ पर पहले बीज का पालन करनेवाला अंश जुड़ा हुआ था। माइक्रोपिल वह छेद है जिसमें से आगामी अंकुर निकलता है। बीज को पानी में फुला देने से अथवा उसे उबालकर कपड़े से पोंछ डालने पर जब बाहरी पानी सूख जाता है तब दबाने से इन छिद्रों द्वारा पानी निकलता है, जिससे उनकी स्थिति का ज्ञान होता है।

२—बीज से नए पौधे का जमना

बीज के जमने के लिये वायु, गरमी और नर्मी की आवश्यकता पड़ती है। इन पदार्थों के एकत्रित होने पर अच्छे बीज का जमना संभव होता है। जब बीज पृथिवी में तथा और किसी स्थान पर जहाँ आवश्यक गर्मी, वायु और नमी है रख दिया जाय तो वह पहले फूलता है। उसमें से जड़वाला अंकुर बीज के छिलके को तोड़कर बाहर आता है और पृथिवी में नीचे की ओर चला जाता है। पेड़ीवाला अंकुर धीरे धीरे बढ़कर पृथिवी के बाहर आकर वायु में ऊपर को उठता है और उसी से पत्ता और पेड़ी बनती है।

बीज को बोते हुए इस बात का ध्यान रखना अति आवश्यक है कि बीज बहुत गहराई में न पड़े, नहीं तो उसका अंकुर जो बाल्यावस्था में अत्यंत कोमल होता है नीचे दब जाने के कारण ऊपर न आ सकेगा, वह नीचे ही दब जायगा और मर जायगा। यदि नीचे की मिट्टी बहुत सख्त होगी तो जड़

उसमें न घुस सकेगी और पौधे को भोजन न प्राप्त होगा जिससे पौधा मर जायगा। इस कारण जमीन तैयार करके तब बीज बोया जाता है। प्रकृति अपने नियम के अनुसार "पहले भोजन का सामान एकत्रित करके तब उसके भोगनेवाले को पैदा करती है"। जड़ पहले से पौधे के लिये भोजन प्राप्त करती है और पौधे के अंगों तक पहुँचाकर उसे बढ़ने का अवसर देती है। पौधा जब बहुत छोटा रहता है और इसकी जड़ें इस योग्य नहीं होतीं कि पृथिवी से भोजन प्राप्त कर सकें, उस समय जैसे मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के लिये प्रकृति ने दूध एकत्रित किया है उसी रीति से उनके लिये भोज्य-पदार्थ (Food material) पौधे के लिये बीज में संचित रहता है। यह भोजन का पदार्थ बीज में अथवा काटलीडान के भीतर तथा बाहर जमा रहता है जिससे दो प्रकार के बीज होते हैं, जिन्हें क्रमशः एल्ब्यूमिंस और एक्स-अल्ब्यूमिंस कहते हैं। ये कलल बीज से दो प्रारंभिक पत्तियों के समान निकलते हैं और पौधे के जमने के अवसर में कभी जड़ के पास जमीन ही में रह जाते हैं जैसे मकई के बीज में और कहीं कहीं ऊपर पृथिवी पर पौधे की पेड़ी के साथ हाईपो-काटिल के बढ़ने से ऊपर चले जाते हैं; जैसे लौकी और करेले में। उन बीजों को जिनमें कलल पृथिवी में रह जाते हैं हइपो-जियल कहते हैं और दूसरे को जिनमें कलल ऊपर आ जाते हैं एपजियल कहते हैं।

जड़ धीरे धीरे पृथिवी में बढ़ती जाती है और स्वयं पृथिवी से भोजन प्राप्त कर लेती है। जड़ में अनेक शाखाएँ निकलती हैं और वे अपना काम करती हुई पौधे का पालन पोषण करती हैं। पृथिवी के ऊपर पेड़ी बढ़ती है और उसमें शाखाएँ, पत्तियाँ, फूल, फल लगते हैं। हम कह आए हैं कि बीज में भोजन पदार्थ संचित रहता है। प्रायः यह स्टार्च, इन्युलीन, तेल, शक्कर इत्यादि पदार्थों की हालत में संचित रहता है। पौधे के प्रयोग के निमित्त इन पदार्थों का घुल जानेवाली हालत में होना आवश्यक है; ये पदार्थ वायु, पानी, गरमी से रासायनिक क्रिया द्वारा घुल जानेवाली अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं जिसमें वे एक प्रकार की शक्कर की हालत में आ जाते हैं। इस प्रकार पौधा उनका प्रयोग करता है। यदि जमते हुए मटर, गेहूँ अथवा चने को चूसिए तो उसका स्वाद मीठा मालूम होगा।

३—पानी में घुले हुए पदार्थ

पौधा अपना भोजन पानी ही द्वारा प्राप्त करता है। पानी में पौधे के भोजन के पदार्थ घुले रहते हैं, जैसे नमक अथवा चीनी घुल जाती है। यदि उसे न चखें तो वह दिखलाई नहीं देती।

पानी में घोलने की इतनी शक्ति है कि साधारणतः शुद्ध जल का मिलना असंभव होता है। शुद्ध जल के निमित्त पानी को भपके से खींचते हैं जिसे डिस्टिल्ड वाटर अथवा खिंचा हुआ पानी कहते हैं। पानी जो बरसता है उसमें कई प्रकार

की वायु घुली रहती है। कुँवा और तालाब के पानी में पृथिवी के बहुत से अंश कई प्रकार के खार इत्यादि घुले हुए होते हैं। घुले हुए पदार्थ आवश्यक परिमाणों में पौधों का भरण पोषण करते हैं।

४—पौधों की भीतरी बनावट

जड़, पेड़ी, पत्ते, फूल, फल पौधे के हर एक अंग नाना आकार प्रकार के छोटे छोटे कोषों से बने हुए हैं। इस एक कोष को अँगरेजी में (Cell) सेल कहते हैं। इनमें से कुछ सेल मक्खी के छत्तों के समान होते हैं और उनका मिलाव भी एक दूसरे से उसी प्रकार होता है जैसा कि मक्खी के छत्ते का। इसी कारण इसका नाम सेल पड़ा।

सूक्ष्मवीक्षण यंत्र द्वारा पौधों के भिन्न भिन्न अंगों को देखने से उनकी बनावट में अंतर मालूम हो जाता है। किस प्रकार उनका निर्माण हुआ, वे कैसे नष्ट होते और बढ़ते हैं इत्यादि बातें वनस्पतिशास्त्र के गूढ़ विषय हैं। कृषि महाविद्यालय तथा वनस्पति-भवन में पौधों के अंश कोई समझदार आदमी सूक्ष्म-वीक्षण यंत्र द्वारा दिखाकर समझा सकता है। इन्हीं कोषों के द्वारा पृथिवी के नीचे जड़ से लेकर ऊपर फुनगी तक पौधे को भोजन पहुँच जाता है और इन्हीं में होकर उसके प्रत्येक अंग में पहुँचता है।

कोष द्वारा पौधे निर्मित होते, बढ़ते और टूटते हैं। कुछ कोष खाली होते हैं; कुछ कोषों द्वारा भोज्य पदार्थ पौधे

के एक अंग से दूसरे अंग में आते जाते हैं; कुछ कोषों में भोज्य पदार्थ जमा होते हैं; कुछ कोषों में भोज्य पदार्थ छनते हैं; इत्यादि अनेक क्रियाएँ होती हैं जो देखने और समझने में बड़ी मनोरंजक हैं। एक कोष से दूसरे कोष में किस प्रकार भोज्य पदार्थ जाता है यह एक साधारण प्रयोग से समझ में आ जायगा। एक नलिका, जिसमें कोई गाढ़ा तरल पदार्थ भरा हो और उसके मुँह पर एक झिल्ली लगी हो, पानी के ऊपर रखी जाय तो देखने में आवेगा कि गाढ़ा तरल पदार्थ पानी पर उतर रहा है और पानी नलिका में चढ़ रहा है। इस विधि को ओसमैटिक प्रोसेस (Osmatic process) कहते हैं।

५—पौधा किन वस्तुओं से बना है

पौधे में बहुत बड़ा हिस्सा जल का होता है। हरे बढ़ते हुए नवीन पौधे में आठ हिस्से में सात हिस्से तक पानी हो सकता है। तरुण अवस्था में चार हिस्से में तीन हिस्से जल के होते हैं और प्रौढ़ बीज में आठ हिस्से में एक हिस्सा जल पाया जाता है।

पौधे के सूखने का कारण यह होता है कि उसका पानी सूख जाता है। उसे जला देने से केवल थोड़ी सी राख रह जाती है। बहुत सी वायु धुएँ के रूप में निकल कर मरुत-मंडल में मिल जाती है। राख में पौधे के वे अंश शामिल हैं जो उसने पृथिवी से प्राप्त किए हैं।

यदि राख की रासायनिक मीमांसा करके देखा जाय तो राख में फासफोरस, पोटाश, सोडा, मैगनीशिया, चूना, आयरन आक्साइड, सीलिका, गंधक, खनिज पदार्थ आदि सम्मिलित हैं। यह मरे हुए पौधे की मीमांसा है। जीवित पौधे में कोष काम करते हैं। कोष में एक लिबलिबा पदार्थ होता है जिसे प्रोटोप्लाज्म अथवा जीवन-रस कहते हैं। बहुत से वैज्ञानिकों का मत है कि जीव इसी लिबलिबे पदार्थ में रहता है। जीवित अवस्था में प्रोटोप्लाज्म की मीमांसा नहीं हो सकी है। मरी अवस्था में इसकी रासायनिक मीमांसा से विदित होता है कि इसमें पौधे के लगभग सब अंश सम्मिलित हैं। पौधे तथा अन्य जीवधारी इसी के आज्ञानुसार काम करते हैं।

६—पौधे का भोजन

पौधे की वृद्धि और पालन की ओर कृषिकार को सदा ध्यान देना चाहिए। उसे उन पदार्थों को जिनसे पौधे को भोजन प्राप्त होता है बचाने की चेष्टा करनी चाहिए और किसी लाभ को उनकी रक्षा के लिये अधिक न समझना चाहिए।

पौधा, जैसा कि कहा जा चुका है, पानी के द्वारा अपना भोजन प्राप्त करता है। जिन वस्तुओं से पौधा अपना भोजन प्राप्त करता है वे पदार्थ मिश्रित दशा में भूमि से जड़ द्वारा पानी में घुलकर पत्तियों तक ले जाए जाते हैं। पत्तियों में कई क्रियाओं द्वारा ये सब पदार्थ पौधे के सम-पदार्थ में तबदील होते हैं और उन स्थानों पर लाए जाते हैं जहाँ बाढ़ होती है।

फुनगी, कली इत्यादि कोमल अंगों में बाढ़ बड़े वेग से होती है। हम कह आए हैं कि पौधे कई पदार्थों से बनते हैं। इससे यह मालूम होता है कि पौधे को बढ़ने के निमित्त किन किन पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। यह आवश्यकता उस समय से प्रारंभ हो जाती है जब कि पौधा बीज में एकत्रित हुआ भोजन खा चुकता है। पौधे को (अ) आक्सिजन, हाइड्रोजन, कार्बन, नाइट्रोजन और क्लोरीन की आवश्यकता पड़ती है। ये पदार्थ वह वायु से ग्रहण करता है। (ब) वह पोटाश, फासफोरस, मैगनीशिया, चूना, सोडा, लोहा, गंधक, फासफोरिक एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड, सीलिका, क्लोरीन, कुछ आइओडीन पृथिवी से ग्रहण करता है। इनमें से पहले छः पदार्थ आवश्यक हैं परंतु बाकी के रहने से पौधों को लाभ पहुँचता है। पहले छः पदार्थों के बिना पौधा भली भाँति नहीं बढ़ सकता, वह रोगी रहता और भूखों मर जाता है।

पौधों के बढ़ने के लिये पृथिवी का होना आवश्यक नहीं है। बहुत से वनस्पति-शास्त्र के विज्ञान-वेत्ताओं ने इस बात की कृत्रिम रूप से परीक्षा की है कि पौधा बिना किसी पृथिवी पर उगाए हृष्ट-पुष्ट, बढ़ता, फलता और फूलता है परंतु कृषि-कार्य्य बिना पृथिवी के एक कठिन तथा असंभव बात है। गिनती में इतने अधिक पौधों के लिये असाधारण रूप से भोजन पहुँचाना सुगम नहीं है। प्रकृति पृथिवी द्वारा यह पदार्थ बड़ी सुगमता से पौधों को पहुँचाती है और वे बढ़ते और फलते

फूलते हैं। बिना पृथिवी के पौधों का भोजन एकत्रित करने में और उनकी देखभाल करने में बहुत व्यय और परिश्रम पड़ेगा।

हम पर यह विदित हो गया कि पौधा प्राकृतिक हालतों में भोजन कहाँ से प्राप्त करता है, इसके लिये—

(१) वायु,

(२) पानी और

(३) पृथिवी मुख्य पदार्थ है।

प्राकृतिक दशा में वायु का कोष अगाध है जो कभी खाली नहीं होता। इस ओर से कृषक निश्चिंत रहता है।

पौधे के निमित्त पानी का प्राप्त होना अति आवश्यक है। बिना इसके वनस्पति-जीवन असंभव है।

प्राकृतिक अवस्था में सब स्थान ऐसे नहीं मिलते जहाँ पृथिवी में पौधे के सब भोज्य पदार्थ प्राप्त होते हों। कृषिकार का कर्त्तव्य अनेक रूप में इस ओर है जिसके द्वारा वह अच्छा तथा बुरा कृषक समझा जाता है। अच्छा कृषक पौधों की कुल आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। अमेरिका के उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए कृषकों से लेकर जो आधुनिक रसायन और वनस्पति-विद्या का प्रयोग करते हैं पृथिवी की शक्ति और उसकी कमी को जान लेते हैं तथा उन्हें पूरा करते हैं, अफ्रीका के कृषिकार्य में नौसिखुए अपनी विद्या और पुरुषार्थ के अनुसार कृषि-कर्म्म करते हैं। भाफ, बिजली, सूर्य की ताकत तथा बारूद इत्यादि परिश्रम बचाने के काम में लाए

जाते हैं और उनसे पृथिवी और कृषि की आवश्यक दशाओं को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा की जाती है।

७—वायु से प्राप्त पौधे का भोजन

वायुमंडल कई वायुओं का मिश्रण है। इसमें अधिकांश नाइट्रोजन और आक्सिजन वायु का है। नाइट्रोजन सौ में ७९ हिस्सा पाई जाती है और शेष में आक्सिजन, कार्बोनिक एसिड गैस और अन्य वायुएँ हैं। पौधे की बाढ़ और जीवन के लिये इन वायुओं का होना अत्यंत आवश्यक है। पौधा वायु-मंडल से केवल कार्बोनिक एसिड गैस सीधे ग्रहण करता है। इसकी क्रिया पहले कही जा चुकी है। पौधा मरुत-मंडल के अगाध कोष से नाइट्रोजन इस प्रकार ग्रहण नहीं कर सकता, किंतु नाइट्रोजन दूसरी वस्तुओं के संयोग में संयुक्त-नाइट्रोजन (अथवा कंबाइंड नाइट्रोजन) के रूप में पौधों को प्राप्त होती है। नाइट्रोजन पौधों के लिये बहुत उपयोगी है। यह प्रायः सभी बीजों में पाई जाती है। दाल की सभी फसलों में नाइट्रोजन का अंश रहता है। पशु-प्राणियों के लिये नाइट्रोजन बड़ी पौष्टिक है। नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग करने में फली-दार पौधों में विशेषता होती है। फलीदार पौधों की जड़ों में घुंडियाँ होती हैं जिनमें छोटे छोटे पौदे (Bacteria) रहते हैं; वे वायु से नाइट्रोजन को प्राप्त करके पौधों को पहुँचाते हैं। दूसरे पौधे नाइट्रोजन खार नाइट्रेट्स (Nitrates) तथा अमोनिया के रूप में ग्रहण करते हैं।

आक्सिजन वायु को पौधा पानी द्वारा प्राप्त करता है। शुद्ध पानी आक्सिजन और हाइड्रोजन वायु के मेल से बना हुआ है। जल जो बरसता है शुद्ध होता है, केवल उसमें कुछ मरुत-मंडल की वायु मिली होती है। जब पानी पृथिवी पर पड़ता है वह उसमें घुल जाती है।

अमोनिया एक प्रकार की संयुक्त वायु है। यह नाइ-ट्रोजन और हाइड्रोजन दो तत्त्वों से मिलकर बनी है। अगर नौसादर और चूना मिलाया जाय और उस पर थोड़ा सा पानी डाला जाय तो उसमें से एक प्रकार की वायु निकलेगी। यह वायु अमोनिया वायु (Ammonia Gas) कहलाती है। यह बहुत जल्द उड़कर हवा में फैल जाती है। पौधों के लिये यह अत्यंत उपयोगी होती है, क्योंकि इसके द्वारा पौधों को नाइट्रोजन प्राप्त होती। इसका एकत्रित रखना परम आवश्यक है। घूरों में, खाद के ढेरों में, पशु के मूत्र में, यह वायु बनता है। इसके उड़ जाने से खाद की उपयोगिता कम हो जाती है, इस प्रकार खाद का एक उपयोगी भोजन का अंश नष्ट हो जाता है। खाद का भली प्रकार प्रबंध करने से यह वायु उसमें से अधिक नहीं उड़ने पाती और इस प्रकार हानि नहीं होती। इसके उन तत्त्वों की जो उसमें उपस्थित होते हैं रक्षा करनी चाहिए जिससे अमोनिया न बन सके और नष्ट न हो जाय। अमोनिया पानी में बहुत जल्द घुल जाती है। कभी कभी यह इतना नीचे चली जाती है कि पौधा इसे प्राप्त नहीं कर सकता।

८—पानी से प्राप्त पौधे का भोजन

पानी का काम पौधे में उसके भोजन-पदार्थों को पहुँचाना है। इसके द्वारा पौधा आक्सिजन और हाइड्रोजन प्राप्त करता है, क्योंकि पानी इन्हीं दोनों तत्त्वों के मेल से बना है। पौधे को बाढ़ की अवस्था में तथा जब उसमें फूल लगते हैं अधिक आक्सिजन की आवश्यकता होती है। अधिक जल जो पौधा प्राप्त करता है वह अपनी पत्तियों द्वारा या अन्य अंगों द्वारा त्याग देता है।

९—पृथिवी द्वारा प्राप्त पौधे का भोजन

पौधा जिन पदार्थों से बना है, उनके खनिज अंश वह पृथिवी से प्राप्त करता है। उनमें से फासफोरस, पोटाश अत्यंत आवश्यक हैं। सोडा, चूना, लोहा, सीलिका, मैगनीशिया, गंधक क्रमशः आवश्यक हैं। ये पदार्थ पौधा सलफेट, फासफेट, नाइट्रेट इत्यादि रूप में प्राप्त करता है। इस दशा में ये पानी में नहीं घुल सकते हैं। जो अंश पानी में नहीं घुल सकता वह पौधे में से निकले हुए एक प्रकार के अम्ल में घुलकर पौधे के भोजन के काम में आता है। यह अम्ल पौधा अपनी जड़ों द्वारा निकालता रहता है।

फासफोरस—दियासलाई पर जो लाल अंश रहता है वह फासफोरस पदार्थ है। दियासलाई पर लगा हुआ फासफोरस रासायनिक रीति से इस अवस्था में होता है कि

बिना रगड़े नहीं जलता। शुद्ध फासफोरस वायु में तुरंत जल उठता है। इस कारण इसे पानी में रखते हैं। यह पदार्थ हड्डी में अधिक पाया जाता है। पशु इसका अंश वनस्पति से प्राप्त करते हैं और वनस्पति इसे पृथिवी से एकत्रित करती है।

पोटाश—यह पदार्थ राख में अधिक पाया जाता है। विशेष कर तंबाकू के पौधे में इसका अंश अधिक होता है। नाईट्रिक एसिड के संयोग से पोटाश से शोरा बनाया जाता है। इस कारण उन फसलों को जिन्हें पोटाश की आवश्यकता होती है शोरे और राख की खाद दी जाती है।

सोडा—यह पदार्थ पृथिवी में बहुत होता है। शायद ही किसी पृथिवी में इस खाद के देने की आवश्यकता पड़ती है। आग, तेल तथा लंप में पीला रंग, इसी पदार्थ की मौजूदगी के कारण दिखाई देता है। पृथिवी-तल पर उगनेवाले पौधों में अधिकांश पोटाश का होता है और सागर में उगनेवाले पौधों में सोडा अधिक पाया जाता है। नमक में यह पदार्थ विशेष कर होता है।

सीलिका—चकमक पत्थर तथा बालू सीलिका के रूप हैं। यह पदार्थ, जौ, गेहूँ तथा बाँस इत्यादि पौधों में अधिक पाया जाता है और इसी पदार्थ के कारण चमक होती है। बालू रूप में यह पदार्थ पृथिवी में प्रायः अधिक पाया जाता है।

आयरन—लोहा पौधों के बढ़ने के लिये अत्यंत उपयोगी है। बिना इसके पौधा हरा नहीं रह सकता और न अच्छी तरह बढ़ता है।

गंधक—गंधक पौधों में विशेष रूप से पाया जाता है जैसे सरसों, लहसुन, प्याज, मूली इत्यादि में।

१०—पौधा कैसे भोजन करता है

पौधे की भोजन करने की रीति उसकी भीतरी बनावट को भली भाँति समझने पर निर्भर है। यह विषय वनस्पति-शास्त्र का है। यहाँ हम केवल यह कहना चाहते हैं कि पृथिवी में पौधे के भोजन संबंधी खनिज पदार्थ वर्तमान रहते हैं। जब पानी पृथिवी में सूख जाता है वे पदार्थ उसमें थोड़ी बहुत मात्रा में घुल जाते हैं, जैसे पानी में नमक घुलता है और हम उसे घुलता हुआ नहीं देख सकते जब तक कि उसे न चखें। पानी के साथ अमोनिया या नाईट्रेट्स और कार्बोनिक एसिड भी शामिल रहते हैं। जब ये पदार्थ घुल जाते हैं तो वे मूल-केश (Root Hair) द्वारा पौधों में चढ़ते हैं और क्रमशः पौधों की जड़ों में होकर पेड़ी द्वारा पत्तियों में जाते हैं और वहाँ पौधे के सम पदार्थों में तबदील होते हैं और तब पौधे में नलियों द्वारा उन स्थानों को जाते हैं जहाँ बाढ़ होती रहती है और उनसे पौधों के अंग निर्मित होते रहते हैं।

सब पौधे एक ही मात्रा में खनिज पदार्थ नहीं ग्रहण करते और न एक ही प्रकार के खनिज पदार्थ सब पौधों को

आवश्यक हैं। एक ही स्थान और एक ही पृथिवी में कई प्रकार की वनस्पतियाँ होती हैं। वे अपनी प्रकृति और आवश्यकता के अनुसार अपना भोजन ग्रहण करती हैं। भिन्न भिन्न फसलों की प्रकृति और आवश्यकता को समझना आवश्यक है। वनस्पति और रसायन-शास्त्र द्वारा इन बातों का ज्ञान होता है। साधारण अनुभव से उनकी प्रकृति और अवस्था का भी बोध होता है।

पाँचवाँ परिच्छेद

पृथिवी, उसकी उत्पत्ति और बनावट

वैज्ञानिकों का मत है कि धरती, जिस पर हम रहते हैं, सूर्य से अलग हुई है और आकर्षण-शक्ति द्वारा वर्त्तमान दशा में स्थित है। पहले यह एक जलते हुए पदार्थ का गोला थी, धीरे धीरे यह ठंढी होने लगी। लाखों वर्ष में इसके ऊपर का धरातल ठंढा हुआ और भीतर अभी तक गर्म ही रही आई जैसा कि ज्वालामुखी पर्वतों, गरम चशमों और अन्य उदाहरणों से प्रकट होता है। पृथिवी के ठंढा होने पर गला हुआ अंश जमकर कड़ा हो गया। इस कड़े भाग को चट्टान कहते हैं। ये चट्टानें बराबर बनती और नाश होती रहती हैं। इनकी उत्पत्ति, बनावट और पतनभूगर्भ विद्या का गूढ़ विषय है। यह पृथिवी, जिस पर हम लोग रहते हैं और खेती करते हैं, इन्हीं चट्टानों के टूटने से बनी है। कड़ी से कड़ी चट्टानें छिजानेवाली शक्तियों द्वारा टूटती चली ज़ाती हैं और इनसे नवीन धरातल बनता चला जाता है। ये क्रियाएँ बहुत धीरे धीरे होती हैं यहाँ तक कि साधारणतः यह जान नहीं पड़तीं। इनका एकत्रित परिणाम बहुत दिखलाई पड़ता है जैसे गंगाजी के दहाने पर सुंदरवन की धरती।

चट्टानें भी कई प्रकार की होती हैं। जैसी चट्टान होती है उससे उसी प्रकार की धरती बनती है। कुछ चट्टानें ऐसी होती हैं जो बलुई हैं अथवा जब वे टूटती हैं उनके कण दरदरे रहते हैं, अति सूक्ष्म नहीं होते। कुछ ऐसी हैं जो क्रमशः अति सूक्ष्म हो जाती हैं जिनसे चिकनी मिट्टी बनती है। बालू के कण बहुत कड़े होते हैं। वे बड़ी कठिनता से पीसे जा सकते हैं। इससे उनमें बहुत दरदराहट रहती है। चिकनी मिट्टी में दरदराहट नहीं होती क्योंकि उसके कण अति सूक्ष्म होते हैं।

चट्टानों के भेद से धरतियों में भी भेद होता है। एक देश की धरती दूसरे देश की धरती से, एक जिले की धरती दूसरे जिले की धरती से, एक खेत की धरती दूसरे खेत की धरती से भिन्न होती है। इस भेद से धरती की प्रकृति और उपयोगिता में भी बड़ा अंतर पड़ जाता है। एक प्रकार की मिट्टी पर एक प्रकार की फसल को सुभीता होता है, दूसरे पर किसी और को, और किसी किसी पर सब प्रकार की फसलें बढ़ती हैं। स्थान और समय के अनुसार पृथिवी की अनेक दशाएँ होती हैं।

प्रायः चट्टानें खनिज पदार्थों की बनी होती हैं। उनमें जीवित पदार्थ (Organic Matter) का बहुत कम अंश होता है। चट्टान के चूरे और खेत की मिट्टी का मिलान करने से ज्ञात होता है कि खेत की मिट्टी का रंग अधिक काला है।

यदि दोनों तौलकर जलाए जायँ तो खेत की मिट्टी की तौल कम हो जायगी और चट्टान का चूर्ण वैसा ही रहेगा। इससे ज्ञात होता है कि खेत की मिट्टी का कुछ अंश जल गया है। यह जला हुआ अंश वनस्पति तथा पशु-पदार्थ का अंश था। बिना जला हुआ अंश खनिज पदार्थ का था जो नहीं जला। जले हुए अंश को जीवित पदार्थ अर्थात् अँगरेजी में आरगैनिक मैटर (Organic Matter) कहते हैं और बिना जले अंश को खनिज अथवा इन-आरगैनिक अंश (Inorganic Matter) कहते हैं। इससे पृथिवी की मोटी मीमांसा में—

(१) चट्टान का चूरा अथवा बालू और चिकनी मिट्टी,

(२) जीवित पदार्थ (Organic Matter) और

(३) पानी का अंश होता है।

चट्टानें कई कारणों से टूटती और बारीक होती रहती हैं। उनके टूटने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं।

गर्मी और सरदी का हेर फेर—ऋतुओं के परिवर्तन तथा दिन की गर्मी और रात की सरदी से क्रमशः बड़ा भारी प्रभाव चट्टानों पर पड़ता है। वे इनके प्रभाव से बढ़ती और सिकुड़ती रहती हैं और अंत में कड़क जाती हैं और टूटकर चूर चूर हो जाती हैं।

बिजली—इसके गिरने से चट्टानें फूटकर खंड खंड हो जाती हैं।

पानी—पानी के बरसने से चट्टानें भीगकर नर्म हो जाती हैं। इन पर दूसरे प्राकृतिक कारण जैसे गर्मी, सरदो का प्रभाव पड़ता है। इस कारण से चट्टानें टूट जाती हैं। जहाँ पर बरफ और पाला पड़ता है वहाँ पानी चट्टानों के बीच की दरारों में एकत्रित होकर जम जाता है। जमने पर बरफ फैलती है और उसके प्रभाव से दो पास की चट्टानें एक दूसरे से पृथक् होकर टूट जाती हैं। पानी का प्रबल प्रभाव वायु के संयोग में हुआ करता है। पानी के बहाव के वेग से भी चट्टानें पिस जाती और कट जाती हैं। पानी में चट्टानों का कुछ न कुछ अंश अवश्य घुल जाता है। इस प्रकार बहुत सी चट्टानें झँझरी हो जाती हैं। इस अवस्था में सरलता से अन्य कारणों के प्रभाव से वे टूट जाती हैं।

वायु—पानी के संयोग में वायु का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। हवा जिन पदार्थों द्वारा बनी है उनमें से आक्सि-जन के प्रभाव से चट्टानों पर मुर्चा लग जाता है। कार्बोनिक एसिड गैस के संयोग में एक हलका अम्ल बनता है जिसका प्रभाव चट्टानों पर पड़ता है। वायु का प्रभाव लोहे पर मुर्चा लगने पर देखा जाता है। जैसे चमकती हुई छुरी अगर बरसात में रख दी जाय तो थोड़ी देर में उस पर मुर्चा लग जाता है। यह मुर्चा लोहे से बनता है। मुर्चा लग कर प्रायः लोहे के गगरों में छेद हो जाता है अथवा उनके पेंदे घिस जाते हैं।

पौधों का प्रभाव—बहुत से पौधे थोड़ी मिट्टी पाकर चट्टानों पर तथा चट्टानों के दरारों में उग आते हैं। उनकी जड़ें दरारों में घुसती हैं, बढ़ती हैं और समय के अनुसार फैलती और मोटी होती जाती हैं, इनके जीवित बल से चट्टानें फटकर टूट जाती हैं। प्राय: इमारतों में पीपल तथा बरगद के पेड़ों के उगने और उन्हें धार्मिक विचारों के अनुसार न काटने से उनका प्रभाव इमारत पर देखने में आता है। कहावत प्रसिद्ध है जहाँ लोहे के रंबे असमर्थ होते हैं वहाँ पौधों की जड़ों तथा पेड़ों के प्रबल प्रभाव से चट्टानें टूट जाती हैं।

पशुओं का प्रभाव—सब पशुओं में श्रेष्ठ मनुष्य सुरंगें लगाता है, रेल निकालता है, बजरी काटता है, नहरें बनाता है। इसके अतिरिक्त पशु अपने रहने को माँद बनाते हैं। चट्टानों पर चलते फिरते और उन पर रास्ता बनाते हैं। अपना शरीर घिसते हैं।

स्थानी और प्रस्थानी धरतियाँ

स्थानी धरती—प्राय: ऐसा कम होता है कि जहाँ पर चट्टानें टूटती हैं उनका चूरा वहीं पड़ा रहे। कहीं कहीं चट्टानें फूटकर बारीक हो जाती हैं और अपने ही स्थान पर पड़ी रहती हैं। ऐसे चूरे की बनी हुई धरती को स्थानी धरती अथवा अँगरेजी में सिडेंट्री सॉयल (Sedentry soil) कहते हैं। स्थानी धरती अच्छी किस्म की जमीन नहीं होती। उसकी गहराई बहुत कम होती है जिससे पौधों की जड़ें उसके

भीतर दूर तक अपने निमित्त काफी भोजन नहीं प्राप्त कर सकतीं। उस पर वृक्ष भी नहीं थम सकते। पानी के प्रभाव से प्रायः छोटे टुकड़े तो बहकर चले जाते हैं; बड़े बड़े कंकड़ीले टुकड़े, बजरी या थोड़ी सी मिट्टी वहाँ पर रह जाती है। हिंदुस्तान में पच्छिमी घाटों की ओर ऐसी पृथिवी बहुत है। संयुक्त प्रांत में बुंदेलखंड तथा हिमालय पर्वत पर कहीं कहीं ऐसी जमीनें हैं। जब जड़ें उनकी गहराई पार कर चट्टानों तक पहुँचती हैं तो वहीं रह जाती हैं। इन धरतियों में पानी भी नहीं थम सकता। वह जैसे ऊपर पड़ता, बह जाता है और पृथ्वी सूख जाती है। जहाँ देश के ऊँचे भागों में इस प्रकार की धरतियाँ हैं प्रायः वे चट्टानें, जिनसे वह धरती बनी है, वर्तमान दिखाई देती हैं।

प्रस्थानी धरती—प्रस्थानी धरती उसको कहते हैं जो अन्य स्थान से लाए हुए पदार्थों से बनती है। प्रायः यह उन चट्टानों से, जिनसे कि यह धरती बनती है, बहुत दूर होती है। जितने प्रकार की धरतियाँ मैदानों में देखने में आती हैं वे प्रस्थानी होती हैं। कई कारणों से ये धरतियाँ पहाड़ों और चट्टानों से बह आती हैं और एकत्रित होती हैं और उनसे धरती बनती है। इसके मुख्य कारण वायु और पानी हैं।

पृथिवी के कण आँधी तथा पवन से उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को चले जाते हैं।

बहते हुए पानी के साथ पृथिवी के कण बह निकलते हैं और उनसे कई प्रकार की धरतियाँ बनती हैं। जब पानी उँचाई से बह निकलता है उस समय उसका वेग बहुत प्रबल होता है। उसके साथ बड़े छोटे पत्थर और बजरी भी बह चलती है। कुछ दूर चलकर जब समतल मैदान पड़ता है पानी का वेग कम हो जाता है और पत्थर वहीं रह जाते हैं। इसी प्रकार और आगे चलकर बजरी भी रह जाती है तथा और आगे चलकर बालू भी रह जाता है और पृथिवी के बहुत बारीक कण बहकर थिरा जाते हैं।

संयुक्त प्रांत में ऐसी धरती गंगाजी के तट पर हरद्वार से लेकर इलाहाबाद तक तुलना करने से देखी जाती है। बंगाल की खाड़ी में जहाँ समुद्र और गंगाजी का संगम है वहाँ के बालू और सहारनपुर के बालू का मिलान करने से विदित हो जाता है कि दोनों स्थानों के बालू के कणों के परिमाण में कितना अंतर है।

मैदान की धरतियाँ जिनमें कई प्रकार के कण मिले होते हैं प्रायः बहुत उपजाऊ होती हैं।

नदी जहाँ समुद्र से मिलती है और जहाँ पर उसकी कई शाखाएँ हो जाती हैं उसे नदी का डेल्टा कहते हैं। डेल्टा में नदी के साथ बहकर आई हुई बहुत बारीक मिट्टी एकत्रित हो जाती है और समय पाकर उससे नई धरती बन जाती है। जीवित पदार्थों के कणों से मिली हुई बारीक मिट्टी को सिल्ट

कहते हैं। यह सिल्ट बहुत स्थानों की स्थानी प्रस्थानी धरतियों का निचोड़, मैदानों के धोवन, भूमि तथा चट्टानों के काटने से एकत्रित होकर नदी के साथ बह निकलती है और जैसा ऊपर दिखाया गया है बहाव के वेग के अनुसार स्थान स्थान पर एकत्रित होती जाती है।

तालाबों में बहुत सी सिल्ट जमा होती है। जब तालाब सूख जाते हैं यह सिल्ट दिखाई पड़ती है। तालाबों की मिट्टी इस कारण बहुत उपजाऊ होती है कि उसमें बहुत से जीव, मछली, घोंघा, सिवार आदि मर जाते हैं और आसपास की धरतियों का निचोड़ धोवन बहकर उनमें आकर गिरता है।

छठा परिच्छेद

धरतियों का विभाग और उनकी परिभाषा

१—धरतियों के प्राकृतिक विभाग

भौतिक तथा रासायनिक क्रियाओं द्वारा जब चट्टानें टूट-कर चूर्ण हो जाती हैं, तो उनमें बहुत कुछ परिवर्तन होता है। उनके रंग और रूप में अंतर पड़ जाता है और कई प्रकार की धरतियाँ बन जाती हैं। यदि टुकड़े बड़े बड़े हैं और पत्थर के टुकड़ों के आकार बेडौल हैं, तो पृथिवी पथरीली कही जाती है। यह पृथिवी कृषि-कार्य के लिये अनुपयोगी है। ऐसी पृथिवी पर न तो पौधा खड़ा ही रह सकता है और न उसमें से अपना भोजन ही प्राप्त कर सकता है। ऐसी ही अधिक या कम दशा कंकड़ीली धरती की होती है। उसमें कुछ अंश महीन धरती का होता है परंतु उसमें भी अधिक कंकड़ या बजरी के होने के कारण कृषि नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त पोत के विचार से कुछ धरतियाँ महीन धरती की बनी होती हैं जिन पर अच्छी फसलें उत्पन्न होती हैं परंतु कुछ ऐसी हैं जिन पर कुछ नहीं होता। इनमें मटियार और बलुई धरती भी हैं।

२—मटियार धरती

शुद्ध मटियार धरती छूने में चिकनी लसदार होती है। उसको चुटकी में दबाने से दरदराहट नहीं मालूम होती। जब

उस पर पानी पड़ता है तब वह फिसलाऊ हो जाती है और पाँव में चिपकती है। प्रायः शुद्ध बालू या चिकनी मिट्टी खेतों में नहीं पाई जाती। बहुधा ये खेतों में मिली हुई पाई जाती हैं। कुछ शुद्ध बालू नदी के तीर पर ऊपर की सतह पर निकलता है और कुछ शुद्ध चिकनी मिट्टी तालाबों या अन्य जलाशयों में पाई जाती है। खेतों में इनके अधिक या कम अंश वर्तमान होने के कारण धरती बलुई या मटियार कहलाती है। यदि चार भाग में से तीन भाग चिकनी मिट्टी का हो और एक अंश या उससे भी कम या कुछ अधिक बालू हो तो ऐसी जमीन को मटियार भूमि कहते हैं, क्योंकि उसमें मिट्टी का अंश अधिक होता है।

मटियार भूमि जब सूखती है उसमें बड़ी बड़ी दरारें पड़ जाती हैं जिनके भीतर बहुत सा पानी भरता है। इस कारण उनकी सिंचाई निष्फल हो जाती है। मटियार धरती भीगने पर फूलती है और सूखने पर सिकुड़ती है तथा कड़ी हो जाती है। गीली दशा में वह चिपकती है। हल या और कोई यंत्र चलाया जाय तो यह मिट्टी उसमें लगती है और उन्हें चलाने में बड़ी मेहनत पड़ती है और खींचने में अधिक बल और परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है, इस कारण मटियार भूमि 'भारी धरती' कहलाती है। इसके विपरीत बलुई जमीन 'हलकी धरती' कहलाती है, क्योंकि उसमें जोताई के यंत्र सुगमता से चलते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि

तौलने में मटियार जमीन भारी हो और बलुई हलकी हो क्योंकि यदि सम माप जैसे एक सौ घन इंच (100 cubic inches) बालू और एक सौ घन इंच मटियार भूमि पृथक् पृथक् तौली जाय तो मिट्टी का तौल १८० तोले के लगभग और बालू का तौल २५० तोले के लगभग होगा, जिससे ज्ञात होता है कि बालू मटियार जमीन से तौल में भारी होने पर भी "हलकी धरती" की गणना में है, क्योंकि उसमें जोत के यंत्रों के चलने में सुगमता होती है।

गीली मटियार भूमि में हल चलाने से दलदल हो जाता है जो सूखने पर बारीक नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में कृषिकार फसल के लिये जमीन जब तक कुछ सूखकर जोतने लायक न हो जावे, उसे जोतने से हानि उठाता है। बहुत सूख जाने पर हल पृथिवी पर बड़ी कठिनता से काम करते हैं। भूमि एक प्रकार कुछ खुरच जाती है, हल गहरा नहीं जा सकता, कितने हल टूट भी जाते हैं। ऐसी पृथिवी कुम्हारों के बड़े काम की है; जिससे वे अच्छे अच्छे बर्तन बनाते हैं। कृषिकार के लिये तो यह दुर्भाग्य का कारण हो जाती है।

मटियार भूमि में शीघ्र पानी नहीं सोखता। सोख जाने पर अधिक समय तक उसमें रहता है। ऐसी भूमि का धरातल चाहे ऊपर सूख जाय परंतु उसके भीतर नमी पाई जाती है। कम पानी पड़ने पर मटियार धरतियों पर असर नहीं होता। अधिकांश जल बह जाता है और उसके साथ कुछ

पृथिवी भी घुल जाती है। जब पानी धीरे धीरे करके बरसता है और मटियार भूमि में सोख जाता है, तो वह अधिक समय तक धरती में रहता है। समयानुसार उससे पैाधों को लाभ होता है। कभी कभी जल के रुकने से पृथिवी नम हो जाती है जिससे फसलों में गेरुई लग जाती है और नमी से हानि पहुँचती है, साथ ही धरती के छिद्र बंद हो जाते हैं और उसमें वायु का प्रवेश स्वच्छंदता से नहीं होता। अधिक पानी देते समय इस बात का विचार करना चाहिए। कभी कभी अधिक जल रुकने के कारण धरती 'क्षार' अथवा रेहयुक्त हो जाती है।

मटियार भूमि में पैाधों का भोजन अधिक होता है। उनमें जो खाद दी जाती है जल्दी से नहीं बहने पाती, उनमें पानी की ग्रहण और धारण करने की शक्ति अधिक होती है। मटियार भूमि में पैाधों की जड़ें दृढ़ता से स्थिर रहती हैं।

३—मटियार धरतियों के सुधारने की रीतियाँ

१—बालू मिलाने से मटियार धरतियों की दशा सुधर जाती है। बलुए स्थान से गाड़ी पर बालू लाकर मटियार धरतियों में जोतने के समय बालू मिलाने से उनमें बालू अच्छे प्रकार से मिल जाता है। खाद के समान हर साल थोड़ा थोड़ा बालू यदि मटियार खेत में डाला जाय तो कुछ दिनों में खेतों की दशा सुधर जाती है।

२—खुर्चना और जलाना—इस रीति के अनुसार मटियार धरती देसी हल से तथा फावड़े से एक आध इंच खुर्चे

ली जाती है और जगह जगह पर घास फूस तथा जंगली खर पतवार एकत्रित करके जलाए जाते हैं। खर पतवार अधिक रखने की आवश्यकता नहीं। आँच अधिक तेज न होनी चाहिए। अभिप्राय यह है कि मिट्टी भुन जावे जिससे उसका चिपकना कम हो जाय और पुनः वह जोतने पर महीन टुकड़े होकर धरती में मिल जाय। आँच अधिक होने पर मिट्टी पक जाती है और खपड़े की भाँति उसका फूटना दुस्तर हो जाता है।

इस बात का विचार करना चाहिए कि तप्त धरती पर बैलों को न चलाया जाय। कुछ दिनों तक रुक रहने पर धरती जब अच्छी तरह से ठंढी हो जाय तब उसे जोतना और उस पर हेंगा चलाना उचित है। बैलों को तप्त धरती पर चलाना निर्दयता है और उससे उनको खुर की बीमारी हो जाने का भय रहता है। इस क्रिया में जमीन में राख की खाद मिलाने से भी लाभ होता है।

३—ताजा गोबर तथा लीद डालने से जमीन खुल जाती है और उसकी चिकनाहट कम हो जाती है। ताजा गोबर और सड़े हुए गोबर में भेद है। सड़ा हुआ गोबर महीन हो जाता है और उसमें लसी आ जाती है। ताजे गोबर में दरदराहट होती है।

४—हरियाली खाद देने से—कोई फ़सल बोकर उसे धरती में जोतने और उसको उसी में सड़ने को छोड़ देने को हरियाली की खाद कहते हैं। इससे धरती खुल जाती है।

५—बहुत से खेतों में पानी एकत्रित रहने से वे 'ठंढे' हो जाते हैं, उनमें हवा का आवागमन अच्छी तरह से नहीं होता। ऐसी धरतियों में पानी का निकास करने से पृथिवी की दशा अच्छी हो जाती है।

६—अच्छी और गहरी जोताई से भी मटियार जमीनों की दशा सुधर जाती है, क्योंकि धरती अच्छी तरह से सूर्य की किरणों से जलती है।

४—बलुई धरतियाँ

चट्टान के बारीक टुकड़ों को जो दरदरे और एक ही आकार के होते हैं बालू कहते हैं। शुद्ध बलुई भूमि अनुपजाऊ और कृषि के अयोग्य होती है। चिकनी मिट्टी बहुत बारीक कणों से बनी होती है जैसे यदि कुछ साधारण धरती को एक ग्लास में घोल दें और उसके पानी को निथारें तो बालू के बड़े बड़े टुकड़े पेंदे में बैठ जाते हैं। छोटे छोटे टुकड़े उनके ऊपर जमा हो जाते हैं; वे ही चिकनी मिट्टी के कण होते हैं। हाथों से छूने से मालूम होता है कि उनमें चिकनाहट है।

बलुई धरतियों की अवस्था उपर्युक्त वर्णित मटियार धरतियों से अधिक या कम प्रतिकूल होती है। शुद्ध बालू के अणु बहुत कड़े होते हैं। उनमें प्रायः कार्ट्ज (Quartz), चकमक पत्थर (Flint फ्लिंट), सिलिका (Silica) और अबरख (Mica) के टुकड़े पाए जाते हैं। ये शुद्ध रूप में नदी के तीर पर, कहीं कहीं समुद्र के तट पर

तथा अन्य स्थानों में पाए जाते हैं। इनका रंग प्रायः चमकीला सफेद होता है, यद्यपि अन्य रंगों का भी बालू होता है।

बलुई धरतियाँ खुली हुई धरतियाँ कहलाती हैं। इनमें चिपचिपाहट नहीं होती। ये जोत के यंत्रों में नहीं चिपकतीं। ऐसी धरतियाँ "हलकी" कहलाती हैं क्योंकि उनमें जोतने के यंत्रों के चलने में अधिक बल और परिश्रम नहीं पड़ता। उनमें पानी नहीं ठहरता बल्कि जल्दी बह जाता है। उनमें अधिक खाद और पानी देने की आवश्यकता पड़ती है जिससे कभी कभी लोग उन्हें क्षुधित और तृषित धरतियाँ भी कहते हैं। उनके धरातल पर पानी नहीं ठहरता और जो खाद दी जाती है वह पानी पड़ने पर बह जाती है, अथवा उनमें सूर्य की किरणों का प्रभाव पड़ने से या वायु के आवागमन से पानी शीघ्र सूख जाता है।

मटियार और बलुई धरतियों के उपर्युक्त वर्णन से विदित होता है कि मटियार धरतियाँ अच्छी और बलुई धरतियाँ खराब होती हैं। जितना ही अधिक शुद्ध बालू तथा चिकनी मिट्टी का अंश उनमें होगा उसी के अनुसार धरतियों की अवस्था में चिकनी मिट्टी तथा बलुई मिट्टी के गुण तथा अवगुण देखने में आवेंगे। यदि चिकनी मिट्टी अधिक है तो भूमि में भारीपन, चिकनाहट और कड़ापन पाया जायगा। यदि बालू अधिक है तो धरती हलकी, खुली हुई, क्षुधित और तृषित होगी। बलुई धरतियों गें लाभ के साथ खेती वहाँ होती है

जहाँ 'बहाव' का पानी प्राप्त होता है, जैसे नदी, नहर, या पोखरों का पानी, क्योंकि ऐसे जल के साथ सिल्ट का बहुत बड़ा अंश बहकर आता है और धरती के साथ मिल जाता है जिससे धरती उपजाऊ हो जाती है। इसके अतिरिक्त जहाँ खाद और पानी प्राप्त होता है वहाँ की बलुई धरतियाँ भी उपजाऊ होती हैं। इस प्रकार न तो बिलकुल बलुई और न तो बिलकुल मटियार ही धरती खेती के लिये सबसे अच्छी होती है। इन दोनों प्रकार की जितनी ही शुद्ध धरती होंगी उतना ही उसमें कृषि के अनुकूल गुणों का अभाव होगा। प्रायः दुमट धरतियाँ कृषि के लिये सबसे अच्छी होती हैं क्योंकि उनमें दोनों प्रकार की धरतियों के गुण पाए जाते हैं और उनकी बराबरी के मेल के कारण अवगुण कम हो जाते हैं। प्रायः मटियार दुमट से बलुई दुमट अच्छी होती है। उन पर सब प्रकार की फसलें चाहे भूमि के ऊपर फलने फूलनेवाली हों अथवा भूमि के भीतर पैदा होनेवाली हों, भली भाँति उत्पन्न हो सकती हैं। हर अवस्था में उद्योग तथा अधिक खाद और पानी से धरतियों की उन्नति हो सकती है।

नदी के तीर अधिक बलुई धरती पर प्रायः सब प्रकार की फसलें नहीं पैदा हो सकतीं परंतु अच्छी कछार होने पर तो उन पर गोइँड़ के सदृश खेत बन जाते हैं जिससे उन पर अति उत्तम खेती होती है।

बलुई धरती पर खाद, पानी और रखवाली के बल पर खटिक, कोइरी, कहार, मल्लाह सरीखी जातियाँ खीरे, ककड़ी, तरबूज और खरबूजा इत्यादि बोते हैं।

५—बलुई धरतियों के सुधारने की रीतियाँ

निम्नलिखित रीतियों के अनुसार बलुई धरतियाँ उपयोगी हो सकती हैं—

१—जिस प्रकार मटियार भूमि के सुधार के वर्णन में बालू के व्यवहार का वर्णन किया गया है उसी प्रकार बलुई धरतियों में मटियार धरती मिलाने से बलुई धरतियों की दशा सुधर सकती है।

२—अच्छी तरह सड़ी हुई पुरानी खाद के प्रयोग से बलुई धरती की दशा सुधर सकती है।

३—हरियाली की खाद देने से अथवा और किसी रूप में जीवित पदार्थ (Organic Matter) जैसे मैला इत्यादि की खादों के प्रयोग से।

४—पेड़ लगाने से जिससे कि उनकी पत्तियाँ गिरकर उनमें सड़ें और धरती की उन्नति हो।

५—पानी के ठहराने से—यदि पानी मेंड़ बाँधकर बलुई भूमि पर ठहराया जाय तो उससे धरती में बहुत से छोटे छोटे जानवर तथा कुछ पानी के पौधे मिल जाते हैं अथवा धरती के महीन कण ऊपर आकर भूमि की दशा सुधारते हैं।

६—कँदवा करना (Warping)—कुछ अवस्था में जल जिनमें मिट्टी का अंश, सिल्ट इत्यादि मिला हुआ हो पानी के बहाव के साथ धरती पर लाने और पानी में मिले हुए कँदवे को धरती पर थिराने का अवकाश देने से बलुई धरतियों की दशा परिवर्तित हो जाती है। प्राय: ऐसा नदी के तीर पर कई बेर पानी के कँदवा रोकने और फिर थिराए पानी को निकाल देने से कँदवा इतना एकत्रित हो जाता है कि भूमि की अवस्था पर उसका प्रभाव पड़ सकता है। ताल तथा पोखरी या बाहा के पानी को सुगमता के अनुसार बलुए खेतों तक ले जाकर उनकी उन्नति हो सकती है। इस रीति को अँगरेजी भाषा में वार्पिंग कहते हैं।

धरती के पोत के अनुसार हमने मुख्य दो प्रकार की धरतियों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इन दोनों प्रकार की धरतियों के मेल से कई प्रकार की धरतियाँ बनती हैं। यदि बलुई और मटियार धरती का अंश बराबर रहा तो उन्हें दुमट जमीन कहते हैं। दुमट जमीन पर खाद और पानी देने से जलवायु के प्रभाव के अनुसार सब प्रकार की फसलें पैदा हो सकती हैं। मैदानोंमें प्राय: इसी प्रकार की भूमि पाई जाती हैं अथवा मनुष्य उन्हें अपने व्यवहारों द्वारा अपने अनुकूल बना लेते हैं। दुमट धरती को कोई कोई सिक्ता धरती भी कहते हैं।

यदि दुमट भूमि में बालू का अंश अधिक होता है तो उसे बलुई-सिक्ता या बलुई-दुमट कहते हैं। यदि उसमें चिकनी

मिट्टी का अंश अधिक होता है तो उसे मटियार-सिक्ता या मटियार-दुमट कहते हैं। पैदावार की अधिक प्रकार की फसलें बोने के अनुसार क्रमशः दुमट अव्वल और दुमट दोयम श्रेणी की दुमट धरतियाँ होती हैं। इसी प्रकार रबी अव्वल, रबी दोयम, रबी सोयम, रबी चहारम, धनकर अव्वल, धनकर दोयम इत्यादि; पालो एक, पालो दो, गोईंड़ एक व दो अच्छे खेतों को कहते हैं। नंबर, रंग अथवा सजीव अंश के अनुसार नंबर एक को अच्छी श्रेणी और नंबर दो तीन को मध्यम और चार को क्रमशः घटिया श्रेणी की धरती कहते हैं। श्रेणी के विभाग करने में खाद, पानी, फसल, गाँव के नजदीक वा दूर होना इत्यादि कारणों का विचार किया जाता है।

६—धरतियों का विभाग

पृथिवी की उपयोगिता और उस पर अच्छी फसलों के पैदा होने के लिये सजीव अंश (Organic Matter) का मौजूद होना अत्यंत आवश्यक है। सजीव अंश की अधिकता के कारण बागों की धरती बहुत उपजाऊ होती है। सजीव अंश में वायु के अदृश्य जल-बिंदुओं को ग्रहण करने की और नमी को बहुत काल तक संचित रखने की शक्ति होती है। पानी के संचित रहने के कारण पौधों को भोजन का अधिक लाभ होता है जिससे वे अच्छी तरह बढ़ते हैं। सजीव अंश के रहने के कारण वर्षा तथा सिंचाई के जल का भली भाँति उपयोग होता है। सजीव अंश में पौधों का भोजन

भी होता है जिससे वे पौधों को भोजन पहुँचाने में भी सहायक होते हैं। यदि पृथिवी में सजीव अंश अधिक हुआ तो उसे अँगरेजी में (Peaty Soil) पीटी सॉयल अथवा लोदू धरती कहते हैं। सजीव अंश के कारण मिट्टी का रंग काला हो जाता है।

सजीव अंश के अनुसार गोइँड़, मंझा और पालो तीन प्रकार की धरतियाँ होती हैं।

७—धरतियों का रंग

साधारण अवस्था में देखा जा सकता है कि यदि गोबर मे सफेद चूना मिला दिया जाय तो उसका रंग परिवर्तित हो जाता है। उसमें बालू तथा लोना मिट्टी अथवा मटियार भूमि के मेल का भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। पौधों के भोजन के वर्णन में बहुत से खनिज पदार्थों का वर्णन है। उन खनिज पदार्थों की उपस्थिति का, वायु पानी के गुण से बड़ा प्रभाव पड़ता है, जिससे धरतियों का रंग बदल जाता है। रंग के बदलने से धरती का पोत बदलना तथा उसकी रासायनिक मीमांसा, जिससे भोजन संबंधी परिवर्तन हो, आवश्यक नहीं। परंतु बहुत सी दशाओं में रंग के परिवर्तन के साथ इन विषयों में भी परिवर्तन होता है जैसा कि मटियार भूमि भी काली होती है, बलुई भूमि भी काले रंग की देखी जाती है, दुमट धरती भी काले रंग की होती है। इसी प्रकार सफेद, पीले, हिरन ंग की तथा अन्य रंग की मटियार बलुई तथा सिक्ता धरतियाँ हो

सकती हैं। रंगों का परिवर्तन रासायनिक तथा भौतिक कारणों द्वारा हो सकता है।

करैल धरती—रंग के अधीन भारतवर्ष की करैल धरती का वर्णन मुख्य है। इसे अँगरेजी लेखों में बहुत लोग "काली कपास की धरती" कहते हैं। धरती का रंग काला होने के कारण उसे करैल कहते हैं। कपास की धरती इस कारण कहते हैं कि इस पर कपास की फसल बहुत बोई जाती है और अच्छी तरह पैदा होती है। बुंदेलखंड, बरार और मध्यप्रदेश की ओर ऐसी धरती बहुत है। करैल धरती प्राय: मटियार हुआ करती है और उसी के गुण अवगुण के समान होती है। गर्मी के दिनों में इसमें दरारें फट जाती हैं और धरती बहुत सख्त हो जाती है। बरसात के दिनों में पानी पड़ने से चिपचिपी हो जाती है। उस पर चलना कष्टदायी और जोताई कठिन होती है। यदि पानी बहुत है और कृषक ने जल्दी करके उसे जोत दिया तो गाढ़ा कँदवा हो जाता है। यदि पानी कम है तो उसे जोतने से बड़े बड़े चक्कों में ढले उखड़ते हैं जिन्हें सूखने पर तोड़ना असंभव नहीं तो अत्यंत परिश्रम और व्यय-साध्य हो जाता है। ऐसी धरतियों में चाहे उसके ऊपर का धरातल सूख जाय परंतु उसके नीचे के धरातल में बहुत समय तक तरी बनी रहती है। इस कारण जहाँ पानी कम बरसता है वहाँ भी नमी की पूर्ति से, यद्यपि सिंचाई का अभाव हो, फसलें अच्छी पैदा होती हैं। ऐसी

धरतियों में सजीव अंश भी बहुत होता है और प्राय: इनमें खाद नहीं दी जाती। इस पर जलवायु के अनुसार कपास के अतिरिक्त चना, मसूर, गेहूँ, तीसी, चटरी अथवा केसारी अथवा पानी और निचास के अधीन धान की फसलें अधिक बोई जाती हैं और उनकी पैदावार भी अच्छी होती है।

हलके रंग की धरतियाँ—इनका रंग प्राय: सफेदी मायल तथा हलके पीले रंग का होता है। प्राय: यह भूमि बलुई और खराब किस्म की होती है। इस प्रांत की भूर और उड़नियाँ धरतियाँ इसी प्रकार की हैं। उड़नियाँ उस धरती को कहते हैं जो हवा के झोंकों के साथ उड़ा करती है और उससे बहुत धूल उठती है। इन धरतियों पर बाजरा प्रभृति फसलें पैदा हो सकती हैं। प्राय: इन धरतियों का रंग अधिक चूना मौजूद होने के कारण सफेद होता है। अधिक चूना होने के कारण फसलों को हानि पहुँचती है।

हानिकारक खारों के संबंध में घुल जानेवाले खारों का वर्णन किया गया है। इन खारों के कारण धरती का रंग बदल जाता है। प्राय: ऐसी धरतियाँ हलके रंग की होती हैं। इन खारों के कारण धरतियाँ कृषि के अयोग्य होती हैं।

हलके रंग की चिकनी धरती भी कृषि के योग्य नहीं होती। प्राय: उसमें भोज्य पदार्थों का अभाव होता है और चिकनी मिट्टी के अवगुण होते हैं। जहाँ भोज्य पदार्थ की कमी नहीं है और धरती खारों से पीड़ित नहीं है वहाँ साधा-

रण फसलें बोई जाती हैं, और खाद पानी के प्रबंध से उनकी दशा सुधर सकती है। ऊसर और रेहयुक्त भूमि प्रायः ऐसे ही रंग की हुआ करती हैं।

लाल रंग की धरतियाँ—ये बलुई होती हैं। प्रायः इस रंग की धरतियाँ उपजाऊ नहीं होतीं। जहाँ पर इस रंग की सिक्ता धरतियाँ हैं उनकी उत्पादिका शक्ति एक हद तक अच्छी देखने में आती है। लाल रंग प्रायः लोहे के वर्तमान होने के कारण होता है।

रंग के विवरण के अनुसार पृथिवी की उपज निश्चय करके नहीं कही जा सकती। एक स्थान पर एक रंग की धरती उपजाऊ है, दूसरी जगह उसी रंग की धरती अनुपजाऊ है। इस कारण रासायनिक मीमांसा से भौतिक अवस्था के अनुसार कृषि की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता निश्चित हो सकती है।

८—धरतियों का प्रांतीय विभाग

हमने ऊपर चट्टानों की उत्पत्ति, उनसे धरतियों की बनावट और उनके प्राकृतिक विभाग का वर्णन किया है। स्थान स्थान पर इन धरतियों के भिन्न भिन्न स्थानीय नामों का होना संभव है। जैसे, इसी प्रांत में बुंदेलखंड में रंग और पोत भेद से मार, काबर, परवा और राकड़ मटियार और सिक्ता धरतियों की किस्में हैं। मार काली और मटियार धरती को कहते हैं, काबर का रंग उससे उतरकर होता है, परवा कुछ न

कुछ दुमट के सदृश होती है और राकड़ घटिया किस्म की धरती है। किस स्थान पर कैसी धरती है और वह प्राकृतिक अवस्था के अनुसार किस भाग में पड़ेगी यह विचार स्थानीय विचारों के अनुसार करना ही उचित है क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि मटियार प्रांत के अनुसार किसी स्थान की धरती बलुई समझी जाय परंतु उसी बलुई धरती को दूसरे स्थान पर दुमट कहते हैं।

इन्हीं धरतियों के नामकरण स्थानानुसार मध्यप्रदेश, बंबई, मद्रास, वंग देश तथा पंजाब में भिन्न भिन्न सुनने में आते हैं। इनमें से बहुत सी धरतियों की उत्पत्ति और उनकी बनावट में भेद का होना बिलकुल संभव है। मैर, दादर, सींगा, डाँगर, खटेल इत्यादि प्रांतीय नाम हैं।

पहाड़ी प्रदेशों में अधिकतर कृषि का चमत्कार नहीं होता। वहाँ की धरतियाँ प्रायः स्थानी धरतियाँ होती हैं जिनका धरातल कुछ ही इंच मोटा होता है। उनमें जीवित पदार्थ (Organic matter) की कमी होती है। इन स्थानों की खेती बहुधा अनिश्चित ही होती है। बोने और काटने का समय भिन्न भिन्न होता है जो पहाड़ों की ऊँचाई पर निर्भर होता है। खेती के ढंग अपने अपने सुभीते और स्थानों के अनुसार अनोखे हुआ करते हैं। कहीं कहीं अमीरों के वास्ते तरकारियाँ उत्पन्न करके बिकने के लिये मैदानों में भेजी जाती हैं।

जहाँ पर अच्छी तराई भूमि है और सिंचाई के लिये जल प्राप्त है धरती के अनुसार उन पर मैदानों के सदृश अच्छी खेती होती है।

बहुत सी नदियों के तीर पर कृषिकर्म्म की सुगमता के अनुसार अच्छी फसलें उत्पन्न की जाती हैं, जैसे संयुक्त प्रांत की खादर और कछार भूमि पर।

कहीं कहीं निचास की अच्छी जमीनों पर खेती की सुगमता पाई जाती है। प्राय: वे खरीफ के मौसिम में नम रहती हैं। जब जाड़े के दिन आते हैं तो वे सूखती हैं और उन पर रबी की फसलें बोई जाती हैं। इनको प्राय: सींचने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि यद्यपि उनका ऊपरी धरातल सूखा दिखाई देता है तथापि धरातल के थोड़े ही नीचे बहुत नमी पाई जाती है। कहीं कहीं सींचने भर को पानी दो चार हाथ खोदने पर प्राप्त हो जाता है। ऐसे स्थानों पर बिना सिंचाई खेती की जाती है।

ऐसे स्थानों में यदि पानी न सूखा तो फसलें बोने में देर हो जाती है और जोताई पूरी नहीं हो सकती जिसका आगामी फसलों की पैदावार पर प्रभाव पड़ता है। उन्हें गेरुई प्रभृति रोगों का भय हो जाता है। उस समय वेग से जोताई करके हलकी फसलें बो देते हैं कि बोआई का समय न निकल जाय। कहीं कहीं रेह ऊपर की सतह पर आ जाती है। कभी खेत परती पड़ जाने से उनमें जंगली खर पतवार अधिकता से बढ़

आते हैं। उनमें कभी कभी जंगली पशु रहने लगते हैं और आसपास की फसलों को हानि पहुँचाते हैं। ऐसे स्थानों पर कहीं कहीं दूर तक बस्ती नहीं है। वहाँ मकान बनाकर रहना अति कठिन है। कहीं ऊँची जमीन पर झोपड़ी डाल दी जाती है जहाँ खेती करनेवाले आते और फिर वहाँ से चले जाते हैं। ऐसे स्थानों पर कदाचित् ही कोई खाद देता हो। जिन्हें खाद देना होता है वे कुछ दिनों तक अपने पशु खेतों में बाँधते हैं जिनकी पूरी रक्षा करनी पड़ती है। पर यदि समय पर पानी सूख गया तो खेत अच्छी तरह बनाए जाते हैं जिन पर बिना सिँचाई लाभदायक खेती होती है।

जंगली अंचलों में खेती करना कठिन काम होता है। ऐसे स्थानों की धरतियाँ कहीं कहीं अच्छी होती हैं परंतु कहीं कहीं का जलवायु अत्यंत हानिकारक होता है। बनैले पशुओं, लंगूरों और बंदरों का भय होता है। जंगली तथा पहाड़ी आदमियों के हाथों में खेती रहती है जो फसल कटकर जाने पर चले जाते हैं।

९—धरातल और गर्भतल

पृथिवी के ऊपरी धरातल को, जिस पर फसलें बोई जाती हैं, धरती (Soil) कहते हैं। साधारण जोत में हल से केवल धरती ही कटती है अथवा हल्के हलों से धरती खुरची जाती है। धरातल के नीचे कुछ इंच (लगभग छः सात इंच) की गहराई पर गर्भतल होता है। गर्भतल को अँगरेजी में (Sub-soil) कहते हैं।

कहीं कहीं धरातल और गर्भतल दोनों एक ही प्रकार की धरतियों के होते हैं। कहीं कहीं इन दोनों तलों की उपज और बनावट में बड़ा अंतर होता है जिसका कृषि पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

एक स्थान पर धरातल और गर्भतल की बनावट एक ही प्रकार की होती है। दूसरे स्थान पर कहीं धरातल उपजाऊ होता है, कहीं गर्भतल। कहीं धरातल पतला होता है और उसके नीचे गर्भतल के स्थान पर चट्टान होती है। जोत के संबंध में कृषि करने पर इन बातों का विचार करना अत्यंत आवश्यक है।

कभी कभी गहरी जोताई करनेवाले हलों से गर्भतल जोतने से पृथिवी की अवस्था बदल जाती है, जिससे पौधों को अधिक भोजन प्राप्त होता है और उनकी जड़ें अधिक गहराई तक पृथिवी के भीतर जा सकती हैं। जैसे, यदि गर्भतल कड़ी मटियार है अथवा चट्टानी भूमि है तो उसमें पौधों की जड़ें दूर तक नीचे जाकर अपना भोजन नहीं प्राप्त कर सकतीं। धरातल का पानी भीतर नहीं सोखता। धरती की जल और भोज्य पदार्थों की धारणा शक्ति कम होती है। ऐसी अवस्था में गर्भतल का जोतना लाभकारी होगा।

परंतु यदि गर्भतल बलुई अथवा कंकड़ीली धरती का है तो धरातल का पानी वेग से नीचे चला जाता है और धरातल के खाद के अंश नीचे चले जाते हैं जिससे फसलों को कुछ

लाभ नहीं होता। इसी प्रकार यदि धरातल दुमट अथवा चिकनी मिट्टी का है और गर्भतल बलुई मिट्टी का है, तो एक साथ मिट्टी पलटनेवाले हल तथा फावड़े से दोनों तलों को मिलाने से लाभ होगा जिससे दोनों तलों की हालतें सुधर जायँगी। यदि दोनों तल खराब धरती के हैं तो उनको मटि-यार तथा बलुई धरतियों के अनुसार सुधारना चाहिए। यह काम परिश्रम और व्यय का है। जिसके पास दोनों बातें उपस्थित नहीं हैं वह धीरे धीरे कई वर्षों में अपनी धरती की अवस्था सुधार सकता है।

इन तलों के संबंध में खाद पानी का विचार कर लेना आवश्यक है, क्योंकि कृषक अपनी समझ में धरातल को अच्छी खाद, पानी और जोताई से परिपूर्ण करता है। परंतु गर्भतल की खराबी से पौधे पनपते नहीं अथवा यदि धरातल कठिन मटियार धरती है और उसी के नीचे उसके विपरीत बलुई धरती है तो भी उपकार नहीं हो सकता। यदि दोनों तल एक साथ जोतकर मिलाए जायँ तो पृथिवी की दशा अच्छी हो जाती है।

१०—कृषिकार का कर्तव्य

इस अवस्था पर हम यह कह सकते हैं कि कृषिकार शस्य उत्पन्न नहीं करता। किंतु आवश्यक कारणों के एक-त्रित होने से शस्य स्वयं ही उत्पन्न होते हैं, उसके साथ कृषिकार चाहे कुछ करे या न करे, क्योंकि यदि किसी

आवश्यकता का अभाव हो जिसकी पूर्ति कृषिकार से न हो सके तो किसी प्रकार शस्य नहीं उत्पन्न हो सकते। शस्य अपनी ही रीति पर उत्पन्न होते, बढ़ते और फूलते फलते हैं। कृषिकार का केवल यही कर्तव्य है कि वह उनकी आवश्यकताओं को जहाँ तक संभव हो पूर्ण करे जिससे उसकी इच्छा फलीभूत हो।

किसी पृथिवी की प्राकृतिक शक्ति को, जिसके द्वारा शस्य उत्पन्न होते हैं, उस पृथिवी की उत्पादिका शक्ति कहते हैं।

समस्त भूमंडल ईश्वर की कृपा से चलता है। उसकी इच्छा सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य जिस अवस्था में हो उसको अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। होता सब कुछ उसी की इच्छा से है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते"।

सातवाँ परिच्छेद

जोत

१—जोताई की आवश्यकता

पौधों की भोजन-विधि से हमें ज्ञात होता है कि उनके आवश्यक भोजन के अंश ऐसी दशा में हों जो पानी में घुल सकें। प्राकृतिक दशा में जैसे तैसे जो कुछ प्राप्त हो जाता है पौधा उसी पर अवलंबित रहता है। परंतु मनुष्य नियमित समय पर अपने हेतु फसलें तैयार करता है, इस कारण वह उनकी आवश्यकताएँ भली भाँति पूरी करके अपने इच्छित फल को तैयार करने की चेष्टा करता है। एक पालतू और एक जंगली घोड़े की दशा पर विचार करें। पालतू घोड़े के लिये उसका स्वामी समय पर दाना और घास देता है। जंगली पशु को कभी कभी क्षुधित भी रहना पड़ता है। यदि स्वामी अपने घोड़े से काम लेना चाहता है और उसको हृष्ट-पुष्ट रखना चाहता है तो वह उसकी सेवा में त्रुटि नहीं करता। यदि वह ऐसा न करे तो उसका पशु निर्बल रहेगा और वह उसकी आवश्यकता के अनुसार काम न देगा। इसी प्रकार यदि हम चाहते हैं कि गौ से अधिक और अच्छा दूध प्राप्त हो तो हमें उसकी सेवा करनी पड़ती है, उसके भोजन का प्रबंध करना पड़ता है। यदि ऐसा न किया जाय तो दूध की आशा

बहुत कम अथवा बिलकुल ही नहीं रहती। इसी प्रकार यदि पृथिवी की जोताई अच्छी नहीं होगी, खेत में नमी न होगी, धरती मुलायम न होगी, पौधों को भोजन कठिनता से प्राप्त होगा तो भोजन न मिलने से शस्य निर्बल और कम हो जायगा। इसके अतिरिक्त वायु, पानी और गर्मी का प्रवेश न होने के कारण धरती रोगी हो जायगी।

२—जोताई के उद्देश्य

जोताई का मुख्य उद्देश्य यह है कि धरती मुलायम हो जाय, उसमें वायु, गर्मी और सर्दी का अच्छी तरह से आवा-गमन हो सके और वह पानी सोखे तथा संचित करे।

खोदना, हल चलाना, पाटा देना और जोत के अन्य यंत्रों से पृथिवी का बनाना इसी के अंतर्गत है।

जोताई से जितना लाभ खेतों को होता है उतना खाद से नहीं। इस कारण जोताई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जोताई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं—

१—जोताई में प्रथम कर्तव्य खेत की सफाई है। उसमें से खर पतवार को जो मुख्य शस्य के भोजन में साझा कर लेते हैं निकाल डालना चाहिए। उस पर जोताई करनी चाहिए क्योंकि खर पतवार के बीजों का धरती में पड़ जाना हानि-कारक है। यदि खर पतवार की मात्रा कम है तो जोताई कर देने ही से वे सूख जाते हैं।

२–धरती को कई बार जोतना चाहिए जिससे धरती नर्म हो जाय, वह अधिक जल सोखे, उसमें वायु और गर्मी का आवागमन हो सके, बीज अच्छी तरह जम सके और पौधों के बढ़ने में कठिनाई न पड़े, क्योंकि बाल्यावस्था में पौधों को अच्छे खेत की आवश्यकता पड़ती है। यदि इस समय उनको पनपने में कठिनाई हुई तो उनकी बाढ़ मारी जाती है। 'अनुभव से विदित होता है कि सब फसलों को एक समान बारीक जोताई की आवश्यकता नहीं। किसी के लिये अधिक बारीक मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है, किसी के लिये कम, जैसे गेहूँ, ऊख इत्यादि की फसलों के लिये अधिक जोताई की आवश्यकता होती है और बाजरा, मूँग, उर्द को कम। परंपरा से चले आए हुए अनुभव से ग्रामनिवासियों को, जो कृषि-कर्म करते हैं, यह भली भाँति विदित हो गया है कि किस फसल को कितनी जोताई की आवश्यकता है और वे इसमें कोई बड़ी चूक नहीं करते।

पुनः यह बात स्मरणीय है कि सब फसलों के बीज एक ही गहराई में नहीं डाले जाते। कुछ ऐसे हैं जो कुछ गहराई में डाले जाते हैं जिससे उन्हें उगने में आवश्यक नमी प्राप्त हो सके और उनकी जड़ें धरती में जम जावें। इसके विपरीत कुछ फसलों पर बहुत कम मिट्टी पड़ती है अथवा पड़ती ही नहीं, वह धरती तैयार हो जाने पर कियारियों में छिड़क दिए जाते हैं। ऊपर से राख छिड़क दी जाती है

अथवा उन्हें झाड़ू से अथवा हाथों से धरती में मिला देते हैं। यदि ऐसे बीज अधिक गहराई में पड़ जायँ तो उनके अँखुए इतने कोमल होते हैं कि वे धरातल तक नहीं आ सकते और बीज दबकर मर जाते हैं। ऐसी फसलों के लिये धरती बहुत बारीक बनानी पड़ती है।

३—जोताई से पृथिवी में वायु का प्रवेश होता है जिससे धरती में बहुत सी रासायनिक क्रियाएँ होती हैं और लाभ-कारी जीव-जंतु अपना काम भली भाँति कर सकते हैं। हवा, गर्मी और सर्दी के आवागमन से बिना प्रयास ही धरती बारीक हो जाती है।

४—जोताई का यह भी उद्देश्य है कि धरती में पानी भली भाँति प्राप्त और संचित हो। यदि पृथिवी बिना जुती है तो वर्षा का बहुत सा जल बह जाता है अथवा बहुत कम उसमें सोखता है। धरती जुती रहने से वह बहने नहीं पाता किंतु पृथिवी में समा जाता है और संचित होता है जिससे पृथिवी नर्म बनी रहती है और पौधे भली भाँति भोजन लाभ करते हैं।

५—हानिकारक कीड़े और उनके अंडे नष्ट हो जाते हैं। ये कीड़े धरती में अंडे देते हैं जिनसे आगामी फसलों को हानि पहुँचने का भय होता है। जोताई कर देने से ये घाम और वायु में मरकर नष्ट हो जाते हैं। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो देखने में आता है कि ये कीड़े धरती में पड़े रहते हैं

और दूसरी फसल की तैयारी तक उनमें से पहले से भी अधिक संख्या में उत्पन्न होकर फसल को पहले की अपेक्षा अधिक हानि पहुँचाते हैं।

६—जोताई से बहुत से खर पतवार खुद जाते हैं और उनकी जड़ें सूर्य के सामने फेंक दी जाती हैं जिससे वे सूखकर नष्ट हो जाती हैं। इस संबंध में माघ (मघवट) और जेठ बैसाख की (बैसाखी) जुताई से बड़ा लाभ पहुँचता है।

इन उद्देश्यों का प्रतिपालन जहाँ तक संभव हो प्राकृतिक घटनाओं तथा प्राकृतिक शक्तियों द्वारा कराना लाभदायक होता है। अच्छी तैयार नम भूमि की जुताई हल से की जाय अथवा उसे फावड़े द्वारा खोदा जाय और इस प्रकार उसे वायु के प्रभाव के अधीन छोड़ दिया जाय तो नम भूमि के ढेले छोटे छोटे टुकड़ों में आप ही आप टूट जाते हैं। प्रायः खेत कट जाने पर जहाँ तक शीघ्र हो सके कृषिकार को अपने खेत अवश्य जोतने की चेष्टा करनी चाहिए। इस जोत का और खेत में खाद देने का दुगना प्रभाव पड़ता है।

३—छिछली और गहरी जोताई

धरती को बारीक जोतना जिससे वह खुल जाय, उसके टुकड़े छोटे छोटे हो जायँ, उनमें वायु और पानी का अच्छी तरह प्रवेश हो, पौधों की जड़ें सुगमता से नीचे जा सकें, पृथिवी नर्म हो और भली भाँति पानी धारण कर सके—इनके लिये छोटे छोटे कृषक, जिनके पास कम खेत हैं अपने खेत

फावड़े से खोदकर धरती तैयार कर लेते हैं। अधिक भूमि की इस प्रकार परिचर्य्या करने में समय और व्यय अधिक लगता है। इस कारण हल का प्रयोग किया जाता है। फावड़े से खोदने में धरती गहरी खोदी जाती है और उलटी भी जाती है। साधारण देशी हल से धरती खोदी जाती है परन्तु बहुत कम उलटी जाती है। नवीन ढंग के बने हुए हलों में एक पंखा या मोल्ड बोर्ड (mould Board) लगा होता है। इसकी सहायता से जो भूमि खुदती जाती है वह पलटती भी जाती है। ये हल लोहे के बने होते हैं। इनसे गहरी जोताई होती है। गहरी जोताई करने में अधिक परिश्रम और बल की आवश्यकता होती है। फावड़े तथा लोहे के हलों से गहरी जोताई करने में सुगमता होती है। लोहे के हलों से गहरी जोताई करने में सुभीता होता और व्यय में भी बचत होती है। जिनके पास विस्तृत भूमि है और जो लोहे के हल खरीद सकते हैं उन्हें सुभीता होने की संभावना हो जाती है।

जब खरीफ की फसल के पश्चात् खेतों में पानी जमा रह जाता है और धरती देर में सूखती है और रबी की फसलें बोने के लिये खेत तैयार करने के लिये बहुत कम समय बाकी रह जाता है तो कृषक जल्दी में अपने देशी हल से दो तीन बाँह जोतकर खेत तैयार करके जिस बोआई के समय के भीतर बोने की चेष्टा करता है। बीज तो बो जाता है परंतु अच्छी जोताई न होने के कारण बोआई का परिणाम अच्छा

नहीं होता। ऐसे समय में लोहे के हल की उपयोगिता ज्ञात हो जाती है, क्योंकि लोहे के हल की कम जोताई देशी हल की अधिक जोताई के समान होती है। लोहे का हल वही काम शीघ्र करता है जो देशी हल से कई बार में होता है। समय के अभाव से ऐसी अवस्था में लोहे हल से अच्छा काम होता है।

कुछ पौधों की जड़ गहराई तक जाती है, उनके सड़ने से भूमि पोली हो जाती है और एक प्रकार से धरती खुल जाती है। जोत में बहुत से कीड़े मकोड़ों द्वारा उनके स्वभाव से ही सहायता मिलती है। उदाहरण, जैसे बरसाती केंचुवा मिट्टी में मिले हुए वनस्पति-अंशों पर जीवन व्यतीत करता है, वह मिट्टी खाता और त्याग करता है। उसकी त्याग की हुई मिट्टी बारीक हो जाती है। चींटी, दीमक इत्यादि भी भूमि को बारीक कर देते हैं।

पौधों की उत्पत्ति और बाढ़ के लिये जिससे धरती मुलायम हो और अधिक जल धारण कर सके गहरी जोताई लाभकारी है। ये ऊपर कहे हुए जोताई के जितने उद्देश्य हैं वे सब गहरी जोताई से अधिक पूरित होते हैं। जहाँ गर्भतल की धरती खराब है अथवा जहाँ खाद देने में विशेष सुभीता हो, छिछली जोताई से पृथिवी को लाभ पहुँच सकता है।

आठवाँ परिच्छेद

१—जोताई के यंत्र

साधारण तौर से कृषकों के पास जोताई के निम्नलिखित यंत्र होते हैं।

फावड़ा, कुदाली, हल, खुरपी, हेंगा अथवा पाटा, पटेला, बखर या सरावन—

फावड़ा—जिन कृषकों के पास कम खेत हैं अथवा जिनमें वे कोई मूल्यवान् फसल बोना चाहते हैं तो वे अपने खेत को फावड़े से खोदकर तैयार कर लेते हैं। बागों में फावड़े से अधिक काम लिया जाता है। जहाँ परिश्रम की खोदाई अथवा कड़ी भूमि है, खाँवा या मेंड बनाना है, कोना मारना होता है वहाँ भी फावड़े से काम लिया जाता है। मकान की दीवार उठाने तथा अन्य फुटकर कामें में भी फावड़े की बहुत जरूरत पड़ती है। फावड़े के फल की चौड़ाई और बनावट के अनुसार भूमि चौड़ी और गहरी खुदती है।

कुदालो—कुदालो का फल लंबा, दृढ़ और कम चौड़ा होता है। इससे कड़ी खोदाई का काम लिया जाता है अथवा जहाँ कंकड़, चट्टान इत्यादि पड़ जाते हैं वे रंबा या कुदालो की सहायता से निकाले जाते हैं। साधारण सोहाई में कम परिश्रम

से भूमि गोड़ दी जाती है। इससे खुरपी के मुकाबले में अधिक काम होता है।

हल—हल से जोताई का काम लिया जाता है। प्राय: यह काठ का बनाया जाता है जिसमें बबूल, आम, शीशम, महुआ इत्यादि प्राप्य लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसकी बनावट निम्नलिखित रीति पर होती है।

(१) हल का शरीर जिसमें नीचे की ओर को निकली हुई लोहे की (२) फार लगी होती है, (३) ऊपर हरीस काठ की अथवा कहीं कहीं बाँस की लगाई जाती है। इसमें जुवा लगाया जाता है और बैल इस प्रकार हल को खींचते हैं। (४) हल के शरीर के ऊपर मुठिया होती है जिसे पकड़कर हल जोता जाता है।

यह देशी हल की बनावट है। प्रांतों में स्थान स्थान पर देशी हल कई प्रकार के देखे जाते हैं। उनके आकार और बनावट में भेद पाए जाते हैं। अच्छे हलों से जोताई अच्छी होती है। बेपरिमाण, बेढंगे बने हुए हलों से भूमि खुरच तो भले ही जाती है परंतु उनकी भद्दी बनावट के कारण जोत अच्छी नहीं होती। प्राय: देखा जाता है कि जैसे बैल प्राप्त होते हैं उसी के अनुसार कृषिकार हल बनाता है। यदि उसके पास अच्छे बैल हैं तो वह बड़े हल बनाता है; यदि उसके पास बछवों के समान बैल हैं तो वह छोटे हलों से काम चलाता है।

पाश्चात्य देशों में लोहे के हल से खेतों की जोताई होती है। इनको घोड़े खींचते हैं अथवा भाप तथा अन्य शक्तियों के एंजिनों का बल जोताई के लिये प्रयोग में लाया जाता है। वहाँ बड़े बड़े हल लोहे के बनाए जाते हैं जिनसे भूमि बहुत गहराई तक खुदती है। उन खेतों में भली भाँति खाद दी जाती है और अच्छी पैदावार प्राप्त होती है। इन्हीं हलों के सिद्धांतों पर हिंदुस्तान की आवश्यकताओं के अनुसार लोहे के हल बनाए गए हैं जिनको साधारण बैल खींच सकते हैं। उनसे देशी हलों की अपेक्षा गहरी जोताई होती है और भूमि उलट जाती है।

संयुक्त प्रांत की आवश्यकता के अनुकूल ऐसे हलों में वाट्स और मेस्टन (Meston) हल उपयोगी पाए जाते हैं। गाँवों तथा निकट के कसबे या शहर में इनके टुकड़ों या पुर्जों के न मिलने तथा टूट जाने पर या बिगड़ जाने पर इनकी मरम्मत न हो सकने की दिक्कत होती है। ये दिक्कतें गाँव के लोहारों को मरम्मत करना सिखाने तथा कुछ फालतू पुर्जों को अपने पास रख छोड़ने से जाती रहती हैं।

इन हलों की बनावट कई टुकड़ों के जोड़ से होने लगी है जिनका बैठाना कठिन नहीं है। केवल देख लेने और उसे समझ लेने से कोई समझदार कृषक इस काम को कर सकता है। इनमें (१) हल का धड़ (शरीर) अथवा हल का वह हिस्सा है जिसमें हल के अन्य हिस्से जोड़े जाते हैं, (२) बाजू (Mould

देसी हल
मुठिया
परिहत
पाठ
हरीस
फार
मेसटन हल
कानला
ढेबरी
७-११ छोटा,बड़ा,लम्बा कानला
१०
११
रिंच
मोलबोर्ड
बाडी
फार
बेस
बाडी
मोलबोर्ड
फार
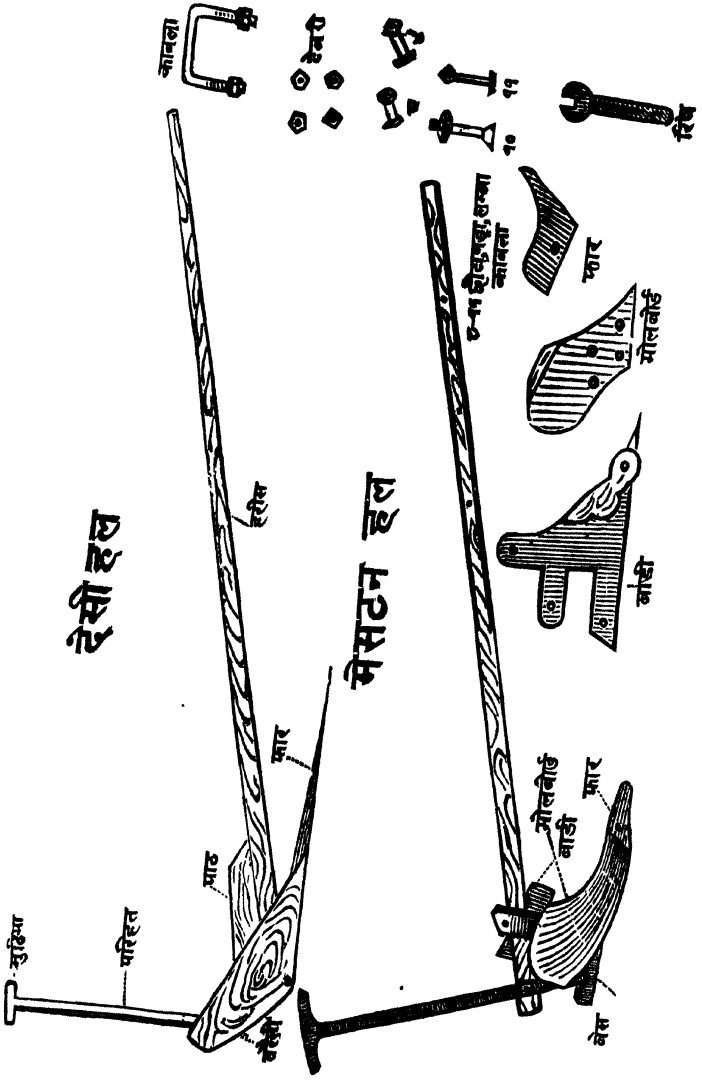
Board) जो फार से कटी हुई धरती को उलटता है, (३) फार, जो धरती काटता है और पर्त पर्त करके भूमि को खोदता
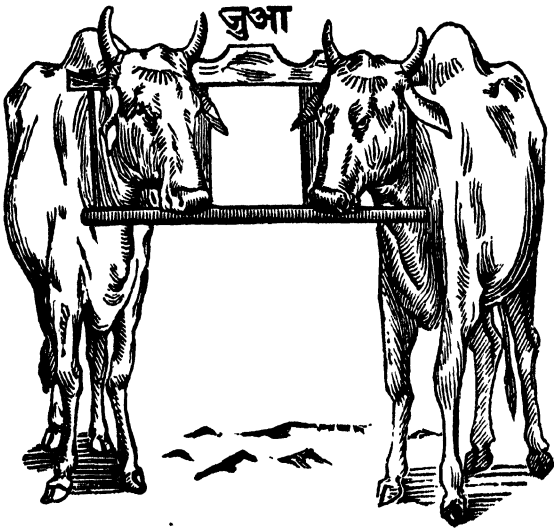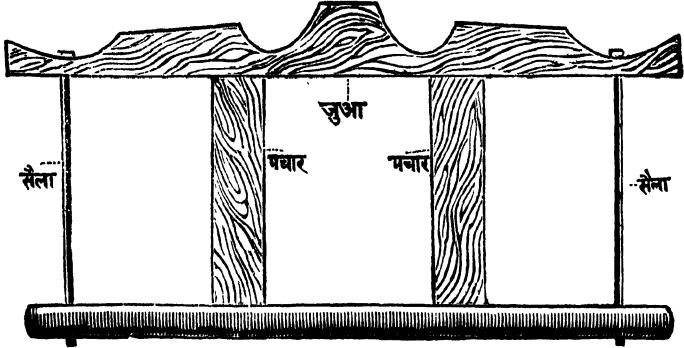
है, (४) हल का पेंदा जिसमें हल के चलने में कठिनता नहीं पड़ती और वह सुगमता से चलता है, (५) हरीस और जंजीर

जिसके सहारे जुआ लगाकर बैल जोते जाते हैं। जुआ बैलों की गर्दन में पहनाया जाता है और उसमें हल या हेंगा बाँधकर काम लिया जाता है। किसी किसी हल में देशी हलों की तरह एक लंबी हरीस होती है किसी में आधी; और हरीस की आधी लंबाई में जंजीर अथवा रस्सी लगाकर काम निकाला जाता है। इसका अभिप्राय यह होता है कि खींचने में आसानी हो और बैलों पर जोर कम पड़े।

लोहे के अन्य बहुत प्रकार के हल देखे जाते हैं जिनकी विशेषताएँ एक एक करके लिखने का हमारा उद्देश्य नहीं। यह उन हलों के सूचीपत्र में मिल सकता है।

एक में फार और मोल्ड बोर्ड (Mould Board) एक ओर से दूसरी ओर बदला जा सकता है जिसे (Turn Wrest Plugh) टर्न रेस्ट प्लाऊ कहते हैं। अन्य बड़े बड़े हल होते हैं जिनके फार में अथवा मोल्ड बोर्ड (Mould Board) में अपने ढंग की विशेषताएँ पाई जाती हैं। उनसे विशेष काम निकाले जाते हैं कोई परती भूमि जोतने के उपयुक्त हैं, किसी से धान के खेत जोतने तथा खर पतवार निकालने में सुगमता और सहायता मिलती है, कोई धरातल के बड़े बड़े चक्के उखाड़ने में समर्थ हैं और कोई बिना धरती उलटे ही गर्भतल जोत सकते हैं।

कितने हलों में कूँड़ की गहराई अधिक या कम करने के लिए "दहाना" लगा होता है। पशुओं पर उनके खींचने में बल कम पड़े इस कारण उनमें 'पहिए' लगे होते हैं। किसी

किसी में एक फार के अतिरिक्त दो एक छूरे भी लगे रहते हैं जिन्हें कोल्टर (Coulter) कहते हैं।

बड़े बड़े हलों में कांस निकालने के हल हैं जिनमें अत्यंत बल की आवश्यकता होती है। एक साधारण मध्यम आकार का 'तावादार' हल (Disc Plough) है जिससे एक फुट गहरा खोदा जा सकता है तथा मिट्टी पलट सकते हैं। बागों के काम तथा लान (Lawn) बनाने में इससे बड़ी सहायता मिलती है और व्यय में बचत होती है।

लोहे के तथा लकड़ी के बड़े बड़े हलों के चलने अर्थात् उनके पेंदे के घसीटने के कारण अथवा आदमियों और बैलों के कूँड़ में चलने से धरातल के नीचे 'तवा' पड़ जाता है अर्थात् धरती कड़ी पड़ जाती है। इस कारण पौधों की जड़ें नीचे कठिनता से प्रवेश कर सकती हैं और पानी एकत्रित हो जाता है। इनके तोड़ने के लिये गर्भतल-तोड़ हलों का प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है।

२—जोताई के अन्य यंत्र

जोताई के अन्य यंत्रों में हैरो (Harrow), जो जुते हुए खेतों की मिट्टी बारीक करने के काम में आता है, एक साधारण यंत्र है। यह एक जोड़ी बैलों की सहायता से चलता है। इससे धरातल की ज़मीन समतल और बारीक हो जाती है। इसकी सहायता से खर पतवार बटोरे जा सकते हैं और धरती साफ और बारीक हो जाती है। यह काम

बाँस का बना हेंगा।

खेत में हेंगा चलाया जारहा है।

रस्सी

रस्सी
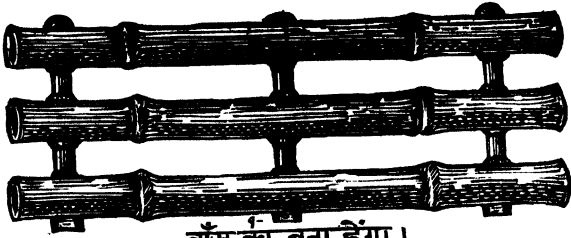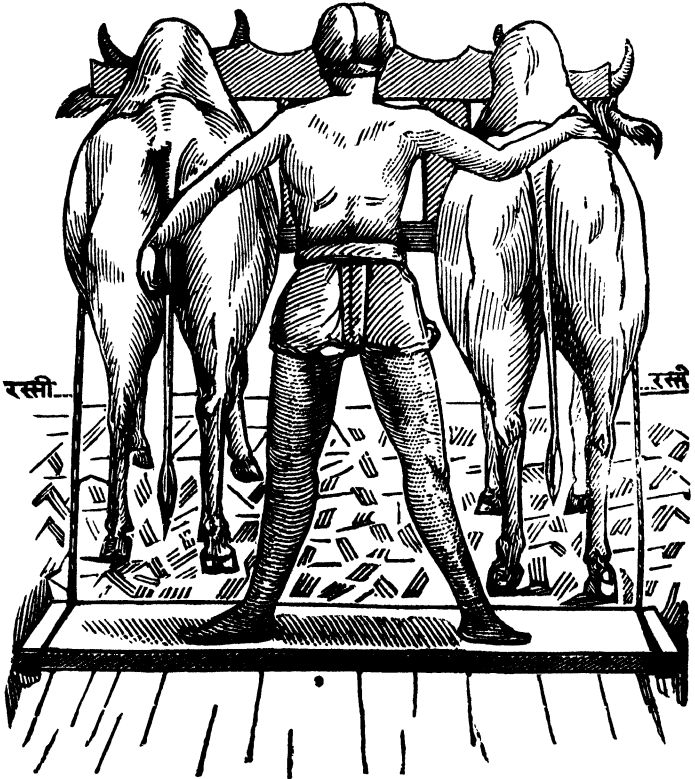
कुछ भद्देपन और परिश्रम से देशी हल और सरावन से निकाला जा सकता है।

दूसरा यंत्र कल्टीवेटर या प्रबर है जिसको 'पाँचा' भी कहते हैं। इसमें कई दाँत लगे रहते हैं। यह खेत के ढेलों के टुकड़े करने, जमीन गोड़ने, तथा खर पतवार इकट्ठा करने के काम में लाया जाता है। इसमें विशेष प्रकार के यंत्रों की सहायता से कृषि के हर एक छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा काम सफाई और कम परिश्रम से उत्तम रीति पर होता है इसलिये हर एक काम के लिये जितनी उत्तमता अभीष्ट हो उतने ही यंत्रों का प्रयोग करना अच्छा होता है।

पाटा, सरावन, पटेला या हेंगा दो या चार गज लंबी धरन या लकड़ी अथवा आवश्यक लंबाई के तीन या चार बाँसों को जोड़ने से बनाया जाता है। रस्सियों द्वारा एक या दो जोड़ी बैलों की सहायता से हरवाहा इस पर खड़ा होकर इसे जुते हुए खेतों पर चलाता है। इसका प्रयोग बोने के पहले खेती की तैयारी में ढेलों को तोड़ने के लिये किया जाता है अथवा बीज बोने के बाद बीज को कूँड़ों में ढकने के लिये किया जाता है।

केशाकर्षण शक्ति (Capillarity) के सिद्धांत पर पाटा का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार जल की मात्रा कम करने अथवा धारणशक्ति बढ़ाने के लिये किया जाता है। यदि भूमि में नमी कम है उसे जोतकर पाटा कर देने से केश-नलि-

काओं (Capillary Tubes) का संबंध नीचे से टूट जाता है जिससे पानी भाप बनकर नहीं उड़ने पाता।

पाटा करने का समय या उसकी आवश्यकता के लिये कोई नियम निर्वाचित करना कठिन और अनावश्यक है। अनुभव द्वारा सम्यक् आवश्यकता का कृषक विचार कर लेते हैं। रबी के खेतों की तैयारी में पाटा का प्रयोग किया जाता है। इन्हीं फसलों की तैयारी के लिये अच्छी जोताई की आवश्यकता होती है।

३—जुताई की रीति

खेत का हल द्वारा जोतना क्रियावान् विषय है। अनुभव द्वारा इसमें स्वयं दक्षता प्राप्त हो जाती है। इसके लिये कोई निश्चित नियम नहीं। देशी हल द्वारा जोताई करने में हल की मुठिया सीधी पकड़नी चाहिए जिससे कि हल भूमि में गहरा चले। कूँड़ बराबर पास पास और सीधी काटनी चाहिए, ऐसा न करने से बीच में बेजुती जमीन छूट जाती है। देशी हल की बनावट ऐसी होती है कि उससे त्रिभुज रूप की कूँड़ें कटती हैं और इस प्रकार दो कूँड़ों के बीच में कुछ बेजुती धरती छूट जाती है। इसके निवारण के वास्ते कृषक खेतों को कई बाँह जोतता है—पहले लंबे, फिर बेंड़े, तत्पश्चात् कोने से कोने तक परंतु यह कोई निश्चित नियम नहीं है, सुभीते या इच्छा के अनुसार कृषक पहले कोने की या बेंड़ी जोताई कर सकता है। इस प्रकार अच्छी जुताई

कम से कम आठ बार जोतने पर प्राप्त होती है किंतु उत्तम जोताई सोलह और बीस बार तक की जाती है।

हल चलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अकस्मात् बैलों के चलने में बिना उनको सँभाले हुए हल धरती से ऊपर न उठा लिया जाय। इसमें बैलों के पैरों में पैनी फार लग जाने का भय रहता है।

देशी हलों से जोतने में पहली तथा दूसरी जोत में खेतों के कोने बिना जुते छूट जाते हैं। कोनों को फावड़े अथवा कुदाली से खोद देते हैं और मेंड़ों के पास की मिट्टी और कोने की मिट्टी खोदकर खेत में फेंकते हैं जिसे कोना और खावा मारना कहते हैं। जोताई में इतना परिश्रम बड़ी चतुरता के विचार से किया जाता है। इसका अभिप्राय यह होता है कि धरती में चारों तरफ खेत भर में जल फैल जाय और धरती मुलायम हो जाय।

देशी हल से तीन इंच से पाँच इंच तक गहरी कूँड़ काटी जाती है।

लोहे के हलों की जोताई प्रत्येक हल के साधन के अनुसार भिन्न है। कोई जिस ओर मोल्ड बोर्ड होता है उस ओर झुकाकर जोता जाता है। कोई मोल्ड बोर्ड की दूसरी ओर झुकाया जाता है। कोई जोतते समय सीधा रखा जाता है। कोई चलाते समय फार की ओर झुकाया जाता है। कूँड़ की गहराई तथा छिछलापन के अनुसार तथा हल के चलाने में सुगमता या बैलों के खींचने में बल या कूँड़ सीधी रखने के अनुसार

उपर्युक्त रीति से हल चलाना चाहिए। कूँड़ हर दशा में एक दूसरे से मिली हुई और सीधी रहनी चाहिए और बैलों का विचार रखना चाहिए। साधारण लोहे के हलों से ४½ इंच से सात आठ इंच तक गहरी कूँड़ें बनती हैं। इन हलों से जितनी सीधी जोताई की जाती है उतनी अच्छी जोताई होती है क्योंकि इनमें दो कूँड़ों के बीच की धरती नहीं छूट सकती। इसके विपरीत देशी हलों में चाहे जितने समीप हल क्यों न चलाए जायँ और कैसी ही सीधी कूँड़ क्यों न हो देशी हल की बनावट ही ऐसी होती है कि दो त्रिभुजों के बीच में बेजुती जमीन छूटती है।

पाटा, कल्टीवेटर, हैरो खेतों में बैलों की सहायता से खेत भर पर चलाया जाता है।

४—जोताई का समय

फसल के बोने के पहले खेतों को तैयार करना कृषक का परम कर्तव्य है। फसलों के अनुसार खेतों की जोताई की जाती है।

(१) खरीफ, (२) रबी, (३) जायद—ये तीन फसलें हैं।

१—खरीफ अथवा भदई जो आषाढ़ अथवा जून जुलाई में बोई जाती है और भादों (सितंबर) में काटी जाती है। इसे बरसात की फसल भी कहते हैं।

२—रबी कुआर कातिक (अक्तूबर) तक बोई जाती है और चैत (मार्च अप्रैल) तक काटी जाती है। इसी से इसे चैती कहते हैं। इसे जाड़े की फसल भी कहते हैं।

३—जायद अथवा विशेष फसल को गर्म्मी की फसल कहते हैं। यह फागुन से चैत तक बोई जाती है और वैसाख जेठ तक काटी जाती है।

कुछ खेतों में केवल एक फसल बोई जाती है—एक साल भदई तो दूसरे साल चैती। फसल कट जाने पर भूमि परती छोड़ दी जाती है। कुछ खेतों में दोनों फसलें बोई जाती हैं। कुछ ऐसे खेत बनाए जाते हैं जो साल भर फसलें उत्पन्न करते हैं। उनमें एक न एक फसल बोई ही रहती है। इन फसलों के लिये कृषक जैसे जैसे समय पाता रहता है बराबर जोताई करता है। यदि वह किसी कारण से समय पर जोताई न कर सका तो खेत की बोआई के दिन निकट आने पर रात दिन जोताई करता है। इस लगातार जोताई से उतना अधिक लाभ नहीं होता जैसा कि समय समय पर जोताई से होता है क्योंकि धरती हवा, घाम का लाभ नहीं उठा सकती, तिस पर भी अधिक जुती हुई धरती अच्छी होती है।

५—भदई के लिए खेत की तैयारी

यदि खेत दो-फसला है तो उसमें से रबी की फसल चैत अथवा अप्रैल में कट जाती है। उस समय प्रायः इतनी नमी नहीं रहती कि बराबर जोताई की जाय। यदि फरवरी में वर्षा हुई तो उसकी नमी बाकी रहती है, नहीं तो सूखी जमीन में जैसी तैसी एक जोताई दे देते हैं। यदि पानी प्राप्त हुआ तो कुछ पानी की सहायता से वैसाख में एक जोताई दी जाती है

जिसके अगणित लाभ हैं। अशक्य कृषक खेत को जैसा का तैसा पड़ा रहने देता है। जब मई जून में वर्षा होती है, खेत की जोताई आरंभ की जाती है और बराबर जोताई की जाती है।

खरीफ की फसलों को बोने के लिये रबी की फसलों के बराबर अधिक जोताई की आवश्यकता नहीं होती। यदि पानी बरसकर खुल जाता है और आकाश कुछ दिन तक साफ हो जाता है तो उसमें जोताई बराबर जारी रहती है, जब तक कि खेत अच्छी तरह से तैयार नहीं हो जाता। बदली में तथा कठिन समय में भी चतुर कृषक समय पर आलस्य छोड़ देता है और कोई अवसर खेतों के तैयार करने का नहीं चूकता और जहाँ तक उससे बन पड़ता है भूमि बारीक और नर्म बनाकर शस्य बोता है। यदि समय नहीं मिलता तो जैसे तैसे जुते हुए खेतों में बोआई के समय तक बीज बो दिया जाता है।

यदि खेत एक-फसला है और फसल कटने पर छ महीने तक परती पड़ा रहा है तो उसकी तैयारी परती जमीन के समान की जाती है।

धरती की अवस्था के अनुसार किस समय खेतों में हल चलना चाहिए यह कृषक को अनुभव द्वारा ज्ञात हो सकता है। इसे कृषिकार अपने परंपरा से व्यवहृत ज्ञान द्वारा भली भाँति जानते हैं। जब धरती कुछ पानी सोख लेती है और कुछ नर्म हो जाती है उस समय हल चलाने में पशुओं को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। अधिक जल एकत्रित

रहने पर हल चलाने में कठिनता होती है। इस समय धरती में से पानी का निकास करके जोताई करनी उचित है।

६—चैती के लिए खेत की तैयारी

चैती में अच्छी और मूल्यवान् फसलें बोई जाती हैं। इनके बोने में अधिक परिश्रम और बीज में भदईं की अपेक्षा अधिक धन लगता है। यदि किसी कारण से खेत तैयार नहीं अथवा बीज बोने के पश्चात् अधिक वृष्टि हो तो इस भाँति बोने से दरिद्र कृषकों को पीड़ा पहुँचती है और यदि उन्हें बीज न प्राप्त हो सका तो उनके खेत बिना बोए छूट जाते हैं। इस कारण किसी फसल में खेतों की तैयारी और बोना अनुभव, विचार तथा प्रारब्ध के अधीन होता है। चतुर कृषिकार इनका विचार भली भाँति जानते हैं और उनके प्रयोग में नहीं चूकते। कागज पर लिखने में यह साधारण बात ज्ञात होती है कि सब बातों का विचार करना चाहिए परंतु सब बातों का विचार करना अत्यंत कठिन और अनुभव का काम है। चैती की फसल बोने के लिये धरती बारीक बनाने की आवश्यकता होती है क्योंकि कोमल अवस्था में पौधे के आसानी से उगने के लिये उनकी आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिएँ। यदि जमीन बहुत सूखी है या नम है तो बीज के उगने में बाधा पड़ती है। कोमल पौधे कठोरता नहीं सह सकते और यदि उसको सहना पड़े तो या तो वे सूख जाते हैं, निर्बल हो जाते हैं या कठिनाई से उगते हैं। उनकी बाढ़ रुक जाती है या दाना

अच्छा नहीं लगता। चार पाँच इंच गहरी बारीक और मुलायम धरती बीज के उगने और बढ़ने के निमित्त काफी होती है और जब पौधा सँभल जाता है तो वह स्वयं बढ़ जाता है और उसकी जड़ें नीचे बढ़कर अपना भोजन प्राप्त करने लगती हैं।

चैती की जोताई यदि खेत दो-फसला है तो भदईं के कटने पर (सितंबर से) आरंभ कर दी जाती है। इस समय यदि पानी बरसा तो धरती की जोताई में सहायता मिलती है और धरती अच्छी तरह से कमाई जा सकती है। फसलों की आवश्यकता के अनुसार कई बार खेत जोतकर कार्त्तिक (मध्य अक्तूबर) तक फसलें बो दी जाती हैं। यदि वृष्टि नहीं होती तो सिंचाई द्वारा जहाँ तक जल और परिश्रम प्राप्त हो सकता है खेत तैयार किए जाते हैं, अन्य खेत छोड़ दिए जाते हैं। मटर तथा चने के खेतों को ऊख या गेहूँ के खेतों की तरह अधिक जोताई की आवश्यकता नहीं होती, प्रायः ये काफी नमी रहने पर ढेला रहते ही खेतों में बो दिए जाते हैं और फसल अच्छी होती है। खेतों की तैयारी के अनुसार फसल बोना अच्छा होता है, नहीं तो व्यय का लेखा पूरा नहीं होता। जैसी जोताई हो वैसी फसल बोई जाय। यदि खेत एक-फसला है तो उसकी तैयारी परती खेतों के सदृश होती है।

७—परती भूमि की जोताई

एक-फसले खेतों में धरती कई महीने परती पड़ी रहती है। अप्रैल से अक्तूबर तक अथवा सितंबर से मई जून तक और

दो-फसले खेतों में अगस्त से अक्तूबर तक अथवा मार्च या अप्रैल से जून तक। इसी अवसर में रबी तथा खरीफ के बोनेवाले खेत आगामी बोई जानेवाली फसल के अनुसार तैयार किए जाते हैं। जैसी उत्तम मूल्यवान् फसल बोई जाती है उसके लिये उतनी ही जुताई की आवश्यकता होती है। समय समय पर जुताई करने के सुभीतों के अनुसार जुताई जारी रखनी चाहिए।

कड़ी धूप, कड़ी वायु के झोंके और शीत, पानी सहकर कृषक अपने खेतों की तैयारी करता है, उस पर नियमित समय पर शस्य बोता है, अपने कर्तव्य-पालन करने में यह आपदाओं और कठिनाइयों का विचार नहीं करता, लोक-हित के लिये अन्न उत्पन्न करता है।

परती भूमि के जोतने की आवश्यकता प्रायः कृषकों को विदित होती है। वे जानते हैं कि जोतने से खेतों को लाभ पहुँचता है और बिना जोते हुए खेत पड़े रहने में हानि होती है। जोतने से बहुत छोटे छोटे पौधे जिन्हें बैकटीरिया कहते हैं पृथिवी में पौधों के लिये उपयोगी पदार्थ एकत्रित करते रहते हैं। रासायनिक और भौतिक क्रियाओं और गरमी, वायु, पानी, धूप इत्यादि कारणों से भोजन-संचार में सहायता मिलती है।

परती भूमि जोतने में ईति, भीति का भय जाता रहता है अथवा कम हो जाता है। खरीफ की फसल अथवा रबी की फसल में बहुत कीड़े मकोड़े फुनगी तितिलियाँ माहो इत्यादि

पौधों को हानि पहुँचाते हैं। कोई पत्तियाँ चाट जाते हैं, कोई पेड़ी को हानि पहुँचाते हैं, कोई दाना तथा फल में छेद कर देते हैं, कोई पुष्प खा जाते हैं इत्यादि अनेक प्रकार के कीड़े अनेक प्रकार से फसलों को हानि पहुँचाते हैं। यह अपने अंडे धरती में देते हैं जिनसे उनके बच्चे उत्पन्न होते हैं और खेतों में पड़ी हुई खूँटियों पर जो अँखुए फूट निकलते हैं निर्वाह करते हैं और इस प्रकार बढ़कर आगामी शस्य को कई गुना अधिक हानि पहुँचाते हैं। धूप की गर्मी, हवा तथा रात की सरदी अथवा चिड़ियों के चुग लेने से इनकी वृद्धि रुक जाती है और आगामी फसल हानि से बच जाती है।

जुती हुई धरती में पानी अधिक सोखता है, धरती खुल जाती है और नर्म हो जाती है। धरती में जल-बिंदु की धारणशक्ति अधिक बढ़ जाती है।

एक स्थान में ऐसा देखने में आया है कि पहले से जोत-कर छोड़ देने से धरती फीकी पड़ जाती है और उसकी पैदावार कम हो जाती है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि धरती के खाद्य-अंश घुलकर पानी के साथ बह जाते हैं। इससे उस स्थान को लोग धरती का "फीका पड़ जाना" कहते हैं। इसका बचाव इस प्रकार हो सकता है कि पानी खेतों में अधिक न लगे और बहने न पावे, केवल आवश्यकता के अनुसार पानी रहना चाहिए।

नवाँ परिच्छेद

बोआई

बीज बोने के लिये खेतों की जोताई होती है। जब वे अच्छी तरह से तैयार हो जाते हैं तो उनमें बीज बोया जाता है। बीज बोने के पूर्व बीज कैसा है, किस निमित्त बोया जाता है इसका विचार किया जाता है, फिर बीज किस समय और किस प्रकार बोना चाहिए इस पर ध्यान दिया जाता है। अच्छे अथवा खराब बीज के अनुसार खेती की पैदावार होती है। जो बोया जाता है वही काटा जा सकता है। जैसी धरती हो उसमें उसी प्रकार का बीज बोना चाहिए। उन अवस्थाओं का विचार करके बीज बोना चाहिए जिनमें वे अच्छी तरह जम सकें और बढ़ सकें।

१—बोआई का समय

हर फसल के बोने का नियत समय होता है। उसका विचार करके बीज बोना चाहिए। समय व्यतीत हो जाने पर कितना ही उपजाऊ खेत क्यों न हो शस्य अच्छे प्रकार नहीं होता, बीज के जमने में प्राकृतिक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। समय पर बोने से शस्य अच्छी तरह जमते और बढ़ते हैं। पौधों की बाढ़ और प्राकृतिक अवस्थाओं के विचार से यह

सिद्ध हो गया है कि भिन्न भिन्न पौधों को भिन्न भिन्न परिमाण में गर्मी की आवश्यकता होती है। इसके अनुसार खरीफ और रबी की फसलें दो समय पर बोई जाती हैं। एक फसल का बीज दूसरी फसल में साधारण अवस्था में नहीं पनपता।

जब धरती बहुत तर अथवा बहुत सूखी हो उस समय बीज न बोना चाहिए। अधिक पानी रहने से बीज के सड़ जाने का भय रहता है और बिलकुल सूखी धरती में नमी के अभाव से बीज नहीं जमता। यदि पानी बरसने की आशा हो और धरती अच्छी तरह से तैयार हो चुकी हो तो बीज बो देने में हानि नहीं, पर यदि बीज बो देने पर अधिक जल-वृष्टि का भय हुआ तो अच्छा अवसर परखना चाहिए। बहुत पानी से धरती कँदवा होकर कड़ी हो जाती है और उसमें से बीज के अंकुर ऊपर नहीं आ सकते या सड़ जाते हैं। असाधारण अवस्था में समय का निर्णय करना केवल अनुभव से प्राप्त हो सकता है अथवा प्रारब्ध के आसरे रहना पड़ता है।

जिन फसलों की बोआई में बीज कम लगता है उनको तो कृषक दोबारा बोने का साहस कर सकता है, जैसे मकई ज्वार इत्यादि में। परंतु गेहूँ आदि फसलों के बोने में यदि किसी दुर्घटना से बीज की हानि हो जाती है तो साधारण कृषक बीज के अभाव से अपना खेत बिना बोया छोड़ने पर मजबूर होता है अथवा अच्छे खेत में घटियो फसल बोकर उसे संतोष करना पड़ता है। बीज न मिलने की कठिन पीड़ा कृषकों को पहुँचती

है। जमींदारों का कर्तव्य है कि वे कृषकों की सहायता करें क्योंकि उनकी अच्छी दशा से स्वयं उन्हीं का लाभ है।

२—बोआई की रीति

बोआई की निम्न चार रीतियाँ हैं—

(१) बेहन छोड़ना या पौद लगाना।

(२) एक एक करके बीज बोना।

(३) कूँड़ में बोना।

(४) छिटका बोना।

(१) बेहन छोड़ना—इस रीति के अनुसार एक टुकड़ा खेत में कुछ बीज बोया जाता है। खेत के टुकड़े को "बेहनौर" या "कियारी" अथवा स्थान-भेद के अनुसार अन्य नामों से पुकारते हैं। बेहनौर की खूब जोताई होती है और उसमें अधिक खाद दी जाती है। जब पौधे एक बित्ता अथवा तीन से छः इंच तक हो जाते हैं, वे या तो जड़ से उखाड़ लिए जाते हैं या सावधानी से खुरपी से खोद लिए जाते हैं और अन्य स्थान पर खेतों में लगाए जाते हैं। बेहनौर का क्षेत्रफल कम होने से अथवा पूरी सहायता मिलने पर उसकी तैयारी बाग की धरती के समान हो सकती है। इसमें उगे हुए नवीन पौधों को 'बेहन' या पौद कहते हैं। उन्हें अन्यत्र लगाने अथवा "बैठाने" में अधिक मजदूरी और व्यय लगता है।

बीज बोने की मशीन ।
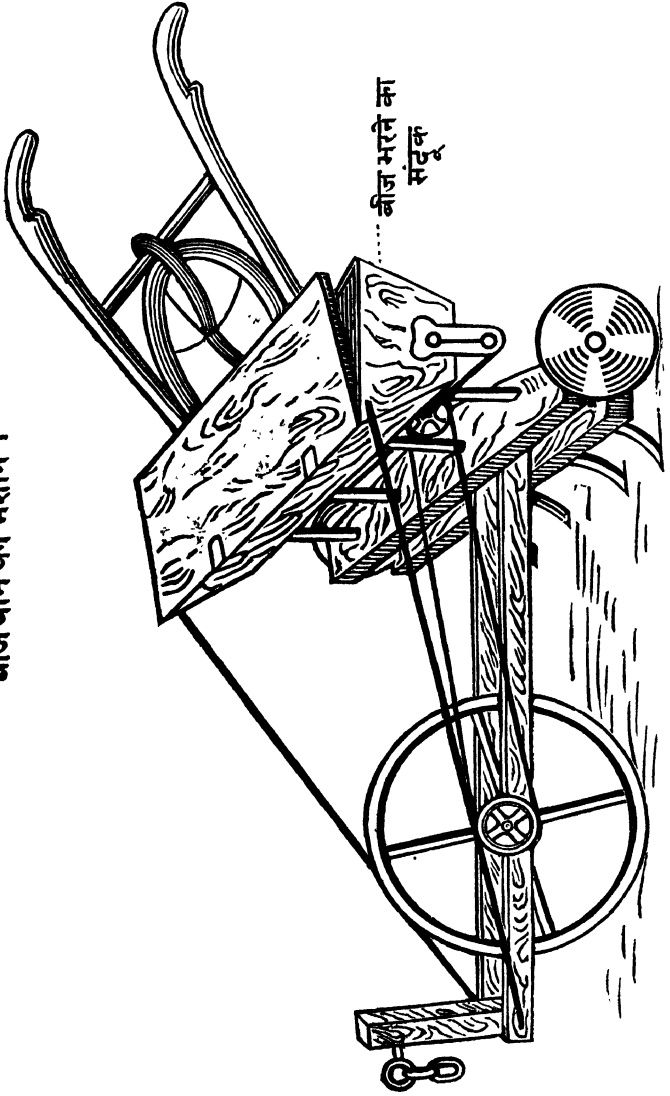
(२) एक एक करके बीज बोना—बीज बोने की आदर्श रीति यही है कि बीज एक एक करके नियत फासले पर बोए जावें किंतु अधिक समय और मजदूरी के कारण सर्वदा ऐसा नहीं हो सकता। कूँड़ में बोना या छिटका बोना इसी की निकटवर्तिनी रीतियों का अनुसरण करना है।

(३) कूँड़ में बीज बोना—इसका उद्देश्य भी बीज को अलग अलग एक एक करके बोने का है परंतु समय और मजदूरी बचाने के निमित्त इस रीति का अनुकरण किया गया है। अच्छी बोआई यह है कि बीज अलग अलग नियमित दूरी पर पड़ें, भद्देपन के कारण एक स्थान पर दो या अधिक बीज न गिरें।

इस रीति के अनुसार आगे आगे हल चलाया जाता है और हल के पीछे एक आदमी मुट्ठी में से अँगुलियों के इशारे से बीज गिराता जाता है जो हल के कूँड़ में पड़ता है। जब हल के पास की दूसरी कूँड़ फटती है दाना ढक जाता है और ऊपर से हेंगा फेरने से धरती समतल हो जाती है।

कहीं कहीं हल के पीछे एक नली बाँध दी जाती है जिसे "चोंगा या बैरा" कहते हैं। यह बाँस या अन्य किसी पदार्थ की नली के ऊपर बाँस की बिनी हुई अथवा मिट्टी या चमड़े की "कीप" लगाने से बनती है। इसके द्वारा बीज बोया जाता है। कहीं कहीं बोने के निमित्त चौड़े चौड़े कई पंक्ति के बैरा होते हैं।
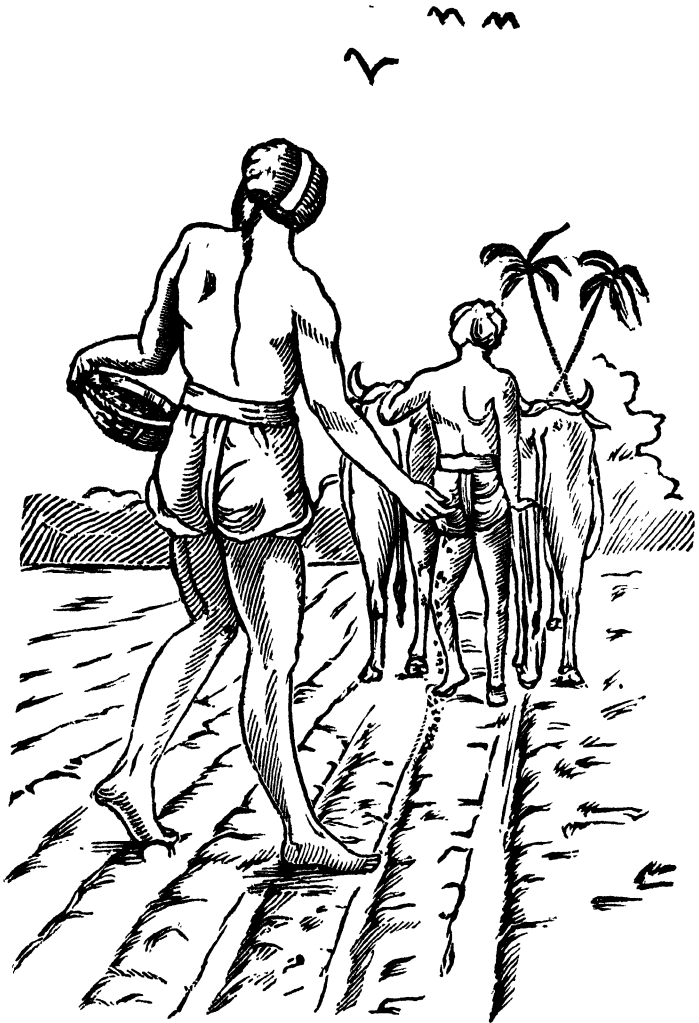
कूँड़ में बीज बोना

बैरा द्वारा बीज बोने का चलन कहीं कहीं है और कहीं कहीं नहीं है। जहाँ लोग इसकी उपयोगिता जानते हैं इससे बोआई अच्छी तरह करते हैं।

बैरा से बोआई करने में कीप में बीज प्रमाण से डालना चाहिए। यदि एक साथ अधिक बीज पड़ जाते हैं तो नलिका भर जाती है और जब तक इसका पता नहीं चलता कुछ अंश खेत का बिना बोया रह जाता है और दोबारा उस स्थान की बोआई करनी पड़ती है। यदि इसका पता न लगा तो बीज जमने तक पता नहीं चलता। बीज साफ़ करके डालना चहिए। नली की खरखराहट यदि बंद हो जाय तो समझना चाहिए कि बीज रुक गया।

(४) छिटका बोआई—अधिकतर बोआई छिटका रीति के अनुसार की जाती है, क्योंकि इसमें सुविधा होती है। कम परिश्रम, कम समय और कम व्यय होता है। इस रीति के अनुसार बोने में इस बात का विचार किया जाता है कि बीज बराबर दूरी पर फैल जावें, अलग अलग गिरें, एक स्थान पर अधिक तथा दूसरे स्थान पर कम बीज न गिरें।

अनुभवी बीज बोनेवाला प्राय: ऐसी भूल नहीं करता। उसका बोया हुआ दाना बराबर गिरता है और खेत भर पर बराबर पड़ता है। अनभ्यस्त बीज बोनेवाला इसमें गलती कर सकता है। इस कारण बहुत से गाँव में लोग किसी दत्त

बोनेवाले से अपने खेत बोआते हैं जिसके लिये कुछ देना नहीं पड़ता और वह अवकाश रहने पर बड़ी प्रसन्नता से यह स्वीकार कर लेता है।

कुछ लोग बहुत से कंकड़, बजरी एकत्रित करके यदि छिटका बोआई का अभ्यास किसी ऊसर धरती पर करें तो कुछ परिश्रम से बोने के ढंग से विज्ञ हो सकते हैं। बीज का इकट्ठा गिरना या कहीं कहीं न गिरना बीज बोने में त्रुटि है, इससे हानि भी होती है।

बीज बोने में सदा स्थान का विचार कर लेना चाहिए। जैसा पौधा हो उसके अनुसार बीज बोना चाहिए। यदि पौधा बड़ा है तो बीज दूर दूर बोना चाहिए, जैसे कपास या अरहर का बीज।

बीज बोने के पहले अच्छे बीज का निर्णय कर लेना अत्यंत आवश्यक है। बीज अच्छी तरह से प्रौढ़ हो गया है या नहीं? बहुत पुराना अथवा घुना सड़ा तो नहीं है अथवा उसमें अन्य कोई रोग तो नहीं लगा है? यदि बीज खराब है तो उसकी पैदावार खराब और कम होती है। प्रायः कृषक इस दोष का निवारण अधिक बीज बोकर करना चाहता है परंतु जमने के पहले यह नहीं मालूम हो सकता कि खराब बीज कहाँ पर गिरेगा।

बीज की बोआई के संबंध में यह विचारना आवश्यक है कि बीज किस गहराई पर बोया जाय। बीज की बड़ाई

छोटाई, मौसिम और धरती में नमी के अनुसार इस गहराई का विचार किया जाता है। सूर्य की किरणों से बचाने के लिये बीज गहराई पर बोया जाता है तथा जब नमी कम है उस समय बीज गहराई पर बोया जा सकता है। छोटे छोटे बीज यदि अधिक गहराई पर बो दिए जायँ तो उनके जमने के पश्चात् उनके अंकुरों में इतना बल नहीं रहता कि वे धरती के ऊपर तक आ सकें। वे भोजन और बल के अभाव से बीच ही में नष्ट हो जाते हैं। छोटे छोटे बीज सतह के निकट बोए जाते हैं जिससे उनका अंकुर जमकर हवा से भोजन प्राप्त करने लगता है और जड़ धरती में प्रवेश करके उसकी परवरिश करती है। तमाखू आदि के छोटे छोटे बीज बेहनौर में बोकर टट्टियों द्वारा या ऊपर घास फैलाकर सूर्य्य से बचाए जाते हैं और उनकी बोआई लगभग धरातल पर होती है। बड़े बीज गहराई पर बोए जाते हैं, क्योंकि सतह पर उनको पूरी नमी नहीं मिलती और उनको जमने में कठिनाई होती है, उनकी जड़ों को धरती में धँसने और पौधे को थामने में कम धरती मिलती है। धरातल पर बोने से उनको चिड़ियाँ चुग लेती हैं।

बोआई की रीति, बीज के आकार, धरती की उत्पादन शक्ति, बोआई का आशय, फसल, पौधों की स्थिति के अनुसार, भिन्न भिन्न हुआ करती है। बड़े पौधों की बोआई में, जो अधिक विस्तार में फैलते हैं, कम बीज लगता है। बोआई के उद्देश्य

के अनुसार यदि बीज दाने के लिये बोया गया है तो बीज की मात्रा, चारा अथवा रेशा की अपेक्षा कम लगती है।

दाने के लिये बीज छितरा बोने में यह लाभ है कि पौधा हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ उत्पन्न होता है और अच्छे पौधे में अच्छा और अधिक दाना उत्पन्न होता है। छितरा बीज बोने का आशय यह नहीं कि धरती का कुछ अंश खराब किया जाय और उसमें बीज न बोया जाय, किंतु पौधे की आवश्यकता के अनुसार उसको पूरी जगह बढ़ने को चाहिए। पेड़ी अथवा पत्ते, रंग, रेशा, अथवा खाद के निमित्त जब पौधों की आवश्यकता होती है उस समय बोआई घनी की जाती है क्योंकि यहाँ बलिष्ठ पौधों की आवश्यकता नहीं रहती। इस अवस्था में पेड़ी और पत्ती की अधिक आवश्यकता होती है। चारे के लिये पतली और मुलायम पेड़ी उत्पन्न होनी चाहिए; रेशा के लिये पतले और बिना डालवाले लंबे पौधों की आवश्यकता है क्योंकि लंबे पौधों में मुलायम, सीधा और लंबा रेशा निकलता है। पौधों का रेशा जिनमें शाखाएँ निकल पड़ती हैं खराब और छोटा होता है। मोटे पौधे के सड़ाने और रेशा निकालने में अधिक परिश्रम पड़ता है।

छोटे बीज बोने के पहले वे मिट्टी, राख तथा बालू के साथ मिलाकर बोए जाते हैं जिससे एक ही स्थान पर बहुत से बीज जमा न हों, बोने में सुगमता हो और बीज पूरे विस्तार से खेत भर में फैल जावें, जैसे सावाँ अथवा चना इत्यादि के

बीज। कपास के बीज पहले गोबर या गीली मिट्टी में मिला-कर रगड़ दिए जाते हैं जिससे अलग अलग रहें, और बोने में कठिनाई न हो।

३—बीज का छितरा और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बोना

जिस स्थान पर बीज अधिक बोया गया है अथवा जहाँ बीज कम पड़ा है पौधों की बाढ़ और उनके उत्पादन में विशेष प्रभाव पड़ता है। घनी बोआई के पौधों के उद्देश्य के अनु-सार उनकी बाढ़ का उल्लेख ऊपर आ चुका है। आवश्यकता के अनुसार कुछ पौधे उखाड़कर बोआई ठीक की जा सकती है। जहाँ बीज कम पड़ा है समय रहने पर उस स्थान पर बीज बोया जा सकता है अथवा जब पौधे छोटे छोटे रहें उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगा सकते हैं। इस काम में सावधानी होनी चाहिए, नहीं तो एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान में लगाए गए पौधों के पनपने में बाधा पड़ती है। यह देख लेना चाहिए कि पौधे बहुत बड़े तो नहीं हो गए हैं, और समय तो नहीं निकल गया है। संध्या समय पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर सावधानी से खुर्पी से खोदकर लगाना चाहिए क्योंकि संध्या समय लगाने में सूर्य की गर्मी से उनकी रक्षा होती है और रात्रि को ओस से सहायता मिलती है।

प्रायः यह रीति सब जगह नहीं की जाती। एक स्थान की कमी सरे स्थान की अधिकता में समझ ली जाती है।

अधिक परिश्रम करने का अवकाश भी बोआई के समय कम रहता है अथवा यह भी विचार किया जाता है कि इस श्रम का बदला मिलेगा या नहीं। इस कारण समय और फसल का विचार करके यह क्रिया की जाती है। कपास इत्यादि फसलों के खेतों में इस रीति का प्रयोग लाभदायक होता है अथवा बागवानी या कछियाना की फसलों को उपयोगी होता है।

४—घनी और छितरा बोआई

छिटका बोआई की रीति के वर्णन में घनी और छितरा बोआई का उल्लेख किया गया है। इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे बीज व्यर्थ न जाय और फसलें इच्छा के अनुसार बढ़ें और लाभदायक हों।

दसवाँ परिच्छेद

१—बीज का चुनना

अच्छे बीज की आवश्यकता का वर्णन बीज बोने के संबंध में किया जा चुका है। बीज की बनावट का उल्लेख तथा अच्छे बीज की परिभाषा का वर्णन ऊपर आ चुका है जिससे हमें विदित होता है कि अच्छा बीज एकत्रित करना कृषिकार का एक मुख्य कर्त्तव्य है। प्रायः कृषिकार अच्छा बीज न पाकर घटिया बीज बो देते हैं, जिससे अच्छी फसलें नहीं उत्पन्न होतीं अथवा वे आवश्यकता से अधिक बीज बोते हैं।

अधिक अन्न बोने का आशय यह होता है कि यदि एक बीज न उगा तो दूसरा उगेगा। परंतु यह रीति लाभदायक नहीं और इसका एकत्रित परिणाम हानिकारक है। पर जब तक ऐसे कारण एकत्रित नहीं किए जा सकते कि अच्छा बीज बोने को मिले यह हानि रोकी नहीं जा सकती।

बीज बेचने के कारखाने अथवा दूकान का चलन आम तौर पर नहीं पाया जाता। इस कारण अच्छा बीज मिलने में और कठिनाई होती है।

यदि कृषिकार ने बोने के निमित्त बीज रख छोड़ा है, तो वह समय पर अपने खेतों में बोआई करता है। यदि उसके पास का बीज समाप्त हो गया है और बीज खरीदने को

उसके पास दाम नहीं है, तो वह अपने महाजन से बीज पाने की खुशामद करता है। सूद का दर अधिक होता है। बोआई के समय अन्न महँगा होता है, इससे बीज खरीदने में अधिक दाम लगते हैं। यह भी होता है कि वह सवाई पर खराब अन्न पाता है, और प्रायः जो पास है वही बोता है।

अच्छे से अच्छे अन्न का भाव अधिक होता है। अधिक दाम के लालच पर कृषिकार और महाजन अपना अच्छा अन्न अधिक दामों पर बेच देते हैं। जो घटिया माल उनके पास रहता है वह बोने के काम में लाया जाता है जिससे आगामी फसल निर्बल हो जाती है। महाजन को जितने अधिक दाम से प्रीति हो सकती है उतनी उसे अच्छा बीज एकत्रित करने से नहीं होती, क्योंकि वह जानता है कि फसल बोने के समय गरजमंद कृषक को उसके यहाँ से उधार लेने के सिवाय और कहीं चारा नहीं और वह बोआई के समय खराब अन्न भी देकर उसके फसल का अच्छे से अच्छा अनाज सवाया ले सकता है। इस पद्धति से साल बसाल फसलें खराब होती चली जाती हैं जिसका परिणाम दुर्भिक्ष और दरिद्रता है।

इन अवस्थाओं पर भी खराब बीज मिलने में कठिनाई उपस्थित होती है और महाजन अथवा गाँव का ठाकुर बड़े निहोरे से अनाज देता है। इसका कारण चाहे तो उधार लेनेवालों का अविश्वास अथवा सूद देने में कमी, अथवा बीज की कमी

होती है। पाश्चात्य देशों से अधिकतर, तथा कहीं कहीं हमारे देश में भी बीज बेचने के विश्वासपात्र कारखाने और दूकानें हैं। उनमें अच्छे से अच्छे बीज पहचानने और चुनने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बीज चुनने पर उनकी रखवाली करना और दूसरी फसल के बोने के समय तक उनको अच्छी दशा में बनाए रखना तथा खराब बीज को छाँटना उनका कर्तव्य होता है। जिनको आवश्यकता होती है बिना कठिनाई के चुना हुआ बीज मोल ले सकते हैं। इस व्यवसाय की हमारे देश में आवश्यकता है और इससे लाभ भी हो सकता है। बीज बेचनेवालों के अपने ही खेत होते हैं और वे अपनी कृषिशालाओं में केवल बीज उत्पन्न करने और उन्हें रखने पर विशेष ध्यान देते हैं। ऐसे कारखाने सुभीते के अनुसार गाँव में अथवा शहर के निकट या किसी रेल के स्टेशन के निकट स्थापित किए जा सकते हैं। होनहार नवयुवक व्यापार की प्रणाली पर उन्हें चलाकर उनसे अच्छा लाभ उठा सकते हैं। साथ ही साथ वे कृषि संबंधी पुस्तकें, यंत्र, पानी उठाने की कलें इत्यादि कृषि संबंधी आवश्यक वस्तुओं का भी प्रचार कर सकते हैं।

सभी जानते हैं कि अच्छा बीज प्राप्त होने और उनको खेत में बोने से कई गुना अन्न प्राप्त हो सकता है। थोड़े अच्छे बीज से कई गुना अच्छा अन्न उत्पन्न हो सकता है। जमींदार अच्छा बीज देकर अपनी प्रजा की सहायता करता है परंतु

यथार्थ में परोक्ष रूप में वह स्वयं अपनी सहायता करता है क्योंकि प्रजा की उन्नति जमींदार की भलाई का कारण होती है।

अच्छा बीज चुनने में इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि बीज के अंकुर को कोई हानि तो नहीं पहुँची है, वह जीवित और आरोग्य है, पुराना नहीं है, घुना और सड़ा हुआ नहीं है, उसमें अन्य दूसरे प्रकार का अन्न तथा खर पतवार का बीज तो नहीं मिला हुआ है, वह सबसे बलिष्ठ और आरोग्य बालियों से चुना गया है, न कि छोटी और अधपकी बालियों से। यदि फसल अच्छी नहीं है और उसके दाने प्रौढ़ नहीं हुए हैं तो बोने के लिये ऐसी फसल से बीज न रखना चाहिए। ऐसी अवस्था में बीज अन्य किसी अच्छी फसल से प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्राय: ज्वार और मकई के बीज चुनने में कृषिकार अधिक तत्पर देखा जाता है। जब फसल प्रौढ़ हो जाती है, वह सबसे अच्छे भुट्टे चुनकर उन्हें खूब सुखाता है और उन्हें आगामी फसल के बोने के समय तक सावधानी से रखता है। जब बोने का समय आता है उनमें से खराब बीजों को बीनकर निकाल देता है। इसका कारण शायद यह है कि इन फसलों में बीज कम लगता है। गेहूँ, जौ के बीजों की चुनाई में अधिक परिश्रम पड़ता है और सब कृषिकारों को उस परिश्रम से लाभ उठाने का अवसर नहीं प्राप्त होता। मटर, कपास, चना, तथा तेलहन की फसलों में अधिक कृमि लग जाने का भय

रहता है। इसके बचाव के लिये उन्हें जब वह खूब प्रौढ़ हो जावें तब घाम में खूब ही अच्छी तरह सुखाकर रखना चाहिए। कँडुवा या गिरवी लगी हुई फसल का बीज न रखना चाहिए।

२—बीज का त्याग

बोने के पहले बीज को छाजन में चाल लेना चाहिए और इस प्रकार सुकड़े, छोटे और अधपके बीजों को अलग कर देना चाहिए। यदि संभव हो, तो उन्हें बीनकर एक एक बीज अलग कर लेना चाहिए। यद्यपि यह परिश्रमयुक्त रीति है परंतु जिस रीति से हो अच्छा बीज एकत्रित करने के लिये कोई परिश्रम अधिक न जानना चाहिए। उर्द, मसूर, मूँग, चना, मटर, थाली में रखकर ढरकाने से अच्छे और प्रौढ़ बीज अलग किए जा सकते हैं। भूसे से बीज को जिस समय खलियान में उड़ाकर अलग करते हैं तब मोटा, अच्छा बीज उड़ानेवाले के पास गिरता है। इसे ढेरी में से अलग करके बीज के लिये रख लेना चाहिए। हल्का बीज वायु द्वारा दूर गिरता है। यह बोने के योग्य नहीं होता।

इस काम में सूप, छटना और चलनी से सहायता ली जाती है। अधिक विस्तार पर काम निकालने के लिये लोहे के छटने छत से रस्सियों द्वारा लटकाकर काम निकाला जा सकता है।

जमींदार लोग एक स्थान पर एक ही अन्न की संतति बोने के अतिरिक्त यदि अच्छे और बलवान् बीज अच्छे स्थानों

से मँगाकर बोने का प्रबंध करें तो अन्न की जाति में उन्नति होने की आशा की जाती है।

३—बीज का संग्रह

जिस प्रकार राज्य का जीत लेना बिना उसे स्थापित किए अथवा कोष का संग्रह करना बिना उसकी रक्षा किए लाभ-दायक नहीं होता उसी प्रकार बीज को उत्पन्न करना लाभ-दायक नहीं हो सकता जब तक कि वह एक फसल से दूसरी फसल तक सावधानी से न रखा जाय। यह एक परिश्रमपूर्ण कार्य है पर साथ ही आवश्यक भी है।

बीज की रक्षा करने में इस सिद्धांत पर विचार किया जाता है कि उसमें नमी न प्रवेश करे, क्योंकि नमी पाकर बीज फूट निकलता है, दूसरे यह कि बीज में कीड़े न लगने पावें, क्योंकि कृमियुक्त बीज के अंकुर खराब हो जाते हैं और उनका जमना अनिश्चित होता है। जातीय सुगमता और सुविधाओं के अनुसार कृषक अपनी अपनी रीतियों का अनु-सरण करते हैं। यह बात अनुभव से विदित होती है कि जितना ही अनाज सूखा होगा उतनी ही उसकी हानि से रक्षा होगी। बीज रखने की कुछ सुगम रीतियाँ निम्नलिखित हैं—

४—कोठे में बीज रखने की रीति

(१) पक्के अथवा कच्चे मकान की कोठरी के फर्श पर अथवा पटाव के मकान के ऊपर की छत पर एक बालिश्त भूसा की तह देकर उसी पर अन्न एकत्रित किया जाता है। दीवार के

आसपास भूसा लगा दिया जाता है कि दीमक तथा नमी अन्न को खराब न करें। इसके पश्चात् अनाज भूसे से ढाक देते हैं।

(२) कहीं कहीं जब कई प्रकार का अन्न होता है तो अन्न बोरें में भरकर तब भूसे पर रखा जाता है और वह ऊपर से भूसे से ढाँप दिया जाता है। पुराना भूसा इस काम में न लाना चाहिए।

ठेका में बीज रखने की रीति—गोलाकार बड़े और चौड़े मोटे टाट के बने हुए बोरें को ठेका कहते हैं। इन्हें पत्थर, ईंटों, तख्तों तथा भूसे की तह पर रखकर उनमें अनाज भर दिया जाता है।

बखार या खातों में बीज रखने की रीति—कोठरी के भीतर एक या डेढ़ गज ऊँची ईंटों की दीवारें उठा दी जाती हैं जिससे कोठरी में कई खाने बन जाते हैं। उन पर मिट्टी का पलस्तर करके गोबर से लीपते हैं और फिर मिट्टी से पोतकर जब वह खूब ही सूख जाते हैं एक एक खाने में अन्न रखा जाता है। आवश्यकता के अनुसार बड़ा और छोटा खाना, दीवार ऊँची नीची तथा निकट या दूर बनाकर कर सकते हैं। खाता छत की कोठरी पर बनाने से सीड़ का भय जाता रहता है।

खत्तियों में बीज रखने की रीति—अधिक अन्न रखने के लिये खत्तियों का प्रयोग किया जाता है और उसी अन्न में से बीज के लिये दाना अलग कर लेते हैं।

धरती में कुएँ के समान गड़हा खोदा जाता है। स्थान ऐसा चुना जाता है जहाँ की धरती सूखी हो। खत्तो की गहराई इतनी होती है कि पानी के सोते से दूर रहे तथा उसका अन्न पर प्रभाव न पड़ सके।

कोठिला में बीज रखने की रीति—यदि अनाज कम है, तो वह कोठिला में रखा जाता है। कोठिले मिट्टी के बनाए जाते हैं। छोटे छोटे कोठिले आवाँ में पकाए जाते हैं, बड़े बड़े कोठिले कच्चे रहते हैं। वे मिट्टी और गोबर से लीपे पोते होते हैं। पेंदे के कुछ ऊपर एक छेद रहता है, उसी के द्वारा अन्न निकाला जाता है। उसको कपड़े या टाट के टुकड़े से ठूँसकर बंद कर सकते हैं।

कोठिला सफरी गिलास की तरह कई टुकड़ों में विभाजित हो सकता है। ये टुकड़े क्रमशः एक दूसरे के ऊपर रखे जाते हैं।

पुआल, मूँज अथवा अरहर के दौरे—सरपत, मूँज, अरहर अथवा और कोई मुलायम वस्तुओं के डंठल लेकर स्थान स्थान पर भिन्न आकार प्रकार के दौरे बनाकर उनमें थोड़ा बहुत अनाज रखते हैं।

नोट—बीज के साथ एक अँगरेजी दवा 'नेपथैलीन', जो एक रुपए सेर बिकती है, रखने से उनमें कीड़े नहीं लगते, बीज को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती, उसके स्वाद तथा गुण में अंतर नहीं पड़ता। धूप में रखने से नेपथैलीन की बू अनाज से निकल जाती है।
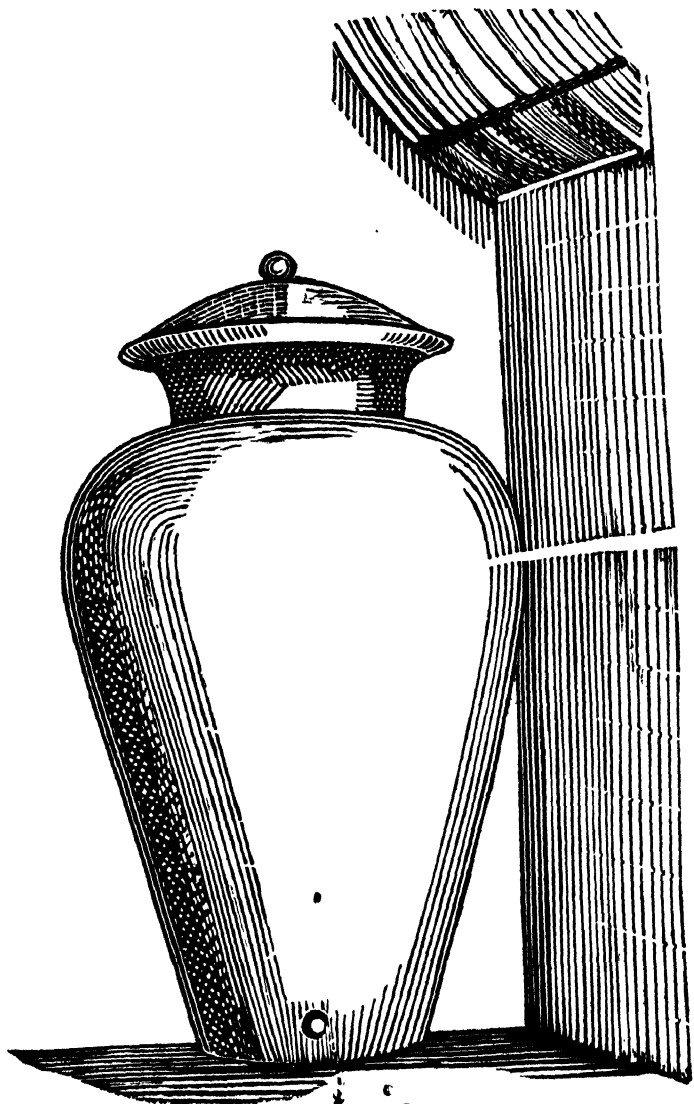
बीज निकालने का छेद

. लोहे, जसते अथवा टीन के बने हुए बड़े बड़े बक्स अथवा कनस्तर, या काठ के संदूक भी सुभीते के अनुसार बीज रखने के लिये काम में लाए जा सकते हैं।

५—नई फसलों का बोना

लाभदायक और नवीन शस्यों का अनुभव करने से अनुकूल स्थानों पर उन्हें बोना लाभदायक हो सकता है। जैसे, आलू, तमाखू और मूँगफली की खेती से सुभीते के अनुसार बोए जाने पर अच्छी आमदनी हो सकती है।

६—धरती के अनुसार बीज का चुनना

उपजाऊ और अनुपजाऊ धरती का विचार करके मूल्यवान् फसलें बोनी चाहिएँ, जिससे परिश्रम और बोने की मजदूरी प्राप्त हो और लाभ की संभावना हो। जिन फसलों को पानी की अधिक आवश्यकता हो उन्हें जलाशय के पास बोना चाहिए जिससे सिंचाई में दूर से पानी लाने में कठिनाई न पड़े।

७—बीजों का बदलना

तरकारी आदि का बीज बदलते रहना चाहिए। लगातार वही बीज बोने से खराब हो जाता है।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

निराई और गुड़ाई

१—निराई

खेतों में फसल बोई जाती है। कृषिकार का अभिप्राय होता है कि फसल अच्छी तरह से बढ़े और उससे मुझको लाभ पहुँचे, पर फसल के साथ बहुत से अन्य खर पतवार जम जाते हैं जो उसके भोजन, जल और वायु के साझीदार हो जाते हैं। कितने खर पतवार तो ऐसे होते हैं जो फसल से भी अधिक बलवान् हो जाते हैं और बढ़कर फसल को दबा लेते हैं। इन खर पतवारों को निकाल देना कृषिकार का परम कर्तव्य है। इस प्रकार से खर पतवार के निकालने को निराई कहते हैं।

यदि खर पतवार बोआई के बाद फसल के साथ बढ़ते हैं तो उन्हें जितनी जल्दी हो सके निकाल देना चाहिए, नहीं तो उगती फसल की बाढ़ पर बड़ा कुप्रभाव पड़ेगा। खर पतवार धरती से वही भोज्य पदार्थ खींचते हैं जिसकी फसल को आवश्यकता रहती है। वे फसलों की अपेक्षा प्रायः कठिन समय का अधिक सामना करके जीवित रह सकते हैं। उनको जड़ से खोदकर निकाल देना चाहिए क्योंकि केवल

पेड़ी और पत्तियों के काटने से वे फिर फिर बढ़ जाते हैं। खर पतवार के बढ़ने और फूलने फलने से उनका बीज उसी खेत में गिरता है और आगामी फसल के साथ वे अधिक हो जाते हैं।

बायसुरई, रोश्ना, जवासा, आक, तिपतिया, दूब प्रायः खेतों में फैलते हैं। उनके बढ़ जाने पर उनके बीज वायु में उड़कर आसपास बिखर जाते हैं। आक के बीज तो वायु में उड़ते हुए देखे जाते हैं और यदि वे किसी अनुकूल स्थान पर जहाँ उनके जमने का सुभीता हुआ गिरें तो जमकर बढ़ निकलते हैं। आसपास के खर पतवार के बीज उड़कर अपने खेतों में आ सकते हैं। इस प्रकार एक कृषक की लापरवाही के कारण दूसरे कृषक को कष्ट पहुँचता है।

खेत की निराई में अधिक परिश्रम और व्यय लगता है किंतु इस क्रिया से लाभ होता है। जो खर पतवार खाने योग्य हों जैसे बथुवा, मोथा इत्यादि उन्हें पशुओं को खिला देना चाहिए। दूसरे खर पतवार जला देने चाहिएँ और उनकी राख खाद के काम में लानी चाहिए। खर पतवार सुखाकर कदापि खाद के साथ एकत्रित न करने चाहिएँ क्योंकि वे बहुत कम सड़ते हैं और खाद के साथ वे फिर खेत में पहुँच जाते हैं जहाँ से वे निकाले गए थे। जब बीज प्रौढ़ हो जाता है, उनके कठिन छिलके के कारण वे पशुओं को हजम नहीं होते, केवल पत्तो और पेड़ी का अंश हजम होता है। कड़ा बीज गोबर के साथ बाहर आता है और खाद के गड्ढे

में एकत्रित रहता है। खाद देने के समय अनजान में कृषिकार इसको खेतों में फेंकता है अथवा वह खाद के साथ खर पतवार के बीज खेतों में बोता है जो अपने समय पर उगते, बढ़ते और कृषिकार के परिश्रम को बढ़ाते हैं। ऐसी अवस्था में पशुओं को खर पतवार खाने को न देना चाहिए वरन् उन्हें एकत्रित करके जला देना चाहिए। एक बार अच्छी तरह खर पतवार के साफ कर देने से उनके उसी फसल में बढ़ने का भय जाता रहता है और परिश्रम कम हो जाता है।

काँस, दूब प्रभृति खर पतवार जब तक जड़-मूल से नहीं निकाल डाले जाते उनकी बाढ़ का रोकना कठिन हो जाता है। उनके निकालने में फावड़े से गहरा खोदना पड़ता है अथवा गहरा जोतनेवाले हलों का प्रयोग करना पड़ता है। जब इस प्रकार के खर पतवार खेत में दिखाई दें, उन्हें अधिक बढ़ने देने के पहले ही खोदकर साफ कर देना चाहिए जिससे आगे बढ़ने का भय न रहे। काँस के फैलने के कारण अच्छे खेत जोत से बाहर हो गए हैं।

कुछ खर पतवार ऐसे होते हैं जिनकी जड़ें धरती में पड़ी रहती हैं। जब उन पर पानी पड़ता है वे जम निलकती हैं। कुछ खर पतवार इस कारण से जम आते हैं कि वे शस्यों के बीज साफ न होने के कारण उनके साथ मिलकर खेतों में बोए जाते हैं। कुछ खेतों में पड़े रहते हैं और जब उनके जमने की ऋतु आती है वे जम आते हैं।

खर पतवार प्रायः खुर्पी से निराए जाते हैं। छोटे और गहरा जोतनेवाले हल भी समय पर खर पतवार निकालने के काम में लाए जाते हैं। मिट्टी पलटनेवाले हल खर पतवार निकालने में बड़े उपयोगी होते हैं क्योंकि उनसे खर पतवार खोदकर उलट दिए जाते हैं, जिससे उनकी जड़ें उलट जाती हैं और वे सूखकर और सड़कर नष्ट हो जाते हैं।

बोए हुए शस्यों के बीज से खरपतवार निकालने में अधिक परिश्रम पड़ता है। कुछ खर पतवार ऐसे हैं जो जोताई के साथ जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं। और सूर्य्य के प्रभाव से सूख जाते हैं। धान के खेतों में बड़े बड़े और घने 'नरुई' प्रभृति बहुत से खर पतवार जम आते हैं। जब तक उनमें पानी रहता है उनको काटकर पशुओं तथा घोड़ों को खिलाते हैं। ऐसी अवस्था में उनका निकालना दुस्तर होता है। प्रायः ऐसे खेतों में एक ही फसल बोई जा सकती है। जब पानी सूख जाता है, वैशाख और ज्येष्ठ की कड़ी धूप पड़ती है वे जड़ मूल से सूख जाते हैं जिससे खेत अपने आप साफ हो जाते हैं। इस अवस्था में यदि उनके बीज जो बहुत छोटे होते हैं एकत्रित करके नष्ट कर दिए जायँ तो आगामी फसल में उनके बढ़ने का भय जाता रहे या कम हो जाय।

निराई के बाद खर पतवार खेत से निकाल देना चाहिए, उनको पैर से खेत में दबाना न चाहिए क्योंकि वे इस प्रकार फिर पृथिवी में लग जाते हैं और जम आते हैं।

२—गुड़ाई

पृथिवी की सतह नर्म रखने के लिये, जिससे अच्छी तरह से हवा प्रवेश करे और पानी लगे, गुड़ाई की जाती है। गुड़ाई का यह भी आशय होता है कि नीचे की सतह का पानी संचित रहे और भाप बनकर न उड़े क्योंकि जैसा ऊपर वर्णन किया गया है गुड़ाई करने से केश नलिकाओं (Copillery Tubes) का संबंध ऊपर की सतह से टूट जाता है और पानी भाप बनकर नहीं उड़ता। इस प्रकार संचित जल से पौधों को बहुत लाभ पहुँचता है और तत्काल सिंचाई की मेहनत बच जाती है।

कई घनत्व के तरल पदार्थों में यदि बारीक नलिकाएँ रखी जायँ तो यह देख पड़ेगा कि सब से महीन छेद की नलिका में सबसे अधिक तरल पदार्थ ऊँचे चढ़ेगा। इसी को केशाकर्षण शक्ति कहते हैं। सिंचाई में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि महीन जोते हुए खेतों में पौधों की जड़ें केशों द्वारा इस आकर्षण-शक्ति के अनुसार नमी प्राप्त करती हैं। खेतों के अणु जितने पास और बारीक होते हैं उतनी ही बारीक नली बनती हैं। पटेला चला देने से ये नलिकाएँ टूट जाती हैं और पानी भाप बनकर नहीं उड़ता। बार बार गुड़ाई करने से इसी सिद्धांत पर पानी धरती में एकत्रित रहता है और जहाँ सिंचाई के लिये पानी नहीं मिल सकता गुड़ाई करके इस सिद्धांत के ज्ञान से धरती में नमी स्थिर रखी जाती है।

बढ़ते हुए शस्यों को गुड़ाई से अधिक लाभ पहुँचता है। गुड़ाई के साथ साथ निराई भी होती जाती है। खुर्पी और
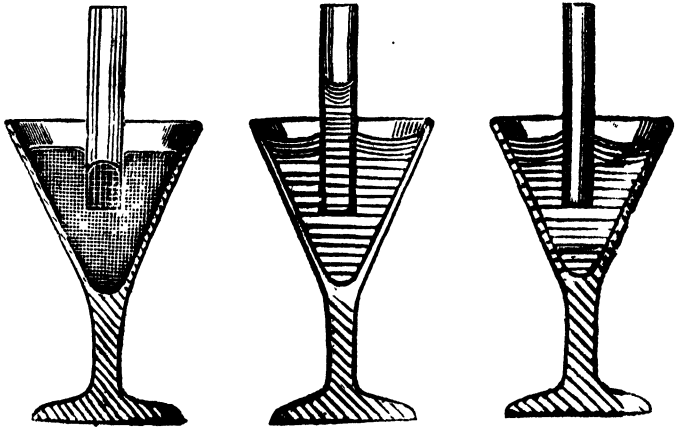
केशाकर्षण शक्ति।

कुदाली से गुड़ाई की जाती है। समय पर गुड़ाई कर देने से बहुत सी नमी पृथिवी में संचित रह जाती है। बोआई के बाद जब पौधे कुछ बढ़ आते हैं और खेत का ऊपरी धरातल सूखा दिखाई पड़ता है उसी समय गुड़ाई करना अच्छा होता है जिससे नीचे की भूमि की नमी संचित रह जाय। इस अवसर पर निराई भी करते जाना उचित होता है। बार बार निराई और गुड़ाई से शस्यों को अनेक लाभ होते हैं और पौधे बलिष्ठ हो जाते हैं। गुड़ाई के पश्चात् जब धरती सूख जाती है और पौधे मुर्झाने लगते हैं उस समय सिंचाई की आवश्यकता होती है।

जो शस्य दूर बोए जाते हैं, जैसे कपास, मकई, उनकी निराई में नवीन दस्ती पहिएदार 'गोड़ना' (Hand Hoe) काम में लाया जाता है जिससे अधिक काम होता है। उसके चलाने में कोई विशेषता नहीं, उसका दस्ता पकड़कर खड़े होकर उसे धरती पर आगे पीछे खींचते हैं, जिससे धरती गुड़ती जाती है। इस तरह गोड़ने से आसानी से और अधिक काम होता है। एक बैल या दो बैलों की सहायता से भी ऐसे यंत्र चलाये जा सकते हैं। यह उन स्थानों में बड़े लाभकारी होते हैं जहाँ पर कि मजदूर कम मिलते हैं और शस्य का क्षेत्रफल अधिक होता है।

बारहवाँ परिच्छेद

सिंचाई

१—जलाशय

पौधों के जीवन में पानी की अत्यंत आवश्यकता का वर्णन ऊपर कई स्थानों पर आ चुका है। प्राकृतिक रूप में पानी पृथिवी पर वर्षा रूप में पौधों को प्राप्त होता है और अधिक या कम धरती में संचित रहता है। वर्षाजल पौधों को हर समय न प्राप्त होने के कारण कृत्रिम रूप से पानी पौधों को पहुँचाया जाता है जिससे वे जीवित रहें, बढ़ें, फूलें और फलें। पौधों को कृत्रिम रूप से जल पहुँचाने को सिंचाई कहते हैं। सिंचाई के संबंध में दो बातों की आवश्यकता होती है, एक तो जल का प्राप्त होना, दूसरे वह जल किस प्रकार पौधों तक पहुँचाया जाय। दोनों बातें कठिन हैं और कृषि संबंधी विचारणीय विषयों में से हैं।

अनावृष्टि के कारण कितने ही अकाल भारतवर्ष में पड़ चुके हैं और जब कभी अनावृष्टि आ पड़ती है, अकाल की आँखें सामने चमकती दिखाई देने लगती हैं। कितने ही अन्य कारण हैं जो अकाल से रक्षा करने के संबंध में तथा उसके निवारण करने के संबंध में विचारणीय हैं, पर पानी के प्राप्त करने का प्रश्न सबसे प्रथम है।

पानी की प्राप्ति के स्थान—(१) कुएँ, (२) सोते, झरने, (३) नदी, नाले, (४) तालाब, गड़हे, पोखरे, पोखरियाँ, झील, (५) नहरें।

२—कुएँ

इस देश के अधिक भागों में कुएँ सिंचाई के प्रधान साधन हैं। जहाँ जितने कुएँ हैं वहाँ पर उतनी ही कृषि-कर्म्म में स्थिरता है। बहुत से स्थानों पर नहरें बनती जाती हैं जिनसे लोगों को पानी लेने में अधिक सुगमता होती है, पर नहरें सब जगह प्राप्य नहीं हैं और सब किसी के बनाने के बस की नहीं।

३—कुएँ की खोदाई

भिन्न भिन्न स्थानों पर कुओं की गहराई, जहाँ पर पानी मिलता है, भिन्न होती है। यह गहराई प्रायः दस से सौ हाथ तक होती है (१ हाथ = डेढ़ फीट = १८ इंच का होता है।) जहाँ जल गहराई पर होता है वहाँ पर कुएँ की खोदाई में अधिक परिश्रम और व्यय की आवश्यकता होती है। पर केवल व्यय और परिश्रम पर कुएँ की खोदाई निर्भर नहीं है। धरती के भीतर कई तहें भिन्न भिन्न प्रकार की धरती की मिलती हैं जिन्हें पार करके पानी तक पहुँचना होता है। कहीं बलुई तह, मटियार तह, कँकड़ीली तह और सिक्ता तह बारी बारी मिलती हैं। यह कोई नियम नहीं है कि कुएँ की खुदाई में सभी तहें मिलें तथा एक ही क्रम से मिलें।

जहाँ जैसी धरती तथा जितनी गहराई होगी वैसी ही तहें मिल सकती हैं। यदि तहें ठस मिलती गईं तो कुएँ की खोदाई सावधानी से बराबर चली जाती है। चाहे खोदने में परिश्रम पड़े पर बाधा नहीं पड़ती। पर यदि बालू की तह पड़ जाती है तो खोदाई में कठिनाई पड़ती है क्योंकि चारों ओर से बालू भरभराने लगता है जिससे खोदनेवाले काम नहीं कर सकते। बालू रोकने के लिये 'धार' तथा 'बाड़' डालते हैं जिससे बालू का भरभराना थम जाय। यदि बालू की तह बीच में पड़ी और उसके नीचे फिर अच्छी धरती मिली तो कुएँ की खोदाई की कठिनाई जाती रहती है। पर यदि बालू की तह पानी के पास मिलती है और दूर तक नीचे चली जाती है तो कुएँ का सँभालना दुस्तर हो जाता है। ऐसे कुएँ शीघ्र ही गिर जाते हैं। उनका प्रबंध करना कठिन और अधिक व्यय-साध्य होता है। यह कठिनाई अधिक गहरे तथा सामान्य अथवा कम गहरे कुओं में बराबर पड़ती है और कुएँ की खुदाई का परिश्रम व्यर्थ जाता है।

साधारण अवस्था में जहाँ कुएँ अधिक हैं वहाँ कुआँ खोदने के स्थान चुनने में गाँव के लोग तथा कृषिकार कभी धोखा नहीं उठाते, पर जहाँ कुएँ नहीं हैं अथवा जहाँ की धरती की तहें अनस्थिर हैं किसी अनुभवी गुणी की राय लेना आवश्यक है।

कृषि-विभाग के अधीन संयुक्त प्रांत के सभी जिलों में एक छेद करनेवाला कर्मचारी (Borer) रहता है जो अपने यंत्रों

से पृथिवी के गर्भ के भीतर की तहों की मिट्टी की बानगी निकालकर यह बतला देता है कि किस गहराई पर कितनी और कैसी मिट्टी निकलेगी। इस पूर्व ज्ञान से कुआँ खोदने में सहायता मिलती है और अधिक परिश्रम और व्यय बच जाता है। कहीं कहीं लोग ज्योतिषी से स्थान निर्वाचित कराकर कुआँ खुदवाना आरंभ करते हैं पर प्राकृतिक नियम सब स्थान पर केवल विचार पर नहीं चलते, वहाँ तो साक्षात् वस्तु से मतलब है। यदि ज्योतिषी अनुभवी है तो वह स्थान निर्वाचित करने में अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार जगह बतला देता है। कहाँ तक अच्छे ज्योतिषी मिल सकते हैं अथवा उनके अनुमान का कहाँ तक प्रभाव पड़ता है हम नहीं कह सकते। इसमें संदेह नहीं कि ज्योतिष पारदर्शिणी विद्या है और उसका चमत्कार माननीय है।

जिन कुओं में जल समीप मिल जाता है उनकी खोदाई में अधिक व्यय और परिश्रम नहीं करना पड़ता। पर जहाँ पानी बहुत गहराई पर है वहाँ कुआँ बनाने में अधिक धन की आवश्यकता है। कुएँ दो प्रकार के होते हैं—एक वे जिनमें पानी आसपास की धरती से स्रवता है। ऐसे कुओं में पानी कम होता है और आसपास के स्रोत पर निर्भर रहता है। ऐसे कुओं को स्रवित कुएँ अथवा अँगरेजी में Percolation Well कहते हैं, दूसरे वे कुएँ जिनमें पानी किसी सोते से आता है अथवा किसी एकत्रित स्थान से प्राप्त होता है। ऐसे कुओं में

अधिक जल होता है। प्राय: इस प्रकार के कुओं में जल गहराई पर मिलता है। ऐसे कुएँ सोत कुएँ (Spring Well) कहलाते हैं। दोनों प्रकार के कुओं में ज्यों ज्यों पानी निकलता जाता है उसके स्थान पर अधिक पानी एकत्रित होता जाता है पर पहले में समय पाकर जल की मात्रा चुक जाती है और दूसरे काम देते रहते हैं। गहरे और सोत कुएँ का जल प्राय: कठिन से कठिन सूखा में भी नहीं सूखता, यद्यपि ताल, पोखरे, और झील तक सूख जाती हैं। इन कुओं से गहराई के कारण पानी के भाप बनकर उड़ने का भय कम रहता है। पर अधिक गहराई से जल का उठाना बड़ा कठिन होता है और उनसे सिंचाई में अधिक परिश्रम पड़ता है।

४—कुएँ की बँधाई

बिना बँधे हुए कुओं के गिर जाने का अनेक कारणों से भय रहता है क्योंकि उनमें दृढ़ता नहीं होती। ऐसा भी देखा जाता है कि कहीं कहीं बहुत पुराने कच्चे कुएँ वर्तमान हैं। वे सुदृढ़ हैं और उनके गिरने का भय नहीं। यह मिट्टी का गुण है। जहाँ की जैसी मिट्टी हो वहाँ वैसा कुआँ बन सकता है। साधारण स्थानों पर पानी पड़ने से मिट्टी फूलती है और फूल जाने से कुएँ की दीवारों के गिर जाने का भय रहता है। इसी के लिये कुएँ की बँधाई की जाती है। ऐसे बँधे हुए कुएँ बहुत दिनों तक काम देते हैं।

५—कच्चे कुएँ

जहाँ धरती की सतहों में मटियार भूमि अथवा कड़ी मटियार धरती पड़ती है वहाँ कच्चे कुएँ बहुत दिनों तक काम देते हैं। ऐसे कुएँ केवल खोदाई के व्यय पर तैयार हो जाते हैं। इस प्रांत के पश्चिमी जिलों में जहाँ पानी गहराई पर मिलता है साधारण अवस्था और अच्छी धरती में दस बारह रुपए में कुएँ खोदे जाते हैं। पूर्वी जिलों में जैसे बनारस और आजमगढ़ में पानी बहुत करीब मिलता है, और १।) से २) तक में कुआँ खोदा जाता है। ऐसे कुओं की आयु बहुत कम होती है।

आजमगढ़ और बनारस में खेतों के किनारे कच्चे कुएँ डेढ़ हाथ चौड़े खोदकर उनसे सिंचाई की जाती है पर फिर वे दूसरी फसल में गिर जाते हैं। पानी दस हाथ पर मिल जाता है। इन कुओं की खोदाई भय रहित नहीं तथापि कोयरी अपने खेतों की सिंचाई करने के लिये जोखिम उठाते हैं। इन कुओं में स्रवित जल आता है जिसकी मात्रा अत्यंत कम होती है।

यदि बालू की मोटी सतह पड़ जाती है तो बालू को भरने से रोकने के लिये अरहर, पतलो, जमुनी या जमुआ की डाली तथा शीशम की डालियों से दौरी के सदृश बिनावट का गोल चक्कर, जिसे 'बीड़ या जार' कहते हैं, बनाकर डालते हैं। इनकी बिनावट बड़ी मजबूत होती है। इससे बालू रुक जाता है और कुएँ खोदनेवाले निर्भय काम कर

सकते हैं। यदि बालू की तह पतली है तो बोड़ डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

६--पक्के कुएँ

दीवारों की रक्षा करने के लिये कुओं की बँधाई होती है जिससे वे अधिक काल तक काम दें और बार बार नए कुएँ खोदने की मिहनत और चिंता जाती रहे। ठोस मटियार धरती के कुओं की दीवारें बहुत दिनों तक काम देती हैं। पानी के छलकने से उनकी दीवारों से चक्के उखड़कर कुएँ में गिरते हैं। इस प्रकार यदि बीच से अधिक भाग खाली हो गया तो कुएँ के गिर जाने में संदेह नहीं रहता। कुछ कुओं की दीवारों में काई लग जाने से पानी की रक्षा होती है।

कुओं की बँधाई कहीं पूरी कहीं अधूरी होती है। यदि कुएँ में हलकी मिट्टी की कई सतहें पड़ जाती हैं तो पूरा कुआँ बाँधना चाहिए। यदि मिट्टी ठोस हुई तो कुएँ के ऊपरी भाग का कुछ हिस्सा बाँध दिया जाता है। अधूरे कुएँ की बँधाई में ईंट तथा पत्थर जिससे बँधाई होती है कुएँ के बीच में जितना दूर तक कुआँ बाँधना होता है ठोस दीवार में ताक खोदकर जमा देते हैं और आगे इन्हीं के आसरे बँधाई ऊपर तक कर दी जाती है।

पूरे कुएँ की बँधाई में बड़ी सावधानी से काम लेना होता है। इसमें असाधारण अवस्था में व्यय और भय दोनों का सामना करना पड़ता है। बँधाई नीचे से शुरू की जाती है

श्रौर ज्यों ज्यों गोला तैयार होता जाता है उसको ऊपर से बोझा देकर नीचे दबाते जाते हैं। फिर उस पर जोड़ाई की जाती है श्रौर फिर गोला दबाया जाता है, यहाँ तक कि गोला समस्त कुएँ में आ जाता है श्रौर बँधाई बंद कर दी जाती है।

बोझा देने में श्रौर गोला नीचे दबाने में बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ता है, नहीं तो बेमेल बोझ से गोला टूट जाता है श्रौर बँधाई व्यर्थ हो जाती है।

गोले की बँधाई गूलर, जामुन तथा बबूल इत्यादि की लकड़ी के जमुवट पर बाँधते हैं। ज्यों ज्यों बँधाई होती जाती है उसे नीचे धँसाते जाते हैं श्रौर नीचे की मिट्टी सावधानी से खोद-कर निकालते जाते हैं। कभी कभी जब गोला धँसने में कठि-नाई होती है तो जमुवट के साथ लोहे की धार लगाई जाती है। धार बहुत दृढ़ होती है। यह लोहे की बनाई जाती है। एक तरफ यह जमुवट में जड़ी होती है श्रौर दूसरी श्रोर इसकी धार तेज होती है। कभी कभी जमुवट मोटे मोटे नार (रस्सों) से कुएँ के ऊपर किसी पेड़ अथवा बाँस या खूटों में बाँध दी जाती है। जब गोला धँसाने का समय आता है, रस्सों को खोलकर ढीला कर देते हैं श्रौर गोले को विधिपूर्वक धँसाते हैं।

गोला प्रायः पकाई हुई ईंटों तथा पत्थर के टुकड़ों से गारे अथवा चूने की सहायता से बनाते हैं। गोला गलाते समय यदि सावधानी से काम न लिया गया अथवा गारा

खराब हुआ तो गोला फट जाता है और नीचे काम करनेवाले आदमियों के दबने का भय रहता है।

गोला गलाने की सीमा उस हद तक होती है जब तक वह नीचे किसी ठोस सतह पर न जम जाय। पहले यह ठोस सतह अनुकूल गहराई तक होनी चाहिए, दूसरे यह सतह इतनी मोटी होनी चाहिए कि वह गोले का भार सँभाल सके। इस सतह को जिस पर नींव पड़ती है 'मोटा' कहते हैं। अनुकूल मोटा के न मिलने से कुएँ की बँधाई में बड़ी बाधा पड़ती है। कहीं तो मोटा नहीं मिलता और कहीं इतना पतला होता है कि वह गोले का भार नहीं उठा सकता। इस अवस्था में छेद करनेवाले कर्म्मचारी (Borer) की सहायता से मोटे की दशा देख लेना अच्छा होता है।

कुँआ बनाने का केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। हम और बहुत सी छोटी छोटी बातें न लिखकर यह कह देना उचित समझते हैं कि कुँआ बनाते समय जानकार आदमियों की सम्मति और सहायता लेना आवश्यक है।

कृषि-विभाग की ओर से ऐसे कुएँ भी बनाये जाते हैं जो लोहे के नल भूमि में गलाकर तैयार किए जाते हैं। इनको "ट्यूब वैल" कहते हैं। जब तक पर्याप्त मात्रा में पानी नहीं मिलता तब तक नल गलाते जाते हैं। जब पानी आवश्यकतानुसार मिल जाता है तब गलाना बंद कर देते हैं। कुओं को पानी प्रायः भूमि की बलुई तहों से मिलता है। नल

गलाते समय इस बात का पता चल जाता है कि बालू कहाँ कहाँ पर है। फिर नल को निकालकर जहाँ जहाँ पर बालू होता है, जालीदार नल लगा देते हैं। इन जालियों में से पानी बराबर कुएँ में आता रहता है और बालू भीतर नहीं आने पाती। ऐसे कुओं में इंजन की सहायता से पंप द्वारा पानी निकालते हैं। यदि सोते अच्छे मिल जाते हैं तो इन कुओं द्वारा अधिक क्षेत्रफल की सिंचाई की जा सकती है।

साधारण कुओं के पानी की मात्रा भी नल गलाकर बढ़ाई जा सकती है।

७—सोते और झरने

पहाड़ी स्थानों में कुछ पानी सोते और झरनों.द्वारा बहता है। इसको एकत्रित करके निचास की धरतियों को सींचने के काम में लाते हैं। पहाड़ी स्थानों में ये बड़े उपयोगी होते हैं। ऐसे स्थानों में प्रायः यही जल सब कामों में लाया जाता है और जो कुछ खेती होती है उसमें इसी जल द्वारा सिंचाई का काम निकाला जाता है।

८—नदी नाले

नदी से सुविधा के अनुसार पानी उठाकर सिंचाई का काम लिया जाता है। छोटी नदियाँ, नाले भी सुभीते के अनुसार सिंचाई के काम में लाए जाते हैं। जहाँ पर सुभीता होता है और पानी की अधिक आवश्यकता होती है ऑयल इंजन लगाकर पानी उठाया जाता है।

९—तालाब, पोखरे, पोखरियाँ

पक्के तालाब प्रायः सिंचाई के काम में बहुत कम आते हैं, क्योंकि उनमें से पानी के निकास का कोई रास्ता नहीं होता। कुछ तालाब बहुत बड़े और गहरे बनाए जाते हैं जिनमें अधिक पानी एकत्रित होता है जो साल भर सूखता नहीं और काम देता है। वर्षाकाल में वे आसपास के बहाव के पानी से लबालब भर दिए जाते हैं। ऐसे पोखरे प्रायः पास के शिवालों के साथ धमार्थ बनाए जाते हैं। उनसे कृषि को तथा जनसाधारण को यह लाभ होता है कि तृषित पशु और मनुष्य पानी पी सकते हैं। प्रायः इस बात का विचार किया जाता है कि कम से कम एक ओर गऊ घाट बना दिया जाय जो ढालुआँ हो जिससे पशु सुगमता से पानी तक उतर-कर पानी पी सकें।

कच्चे पोखरों की खोदाई का प्रचार पूर्वीय जिलों में अधिक है क्योंकि धान के खेतों की सिंचाई में अधिक पानी की आवश्यकता होती है जो कुएँ से पूरी नहीं हो सकती। कच्चे पोखरे प्रायः इस प्रकार खोदे जाते हैं कि उनमें की मिट्टी जो निकलती है वह उसके चारों ओर फेंकी जाती है। थोड़ी थोड़ी जगह मिट्टी की मेंड़ के बीच में छोड़ दी जाती है जिसमें बरसाती पानी आकर एकत्रित हो सके। आवश्यकता के अनु-सार दो एक घाट के लिये स्थान छोड़ देते हैं। इन पोखरों की गहराई बहुत कम होती है क्योंकि गहरे पोखरे खोदने में अधिक

व्यय होता है। इन पोखरों से पिछले धान तथा रबी की अगैती सिंचाई का काम चल जाता है। रबी की पिछली सिंचाई तथा ऊख की भराई के लिये बहुत कम पोखरों में पानी मिलता है।

पोखरों की खोदाई अधिक कठिन नहीं, इससे इसमें विशेष ध्यान और अनुभव की आवश्यकता नहीं होती। पोखरे के विस्तार का धन के अनुसार नापकर अनुमान कर लिया जाता है और खोदाई आरंभ कर दी जाती है। मिट्टी को औरतें, लड़के तथा मर्द डलियों में उठाकर पोखरे के भीटे पर फेंकते हैं। गदहे, भैंसों और बैलों पर मिट्टी लादकर फेंकने की प्रथा भी देखी जाती हैं।

पोखरा खोदने में ऐसी भूमि छाँटनी चाहिए जिससे उसका पेंदा और दीवारें चिकनी ठोस मिट्टी की बन जावें।

पहाड़ी जिलों में दो पहाड़ी तथा चट्टान के बीच में बाँध डालकर तालाब बना देते हैं। ऐसे स्थानों पर कृषि-कर्म्म का काम इसी एकत्रित जल से चलता है। इन्हें कहीं कहीं सागर या बाँध कहते हैं।

संयुक्त प्रांत में बहुत पुराने पहाड़ी सागर प्राचीन राजाओं की ओर से बनवाए हुए कहीं कहीं देखे जाते हैं। ऐसे बड़े जलाशयों से छोटी छोटी नहरें निकालकर उनसे भूमि के कुछ भाग की सिंचाई का काम चल सकता है।

कहीं कहीं मैदान के निचास की धरतियों में बाँध डाल-कर पानी रोकने का प्रबंध किया जाता है। गाँव में मकान बनाने के लिये बस्ती के पास की भूमि से मिट्टी ली जाती है। मिट्टी उठाने की मात्रा के अनुसार छोटे छोटे गड़हे या पोख-रियाँ बन जाती हैं। सुभीते के अनुसार ये सिंचाई के काम में लाए जाते हैं। बस्ती के समीप होने के कारण वे गृहस्थी के अनेक कामों में जल की सहायता देते हैं। ऐसे छोटे छोटे जलाशय तभी तक काम के होते हैं जब तक उनका जल साफ होता है। काई पड़ जाने तथा पत्तियों के गिरने, सन या पटुआ सड़ाने, पशुओं के नहलाने, गाँव के बहाव का पानी आने देने से तथा अन्य कारणों से उनका जल बिगड़ जाता है। ऐसा जल पशुओं को देना उनमें कुसमय रोग उत्पन्न कर देना है। ऐसी पोखरियों में नहाना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना स्वास्थ्य खराब कर देना है।

१०—नहरें

भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में नहरों की बड़ी आवश्य-कता है। हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने भी इस ओर ध्यान दिया है जिससे सैकड़ों एकड़ जमीन की सिंचाई होती है। नहरों का प्रबंध सुशासित नहर विभाग के अधीन है। नहरों से पानी लेने के लिये सरकारी दर बना दी गई है। जो पानी डाल का होता है (अथवा जो पानी उठाया

जाता है) उसके लिये दर कम है। तोड़ अथवा बहाव की दर कुछ अधिक होती है। कृषक जिस फसल के लिये जितने विस्तार के लिये पानी लेता है नहर विभाग के कर्म्मचारी उससे नियत दर के अनुसार उतना ही लेते हैं। कभी कभी नहरें समय पर पानी नहीं देतीं। इसलिये कुएँ का सिंचाई से खेती की पैदावार अधिक होती है क्योंकि पानी सदा समय पर मिलता रहता है।

तेरहवाँ परिच्छेद

पानी उठाने की रीतियाँ

यदि धरती जिसकी सिंचाई करनी होती है पानी के तल से निचाई पर होती है तो पानी बहाव से ले जाते हैं। इस रीति के अनुसार सिंचाई करने को तोड़ कहते हैं। परंतु यदि पानी की सतह निचाई पर है, पानी उठाने की आवश्यकता पड़ती है तो इस रीति को डाल कहते हैं। पानी उठाने में सुगमता तथा कठिनाई उसकी गहराई के अधीन है। यदि पानी अधिक गहराई पर है तो पानी उठाने में अधिक समय, परिश्रम और व्यय की आवश्यकता होती है। कम गहराई से परिश्रम के अधीन जल्दी और अधिक पानी उठाया जा सकता है।

१—दौरी, ओरचा तथा बेड़ी से पानी उठाना

कम गहराई से पानी उठाने की सबसे प्रचलित रीति दौरी से पानी उठाना है। इसे किसी स्थान पर ओरचा तथा बेड़ी भी कहते हैं।

इसमें प्रारंभिक व्यय केवल नाम मात्र का है। दौरी या ओरचा गोल तथा नौकाकार बनाया जाता है। यह अधिक-तर बाँस का बनाया जाता है जिसकी बिनाई दोहरी होती है। यह बेंत या खजूर का भी बनाया जा सकता है। इसमें

दौरी से पानी उठाना ।

दोनों तरफ दो दो डोरियाँ लगी रहती हैं। डोरियों के सहारे दोनों ओर एक एक आदमी पकड़कर उसे झुलाते हैं और पानी उठाकर बोदर में डालते हैं जहाँ से नाली द्वारा वह खेतों में पहुँचता है।

इसमें परिश्रम पड़ता है, परंतु चार आदमी बारी बारी करके दिन भर काम करते हैं। सुबह तड़के से काम आरंभ होता है, यदि आदमियों की कमी है तो आदमियों की बदली इस प्रकार से होती है कि कोई आदमी बैठता नहीं परंतु मेंड़ काटने के सहज काम पर चला जाता है। जब एक क्यारी भर जाती है वह उसकी मेंड़ बंद करके दूसरी क्यारी की मेंड़ काट देता है।

दौरी से चार फुट की उँचाई तक बहुत अच्छी तरह काम चलता है। यदि आठ फुट पानी उठाना है तो दो बेड़ी चार चार फुट पर सीढ़ी की तरह लगाकर काम करते हैं। कहीं एक ही स्थान पर दो बेड़ी लगाकर अधिक पानी उठाने की चेष्टा की जाती है। पानी उठाते समय इसमें से पानी बहुत गिरता है इससे उस पानी के उठाने का परिश्रम व्यर्थ जाता है, परिश्रम अधिक और काम कम होता है। यदि पूरे मजदूर न मिलें तो काम नहीं चल सकता। इसमें लाभ यह है कि बेड़ी का दाम बहुत कम होता है। टूटने से जल्दी और सब जगह बनाई जा सकती है, हलकी होती है और इसके चलाने में सुगमता होती है।

नहरों की गहराई लगभग ८ या ९ फुट से अधिक नहीं होती, झील, ताल, पोखरों में भी प्रायः यही गहराई रहती है। ऐसी अवस्था में पानी के बोदर छज्जों की तरह बनाए जाते हैं और एक से दूसरे में पानी उठाया जाता है। इस प्रकार दो, तीन, चार, पाँच ओर से बराबर काम करते हैं।

एक अनाथ स्त्री को उसका सहायक दौरी चलाने के लिये नहीं मिला। उसने एक ओर बाँस गाड़कर उसमें दौरी का सिरा बाँधा था, दूसरी ओर स्वयं रस्सी पकड़कर वह दौरी चलाती थी। तीन चार दिन में उसने अपने खेत सींच लिए।

२—चेन-पंप (जंजीर-माला पंप)

इसकी बनावट साधारण और सर्वजनों की समझ में आ सकती है। एक लकड़ी के ढाँचे पर खोते-दार पहिया धूरी के सहारे रखा जाता है। पहिए पर लोहे की जंजीर पड़ी होती है। जंजीर में नियत दूरी पर, जितनी दूर पर पहिए में खोते बने रहते हैं, गट्टे लगे रहते हैं। जंजीर माला के सदृश अनादि होती और पंप के नीचे एक लोहे के पाइप में से होकर पहिए पर पड़ती है। इस प्रकार पहिए के ऊपर और पाइप के भीतर से होकर जंजीर गुजरती है। जंजीर की बनावट ऐसी होती है कि बड़ी सुगमता से निकाली जा सकती है। गट्टे पाइप के भीतर से होकर आते जाते हैं। ये ही गट्टे, ज्यों ज्यों वे पाइप के भीतर से ऊपर चढ़ते हैं, पानी ऊपर खींच ले जाते हैं जैसे कि पिचकारी में पानी ऊपर चढ़ता

चैन पंप से पानी उठा रहे हैं
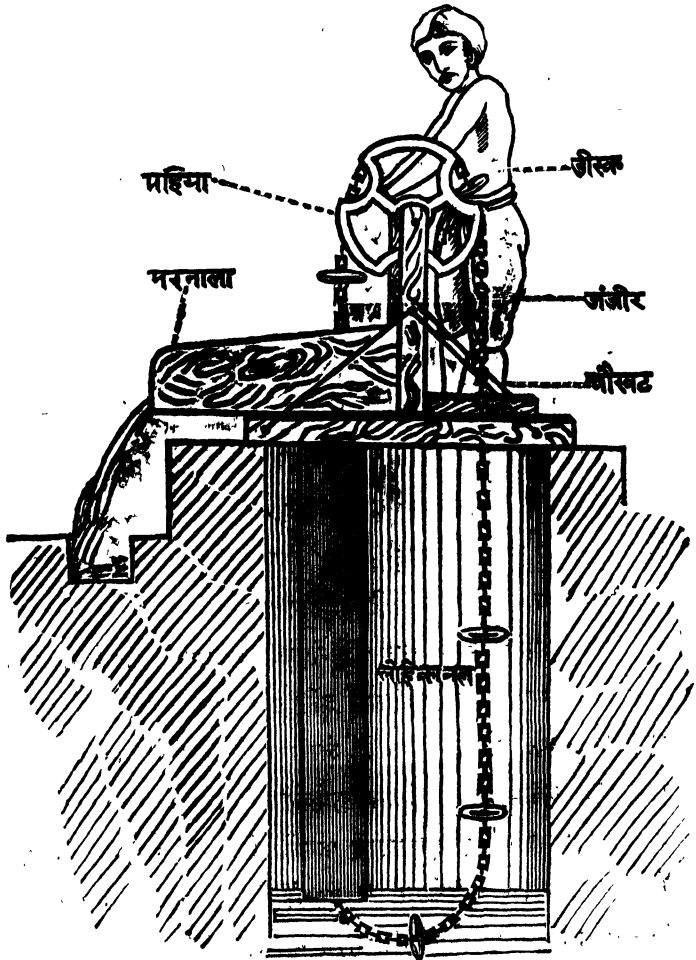
है। इस प्रकार पाइप में पानी ऊपर चढ़ता है। यह पानी पाइप के ऊपरी सिरे पर लगे हुए परनाले द्वारा लगातार बहता रहता है। जब एक गट्टा ऊपर चढ़ता है, दूसरा गट्टा पाइप तक पहुँच जाता है और अपना कार्य आरंभ कर देता है, जिससे परिश्रम व्यर्थ नहीं जाने पाता। इस पंप के चलाने में कोई विशेष निपुणता तथा शिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती। स्त्रियाँ तथा आदमी बड़ी आसानी से इसे चला सकते हैं। पहिए की धूरी से दस्ते लगे होते हैं। दोनों तरफ दो आदमी खड़े होकर बराबर पहिया घुमाते जाते हैं और पानी चढ़ने लगता है। जहाँ अधिक पानी उठाना है और पानी प्राप्त हो सकता है वहाँ एक या दो पंप बैलों से चलाने का प्रबंध हो सकता है। जमींदारों को आवश्यकता के अनुसार इससे विशेष लाभ पहुँच सकता है। पर दाम अधिक होने के कारण गरीब काश्तकार इसे नहीं रख सकते।

चार फुट से बीस फुट की गहराई से पानी उठाने के लिए चेन-पंप लाभकारी है। इसमें त्रुटि इस बात की है कि इसका दाम ५०) रु० के लगभग है जो साधारण किसान के लिये एक बड़ी रकम है। जिन कृषकों की काश्त अधिक है और वे आलू, ऊख सदृश मूल्यवान् फसलें बोते हैं उनको चेन-पंप से अत्यंत लाभ पहुँचेगा। इसमें कोई नाजुक पुर्जा नहीं है जिसके टूटने और काम बंद होने का भय हो।

चेन-पंप बावड़ी, कम गहरे कुओं और नहरों तथा सुगमता के

अनुसार पोखरों से भी पानी उठाने के काम में आ सकता है। १५ फुट से अधिक गहराई के लिये चेन-पंप काम नहीं दे सकता। पाइप की लंबाई के अनुसार इसका मूल्य होता है।

३—ढेंकुली से पानी उठाने की रीति

लगभग दस फुट की गहराई से पानी उठाने के लिये ढेंकुली का प्रयोग किया जाता है। एक थूनी पर एक बल्ली एक धूरी के सहारे इस तरह रख देते हैं कि एक ओर बल्ली का अधिक भाग हो और दूसरी ओर कम। एक ओर मिट्टी तथा पत्थर का बोझा दे देते हैं, दूसरी ओर जिधर बल्ली की लंबाई अधिक होती है रस्सी लगाकर एक बर्तन लगा देते हैं। रस्सी के सहारे एक आदमी बर्तन पानी में ढोलता है और दूसरी ओर के बोझ के सहारे से अति अल्प परिश्रम द्वारा पानी उठा कर बोदर में डालता है जहाँ से वह बहकर खेतों तक जाता है। बोदर उस स्थान को कहते हैं जहाँ पानी गिराया जाता है। थूनी गाड़ने में तथा धूरी लगाने में यह विचार किया जाता है कि रस्सी और बर्तन पानी के सामने पड़ें। कभी कभी एक एक कुएँ पर दो ढेंकुली लगाकर काम लिया जाता है। ऐसे स्थानों में कुओं में जल कम होता है।

पोखर, छिछले कुओं, नहरों और बहखानों से जहाँ अधिक पानी उठाने की आवश्यकता नहीं है अथवा मजदूर कम मिलते हैं अथवा समय का विचार नहीं है, ढेंकुली काम में लाई जाती है।

ढेंकुली
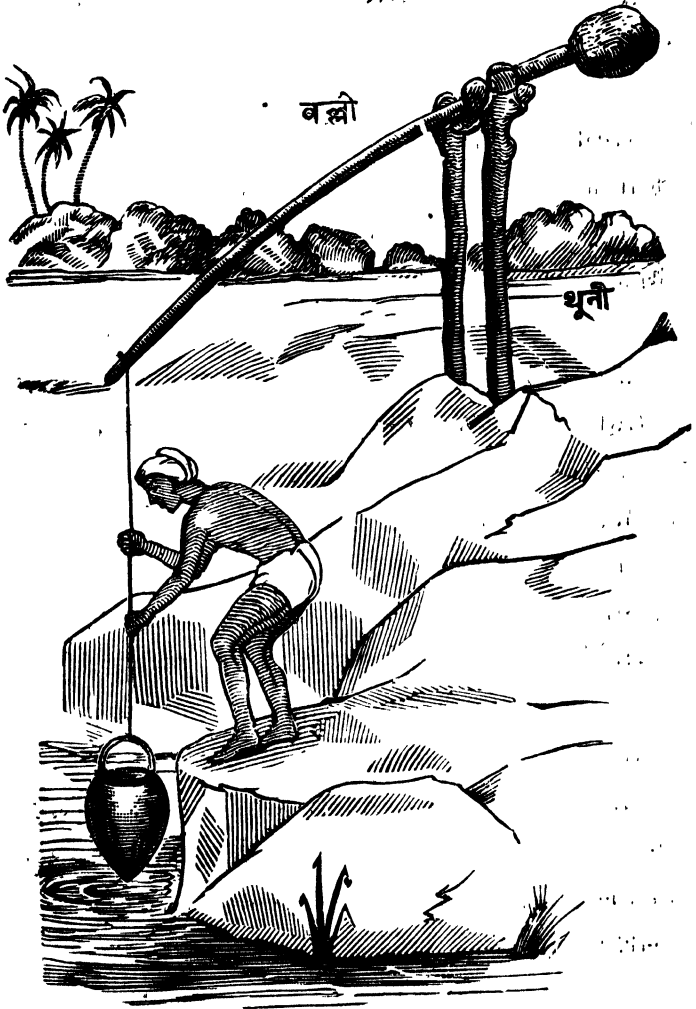
प्रायः गोल पेंदे का मिट्टी का कमोरा अथवा लोहे का डोल जिसका पेंदा नोकीला त्रिभुजाकार होता है काम में लाया जाता है। इसके उलटने में सुगमता होती है।

चरखी।
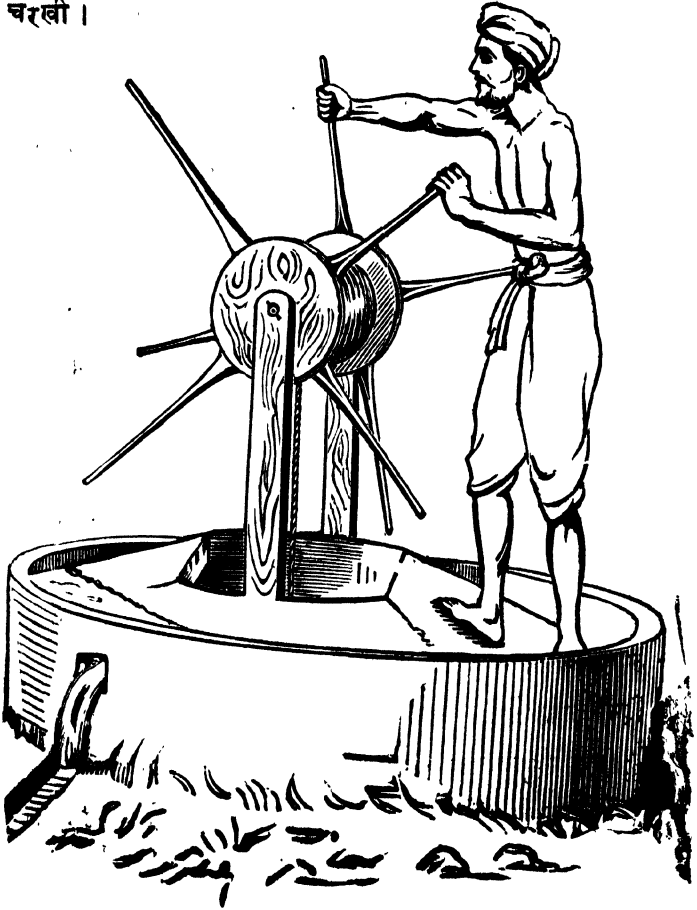
४—चरखी

कम पानी उठाने के निमित्त चरखी का प्रयोग किया जाता है। जहाँ बार बार और कम पानी की आवश्यकता होती है, जैसे बागों में और कछियाना की फसलों के लिये, वहाँ इसका प्रयोग किया जाता है। जलाशय के ऊपर दो थूनी के सहारे एक धूरी पर एक चर्खी लगी होती है जिस पर "हाथा" लगा होता है। चर्खी पर रस्सी लपटी रहती है और रस्सी के दोनों सिरों पर बर्तन लगे होते हैं। हाथा पकड़कर घुमाने से रस्सी एक ओर खुलती है और दूसरी ओर लपटती जाती है जिससे बर्तन कुएँ में उतरते और उठते हैं। बर्तन के स्थान पर कहीं डोल, मिट्टी का कमोरा अथवा टीन के कनस्तर का प्रयोग किया जाता है।

५—दोन से पानी उठाने की रीति

कम गहराई से पानी उठाने में दोन का प्रयोग किया जाता है। दोन प्रायः पेड़ की पेड़ी खोखली करके बनाते हैं। कहीं कहीं लोहे के दोन का भी प्रयोग होता है। लोहे के दोन का दाम बहुत होता है, वे चलते भी बहुत दिनों तक हैं। दोन एक थूनी के सहारे लगा दिया जाता है, एक मनुष्य उसे अपने पैर के सहारे से नीचे दबाकर पानी तक कर देता है। जब उसमें पानी भर जाता है उसे थूनी की बल्ली के सहारे से हाथों से उठाते हैं। पानी बोदर में उड़ेलकर फिर दोन पानी में गिरा दिया जाता है।
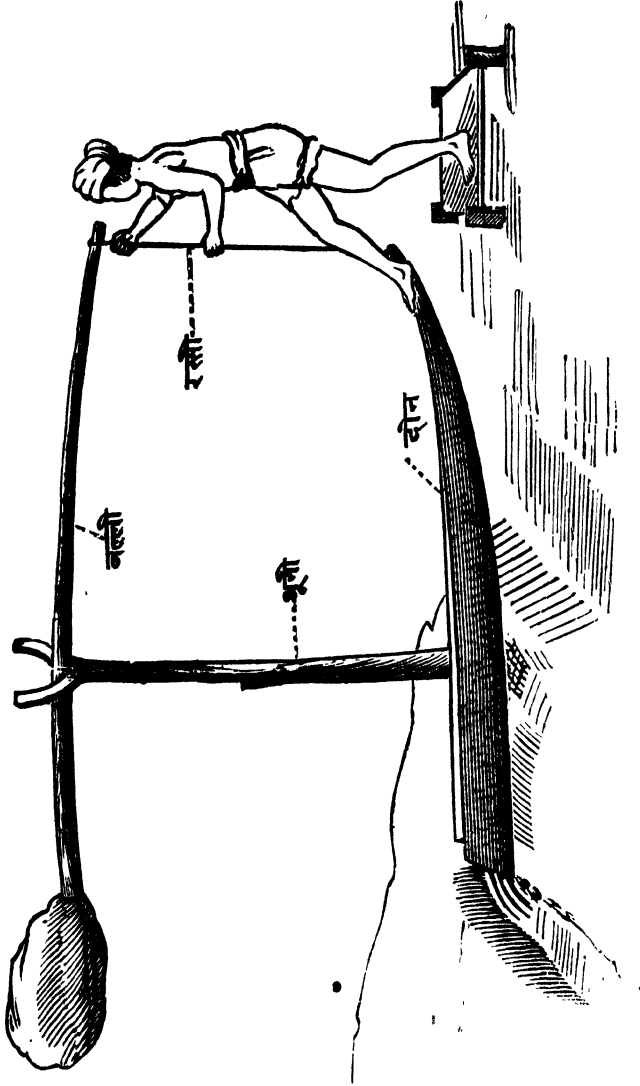
दोन

लोहे के दोन में भीतर की ओर एक पंखा (Valve) लगा होता है जो पानी के बल से स्वयं खुल जाता है और फिर पानी के भीतर भर जाने से पानी के दबाव से पानी स्वयं बंद हो जाता है। पंखे से दोन में पानी भरने में सुगमता होती है कि उसे अधिक नीचे दबाने की आवश्यकता नहीं होती। यह पंखा कोई चतुर बढ़ई काठ के दोन में भी लगा सकता है।

६—बलदेव बाल्टी

दो दोन जिनमें भीतर पंखे लगे रहते हैं एक लकड़ी के ढाँचे में कब्जे से जड़े होते हैं। ढाँचे के ऊपर एक धूरी लगी होती है जिसमें दो गड़ारियाँ, जिन पर दोनों दोन पारी पारी रस्सी के सहारे उठते हैं, लगी होती हैं। ढाँचे के सामने कुछ दूर पर दो खंभे लगे रहते हैं, जिन पर दोनों गड़ारियों की रस्सियाँ इस प्रबंध से छोटी गड़ारी के सहारे लगाई जाती हैं कि एक ही बैल के चलने से दोनों दोन काम करते हैं; एक उठता है और दूसरा पानी तक उतरकर स्वयं भर जाता है। पानी उठाने के इस प्रबंध में केवल बैल हाँकनेवाले एक आदमी या लड़के की आवश्यकता होती है। बाल्टी भरने या खाली करने के लिये उसके पास किसी के रहने की आवश्यकता नहीं होती। बाल्टी स्वयं अपने बोझ से नीचे उतरती है और उसके भीतर लगा हुआ पंखा उपर्युक्त रीति से पानी के भार से खुलता, जल भरता और बंद हो जाता है जिससे पानी गिरने नहीं पाता। जब एक बाल्टी नीचे उतरती है

नल्देव बाल्टी
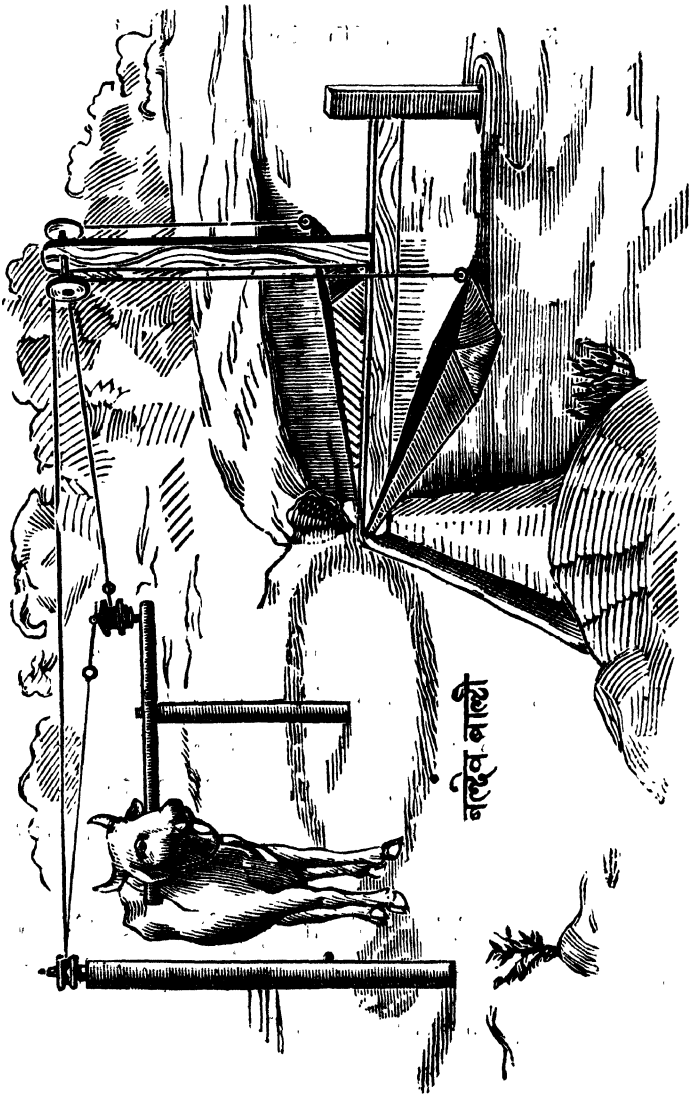
तब दूसरी ऊपर चढ़ती है, जब एक खाली होती है तब दूसरी भरती है।

दोन की लंबाई के अनुसार पाँच छः फुट तक गहराई पर बाल्टी से अच्छा काम होता है।

७—नोरिया या रहट

संयुक्त प्रांत के उत्तरी और दक्षिणी भागों में स्थानीय सुगमता के अनुसार रहट का प्रयोग किया जाता है। कुएँ तथा अन्य जलाशय के मुहाने पर एक चर्खी लगी होती है जिस पर दो रस्सियों के बीच में मिट्टी के छोटे छोटे डबले बँधे होते हैं। रस्सी माला के समान चरखी पर पड़ी होती है। इसी में मिट्टी के बर्तन थोड़ी थोड़ी दूर पर बँधे होते हैं। यह चर्खी लंबी धूरी के एक पहिए से इस प्रकार संबंध रखती है कि इसके घूमने से चर्खी लगातार घूमती रहती है। चर्खी के घूमने से उस पर मालाकार रस्सी में बँधे हुए डबले नीचे से ऊपर आते हैं। नीचे के डबले (जलपात्र) जल भरे हुए आते हैं और जब ऊपर चर्खी पर पहुँचते हैं स्वयं उलटकर जल त्याग कर देते हैं। यह जल एक परनाले द्वारा जो चर्खी के नीचे लगा रहता है नाली में गिरता है और वहाँ से आगे खेतों में जाता है।

पहिया जिसका संबंध चर्खी की धूरी से रहता है एक जोड़ी बैल द्वारा चलाया जाता है। उसको घुमाने से धूरी घूमती है और धूरी के घूमने से चर्खी घूमती है।

रहट से पानी चढ़ाया जा रहा है
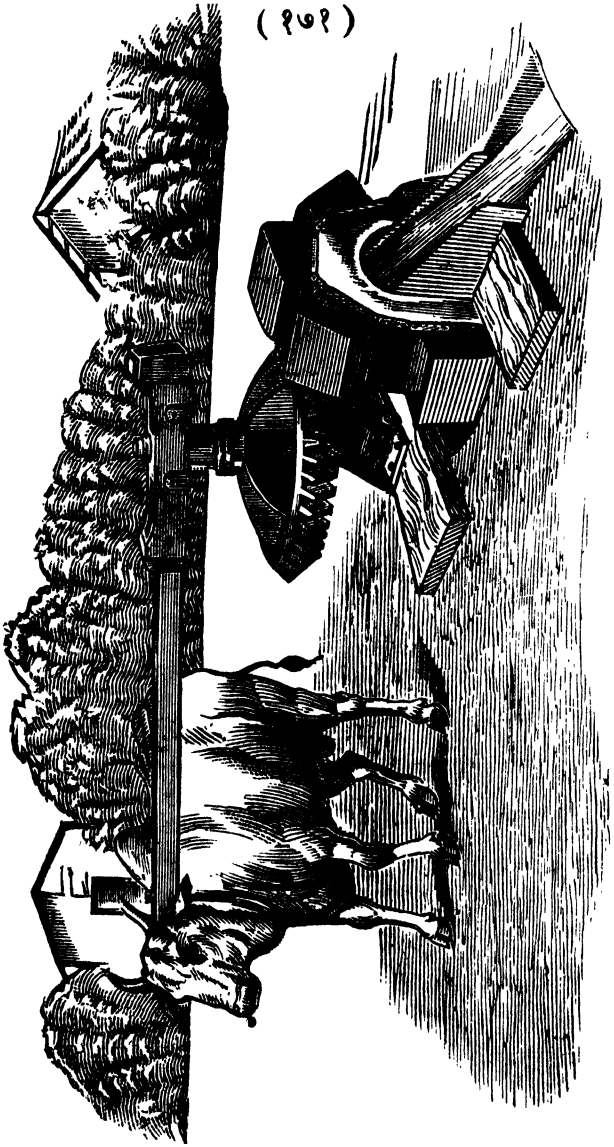
उपर्युक्त बनावट के बजाय लोहे के नोरिए बनाए जाते हैं जिनमें अच्छे सुडौल अंश लगाए जाते हैं। ये अधिक काल तक अच्छा काम देते हैं, परंतु मूल्य अधिक होने के कारण साधारण कृषक की हैसियत के बाहर हैं।

८—पुरवट, पुर या चरस

पुरवट गहराई से पानी उठाने की सबसे सुगम और कृषक की व्यवस्था के अनुकूल समझी जाती है। १८ फुट से अधिक गहराई के लिये यह अत्यंत लाभदायक और सुगम रीति है।

इस रीति में कुएँ के मुँह पर एक गड़ारी रखी जाती है, जिस पर होकर रस्सी, जो नार कहलाती है, काम करती है। बैल पौदरी अथवा ढालू ज़मीन पर चलते हैं। पुर प्राय: मोटे चमड़े का होता है जो लकड़ी अथवा लोहे के गोल घेरे में लगाया रहता है। इस घेरे के ऊपर रस्सी लगाने के लिये लोहे या लकड़ी का दस्ता लगा होता है। नार का दूसरा सिरा प्रथा के अनुसार बैल के जुए में लगाया जाता है।

चरसा चलाने की दो रीतियाँ हैं। एक को नागौर और दूसरी को कीली कहते हैं। नागौर रीति में एक जोड़ी बैल लगते हैं और कीली में दो जोड़ी बैल लगते हैं। कीली में लगभग दुगना काम होता है, परंतु चरसा बड़ा होना चाहिए। पूर्वी जिलों में नागौर रीति का अनुसरण होता है जिसका कारण यह विदित होता है कि इस ओर बैल कमजोर होते हैं और बहुत बड़ा पुरवट नहीं खींच सकते। नागौर रीति में
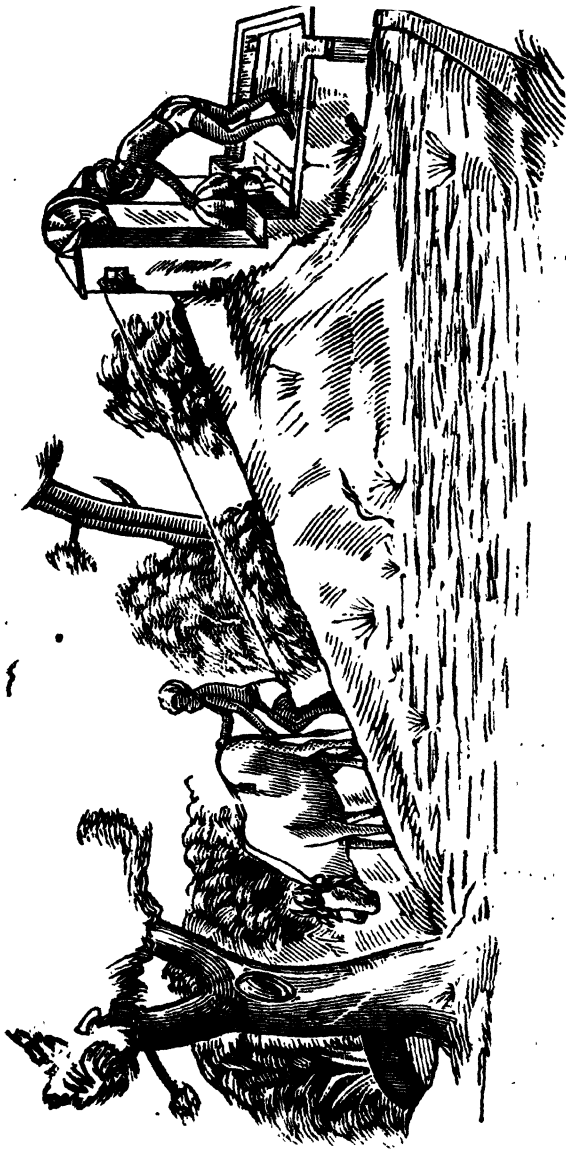
पुरवट

नार जुए में बँधी रहती है। जब पुरवट खाली हो जाता है। बैल फिर कुएँ के पास आ जाते हैं। जब पुर भर जाता है तो फिर बैल उसे खींच ले जाते हैं। इस रीति में जब पुर खाली करके कुएँ में छोड़ा जाता है उस समय बैलों को झटका लगता है। बैलों को हाँकनेवाला नार अपने हाथ में पकड़कर इस झटके को निवारण करता है और नार पकड़े हुए कुएँ तक वापस आता है। जब पुर पानी तक पहुँच जाता है वह उसे दो तीन झटके देकर भरता है। जब पुर भर जाता है तो बैलों को फेरता है।

कीली की रीति में दो जोड़ी बैलों का काम पड़ता है। जुए में रस्सी का एक फंदा होता है। इसी फंदे में नार का फंदा एक या डेढ़ बित्ता लंबी खूँटी या कीली की सहायता से जोड़ दिया जाता है। बैल उसे खींच ले चलते हैं। जब पुर खाली हो जाता है, नार अलग कर दी जाती है और दूसरी जोड़ी बैल के जुए में जो उस समय तक कुएँ के मुँह तक पहुँच जाती है लगा दी जाती है और बैल उसे खींच के चलते हैं। पारी पारी इस रीति में बैल की एक जोड़ी नीचे आती और दूसरी ऊपर जाती है।

दो जोड़ी बैल एक आदमी हाँकता है। एक आदमी मोट या चरस खाली करता है, जिसको मोट छीनना कहते हैं।

इस रीति में समय की बहुत बचत होती है क्योंकि जब तक एक जोड़ी बैल पुर को खींच ले जाते हैं दूसरे कुएँ के

मुँह तक पहुँच जाते हैं। कुएँ के पास चरनी बना दी जाती है जिसमें से हर बार जब बैल कुएँ के ऊपर आते हैं कुछ खा लेते हैं। ऊपर कुछ खाना रखे रहने से उनको ऊपर चढ़ने में आसरा लगा रहता है जिससे वे शीघ्र ऊपर चढ़ते हैं।

पूर्वी जिलों में जहाँ कुओं की गहराई कम होती है बैलों के स्थान में छः आदमी पुरवट खींचते हैं। इस रीति को घर्रा कहते हैं। पश्चिमी जिलों में इसे घिर्री या मेंड़री कहते हैं।

एक पुर में प्रायः ६० सेर से लेकर, जैसा छोटा बड़ा मोट हो, चार सौ सेर तक पानी आता है।

९—चरख

चरख पुरवट से पानी उठाने की रीति का एक रूपांतर है। इस रीति में बजाय इसके कि बैल पौदरी पर हाँके जायँ एक चरख को घुमाते हैं। चरख ढोल की शकल का एक बड़ा मेंड़रा होता है जो धूरी के सहारे एक ढाँचे में लगाया जाता है। यह ढाँचा कुएँ से लगभग १५ फुट की दूरी पर कुएँ के सामने बनाया जाता है। यदि कुआँ बड़ा हुआ तो कुएँ के चारों ओर या दो ओर आवश्यकता के अनुसार या इससे अधिक चरख लगाने का प्रबंध किया जाता है।

ढाँचा इस प्रकार बनाते हैं। ईंटे और चूने के दो खंभे बनाकर उन पर एक धरन रख देते हैं। इसके बीच में चरख लगाया जाता है। कभी कभी एक ही लकड़ी में चरख पहना

चरख
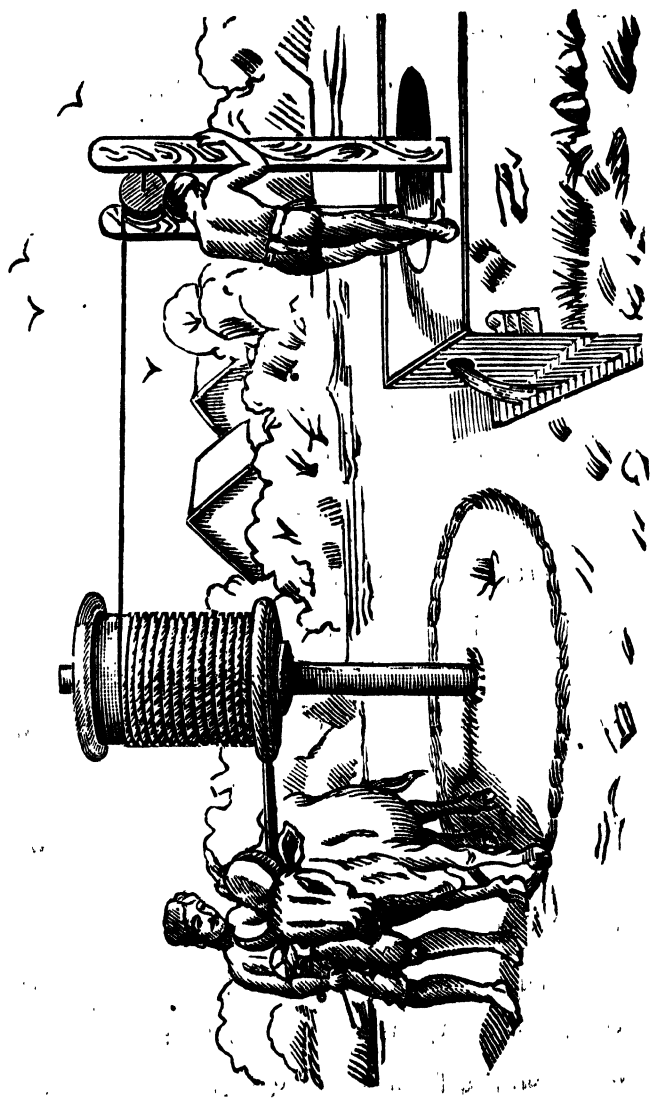
दिया जाता है। बजाय ईंट के खंभे के लोहे के खंभे भी लगाए जाते हैं। और बजाय धरन के लोहे की रेल का भी प्रयोग किया जाता है।

चरख में नार लिपटती है। इसके चलाने के लिये इसमें एक या दो बैलों के जोतने के लिये जुआ लगा होता है। एक अलग लकड़ी बीच में एक पेंच द्वारा लगा देने से जुवा इस तरह का बन जाता है कि वह चारों तरफ घूम सकता है। इससे यह लाभ होता है कि कुल चरख को घुमाने के बजाय केवल बैल को या जुए को घुमाकर जिस ओर चाहें उधर चरख चला सकते हैं।

चरख में नार के सहारे बड़ा या छोटा चरसा लगाते हैं। सिर्फ एक मोट लगाया जाता है, या एक ही चरख पर दो मोट लगाए जा सकते हैं। दो मोट दो गड़ारियों पर दो नार के सहारे से चलाए जाते हैं। दोनों नार एक ही चरख पर लपटतो हैं। जब चरख घुमाया जाता है तो एक मोट ऊपर आता है और दूसरा नीचे जाता है। जिस प्रकार का मोट होता है उसी के अनुसार एक या दो आदमी या औरतें पानी छीनते या चरसा लेते हैं। एक आदमी चरख में जोते हुए बैल को हाँकता है।

कहीं कहीं चरसे में नीचे की ओर एक चोंगा (सूँड़) लगा देते हैं जिसके द्वारा मोंट उलटने की जगह चोंगा खींच लेने से पानी कुएँ की जगत पर गिर पड़ता है। इस चोंगे में

एक पतली रस्सी लगा देने से और दो लंबी गड़ारी पर से उसे चरख में लगा देने से जब मोट ऊपर चढ़ता है पतली रस्सी चांगे को कुएँ की जगत पर खींच लेती है जिससे पानी जगत पर गिर जाता है। इस प्रबंध से छीननेवाले की आवश्यकता जाती रहती है। शहरों में जहाँ बाग होते हैं और मजदूरी महँगी होती है इस प्रबंध से छीननेवालों की बचत होती है और पौदर नहीं बनाना पड़ता।

१०—पानी उठाने की अन्य रीतियाँ

पानी उठाने की मुख्य और लाभदायक रीतियों का वर्णन ऊपर किया गया है। स्थानीय अथवा व्यक्तिगत सुगमता के अनुसार कुछ और रीतियाँ हैं जिनका प्रयोग जल उठाने के लिये कहीं कहीं किया जाता है। स्टोनी साहब की बाल्टी (Stoney's Water lift), सुलतान साहब की बाल्टी (Sultan's Water lift), आर्कीमीडीयन स्क्रू (Archimedian Screw), हवा में चलनेवाली पानी उठाने की रीति, बैल तथा आदमी के भार से पानी उठाने की रीतियाँ, नाना प्रकार के छोटे छोटे सक्शन के सिद्धांत पर बने हुए पंप इत्यादि कई कलें उदाहरणार्थ बन चुकी हैं और कितनों का विज्ञापन देखने में आता है। इनसे पानी उठाने में विशेष फायदा नहीं देखा जाता। इनके दाम भी कम नहीं। इस कारण हम लेख को नहीं बढ़ाना चाहते।

पानी उठाने की एक लाभदायक रीति एंजिन द्वारा पानी उठाने की है। इससे पानी उठाने का परता बहुत कम पड़ता है। पर आरंभिक खर्च इतना अधिक है कि साधारण कृषकों के विचार से परे है।

जहाँ बड़े बड़े तालाब अथवा झील, कुएँ तथा अन्य जलाशय हैं वहाँ आयल या पेटरोल एंजिन अथवा सेंट्रीफ्यूगल पंप के प्रयोग से लाभ पहुँच सकता है। जिन कुओं में पानी कम है उनको थोड़ी देर में एंजिन सुखा देगा।

एंजिन से अनेक लाभ होते हैं। उससे दाना माड़ा जाता है, चारा काटा जाता है, पानी उठाया जाता है अथवा और जिस काम में उसकी शक्ति लगाई जाय उससे काम निकल सकता है। एक समुदाय कृषकों का अथवा जमीनदार इसमें चित्त देकर आयल एंजिन का प्रबंध कृषि-कर्म्मों के लिये कर सकता है। इसके प्रबंध के लिये एक मेकानिकल एंजीनिअर की आवश्यकता होती है, जो इसके बिगड़ने पर मरम्मत करे और इसको सुधारे। यह काम एक समुदाय के मिलकर करने का है। भारतवर्ष में आटा पीसने की चक्कियों में, पुतली घरों में, सोडावाटर बनाने की कल में आयल एंजिन का प्रयोग कामयाबी से हो रहा है। यदि धन के अभाव का प्रश्न हल हो जाय तो कृषि-कर्म्मों में इनके प्रयोग से सुप्रबंध के अधीन लाभ की आशा की जा सकती है।

११—पानी उठाने की रीतियों की सारिणी

रीति	गहराई फुट	क्षेत्रफल एक दिन=८ घंटा		कैफियत
पुरवट				
(क) नागौर की रीति	० से ४०	१/८ से १/२	एकड़ तक	एक जोड़ी बैल
(ख) कीली की रीति	,,	१/४ से ३/२	,,	दो जोड़ी बैल
घर्रा	,,	१/८ से १/४	,,	६ से ८ आदमी
चरस	,,	१/८ से २/२	,,	एक जोड़ी बैल
नोरिया (रहट)	१२ से ६०	१/१० से १/३	,,	,,
ढेंकुली	८ से २०	१/१० से १/६	,,	एक आदमी
चरखी	१५ से ३०	१/१० से १/८	,,	,,
बेड़ी या दौरी	३ से ६	१/३ से १/२	,,	चार आदमी दो आदमी पारी पारी से
दोन	४ से ७	१/३ से १/२	,,	,,
बलदेव बाल्टी	४ से ६	१/२ से १	,,	एक बैल

		पाइप की मोटाई	पानी गैलन	दाम रु०
चेनपंप	५ से ६	४ १/२ इंच	५०,०००	३७)
,,	६ से १०	४	,, ३०,०००	३७)
,,	१० से १५	३ १/२	,, १८,०००	४०)

एक एकड़ में एक इंञ्च पानी की सिंचाई के लिये लगभग २३,००० गैलन पानी लगता है। अच्छी सिंचाई के लिये तीन इंच पानी लगता है। ५ सेर = १ गैलन = १० पाउंड।

१२—वर्षा, कुओं और अन्य जलाशयों का जल

वर्षा का जल कृषि के लिये अत्यंत लाभकारी समझा जाता है। प्रथम यह कि यह बिना मूल्य मिल जाता है। दूसरे यह कि वर्षा के जल में पौधों के भोजन-पदार्थ अधिक रहते हैं। तीसरे यह कि उसमें पौधों की बाढ़ के मुख्य अंश आवश्यक परिमाण में परिपूरित रहते हैं। मरुत-मंडल में बहुत सा नाइट्रेट, अमोनिया और आरगैनिक पदार्थ रहता है जो वर्षा-जल में घुलकर अथवा उससे मिलकर पौधों को प्राप्त होता और उनको लाभ पहुँचाता है। आषाढ़ मास में जब प्रथम वर्षा होती है उस समय मरुत-मंडल में बहुत से पदार्थ रहते हैं। पिछले पानी के गिरने से पहले ही उनका बहुत सा अंश पहली जल-वृष्टि के साथ घुल जाता है।

कुएँ और नहरों के जल में पृथ्वी के बहुत से बारीक खनिज पदार्थ सम्मिलित रहते हैं। कुएँ के जल में प्राय: शोरे का अंश, जिसमें पोटाश और नाइट्रोजन शामिल रहता है, अधिक पाया जाता है। इस कारण से कुएँ का जल नहर के जल से श्रेष्ठ होता है।

कभी कभी कुओं, नहरों और अन्य जलाशयों से अक्सर वनस्पति को लाभ और कभी कभी हानि होते देखी जाती है। इसका कारण वनस्पति की व्यवस्था, उसको जल की आवश्यकता,

पानी देने की रीति, समय और धरती की व्यवस्था तथा पानी की विशेषता पर निर्भर है। यहाँ हम पानी की विशेषता का वर्णन करते हैं। स्वच्छ जल पौधों को हानि नहीं पहुँचा सकता। यह संभव है कि पानी में खाद्य पदार्थ न हों जिससे खाद का अभाव हो सकता है। इसकी पूर्ति खाद से हो सकती है। जल से अधिक हानि कमी के कारण नहीं किंतु आवश्यकता की अपेक्षा अधिक खाद्य पदार्थ रहने तथा हानिकारक खाद्यपदार्थ सम्मिलित रहने से हो जाया करती है। सड़ा हुआ, गंदा, काई लगा हुआ जल इस कारण से वर्जित नहीं है कि पौधों को बदबू असर करेगी वरन् इस कारण से कि उसमें हानिकारक पदार्थ घुले रहते हैं, अथवा खाद्य-पदार्थ आवश्यकता से अधिक होते हैं। अनुभव से यह देखा जाता है कि १००० भाग पानी में एक अंश ठोस पदार्थ सामान्य मात्रा, तथा पाँच अंश ठोस पदार्थ पौधे के लिये सबसे अधिक सीमा है। इस कारण विशेष जल से कभी कभी हानि होती है।

१३—खेतों को पानी देना

पानी देते समय पौधों के लिये जल की आवश्यकता पर भली भाँति विचार लेना उचित है। कुछ पौधे ऐसे होते हैं जिन्हें दूसरों की अपेक्षा अधिक पानी की आवश्यकता होती है, जैसे आलू के खेतों को जौ के खेतों की अपेक्षा अधिक पानी की जरूरत होती है। पृथिवी के अनुसार जल की आवश्यकता पर विचार कर लेना चाहिए, जैसे दुमट धरतियों को

मटियार धरती की अपेक्षा अधिक जल की आवश्यकता होती है। जलवायु, बादल का रंग विचार करके पानी देने का विचार कर लेना चाहिए।

किस समय खेतों को जल की आवश्यकता होती है यह कृषक पौधों को मुर्झाते देखकर या उनको पीला होते देखकर बतला देता है और उसी समय शस्य की सिंचाई करता है। परंतु साधारण अवस्था में जब बदली के कारण वर्षा-जल की आशा की जाती है पर पानी नहीं बरसता तो सिंचाई कर दी जाती है। ऐसा देखने में आता है कि सिंचाई के पश्चात् पानी बरस जाता है। उस समय अधिक जल से हानि होती है। ऐसे अवसर पर पानी के निकास की अत्यंत आवश्यकता होती है। इसके विपरीत कभी कभी कृषक पानी की आशा में सिंचाई नहीं करता जिससे पौधे सूखने लगते हैं। ऐसी अवस्था के लिये कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। अनुभव और विचार से काम करना चाहिए। इसके आगे जो कुछ भावीवश पड़े उसे भुगतना ही पड़ता है।

अवसर विचारकर जब कृषक अपने खेतों की सिंचाई करने का निश्चय करता है, उसको उचित है कि वह खेत भर में पानी बराबर देवे। कहीं अधिक और कहीं कम जल से खेतों को समान लाभ नहीं पहुँच सकता। अधिक जल पड़ना अथवा जल का कम या बिलकुल न पड़ना दोनों बातों का प्रभाव पड़ता है। पानी बराबर पहुँचाने के लिये कृषक खेत की जुताई के संबंध में

ध्यान देता है और खेतों को समतल बना लेता है। जब बुवाई हो जाती है तो वह जहाँ तक शीघ्र हो सकता है डाँड़, बरहा और क्यारियाँ बना देता है जिससे आवश्यकता के अनुसार पानी खेतों में भर जाता है। कुछ फसलें ऐसी हैं जो क्यारियों में बोई जाती हैं। इनके लिये जब खेत अच्छी तरह से जोतकर तैयार हो जाते हैं तब क्यारियाँ बना दी जाती हैं और उनमें शस्य बो दिए जाते हैं अथवा रोप या लगा दिए जाते हैं।

१४—क्यारियाँ बनाना

जोताई के पश्चात् बिना बोए अथवा बोए हुए खेतों में क्यारियाँ फावड़े से, फरुही से अथवा करहा से बनाई जाती हैं।

फरसा या फावड़ा—लोहे का बना होता है। स्थान के अनुसार इसकी बनावट भिन्न होती है। यह कृषि के अनेक कामों में आता है।

कृषिकार दोनों हाथों से इसकी डाँड़ो को पकड़ता है और पैरों के बीच में एक सीधी लकीर के दोनों ओर से मिट्टी लेकर मेंड़ बनाता हुआ आगे बढ़ता है। जितनी मोटी अथवा जितनी ऊँची मेंड़ बनानी होती है कृषक उसी के अनुसार मिट्टी उठाकर डालता जाता है।

फरुही—एक अर्ध-गोलाकार लकड़ी में एक लंबा बाँस अथवा लकड़ी का दस्ता लगाकर फरुही बनाते हैं। प्रायः कृषक घोड़े की लीद अथवा बैलों का गोबर हटाने के लिये एक फरुही रखते हैं।

मेंड़ अथवा डाँड़ ठोस और सीधी होनी चाहिए जिससे पानी एक मेंड़ को तोड़कर दूसरी क्यारी में न जाने पावे ।
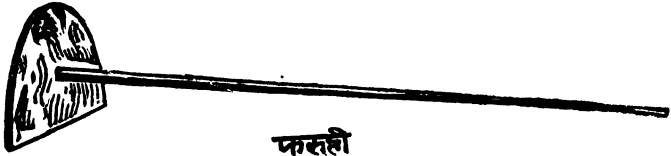
फरुही

क्यारी फूटने से पानी बह जाता है और पानी देनेवाले के पैर सन जाते हैं ; जब वह उनमें होकर चलता है पैरों में जुते हुए खेतों की मिट्टी कड़ी हो जाती है और बीज अथवा बोए हुए खेतों को हानि पहुँचती है।

करहा—लकड़ी के अर्धगोल टुकड़े के बीच में खड़ा एक लंबा बाँस अथवा लकड़ी का दस्ता होता है। करहा में दो छेद होते हैं जिसके भीतर से लकड़ी के दस्ते के ऊपर होकर रस्सी लगी होती है।

इसे दो आदमी चलाते हैं। एक आदमी करहा पकड़कर सीधे तनकर खड़ा होता है और दूसरा आदमी रस्सी पकड़कर आगे खींचता है। पहला आदमी करहा सावधानी से भूमि में लगाए रहता है और दूसरा रस्सी खींचता है। ऐसा करने से निश्चित मेंड़ की लकीर पर मिट्टी चढ़ जाती है। मिट्टी चढ़ाने में विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता और न दोनों आदमियों में से किसी को अधिक झुकने की आवश्यकता पड़ती है। केवल सहारे से काम होता है। कुछ समय के बाद करहे का आदमी रस्सी ले लेता है और रस्सीवाला करहा पकड़ लेता है। अधिक पानी देने के लिये मेंड़ ऊँची तथा कम पानी के वास्ते छिछली बनाई जाती है।

कोने के रूप का लकड़ी का एक बक्स बनाकर धरती पर निश्चित लकीर पर खींचने से संदूक के नीचे कुछ मिट्टी एकत्रित हो जाती है। पतली मेंड़ बनाने में कोई कोई इसका प्रयोग कर सकते हैं।

बरहा और क्यारी इन रीतियों से बनानी चाहिएँ।
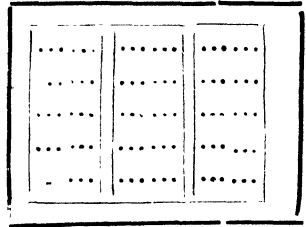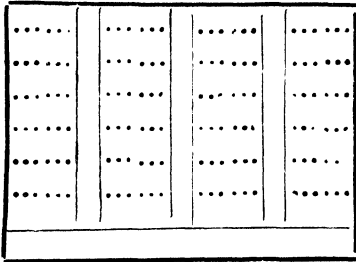
इनमें सिंचाई करने का क्रम नीचे दिए हुए नंबरों के अनुसार होना चाहिए।

क्यारियाँ मेंड़ के बीच की धरती अथवा कोठा को कहते हैं। क्यारी और मेंड़ अलग अलग हैं। इन्हें एक न समझना चाहिए।

मेंड़ें इस प्रकार बनानी चाहिएँ कि खेत में बीच से होकर अथवा खेत के किनारे किनारे पर बरहा हो। बरहा नाली को कहते हैं जिनमें से पानी बहता है। इसका आशय यह है कि एक बरहा से दोनों ओर पानी जाकर अपने दोनों ओर की क्यारियों को सींच सके। खेत में पहले बरहा बनाते हैं। जिनसे पाल्हा या नख अलग अलग करते हैं। पाल्हा या नख को कई छोटे टुकड़ों में विभाजित करते हैं। एक टुकड़े को क्यारी कहते हैं। पृष्ठ १८७ के चित्रों में खेतों में पाल्हा, बरहा और क्यारियाँ दिखाई गई हैं। जहाँ पानी अधिक प्राप्त होता है वहाँ क्यारियाँ बड़ी बनाई जाती हैं। साधारण पानी की आवश्यकतावाले शस्यों के लिये भी बड़ी क्यारियाँ बनाते हैं। जहाँ पानी कम प्राप्त होता है अथवा पानी ढाल का होता है अथवा खेत समतल नहीं है वहाँ क्यारियाँ छोटी बनाई जाती हैं। क्यारियाँ बनाने में इस बात का विचार होना चाहिए कि बरहा की मेंड़ें क्यारियों की मेंड़ों से मोटी और कुछ ऊँची हों जिससे पानी सरलता से सब क्यारियों में बह सके।

१५—पानी देने की रीति

पृष्ठ १८७ में चित्रों द्वारा खेतों की क्यारियाँ भरने का क्रम दिखाया गया है। बिना किसी रीति के पानी इधर उधर

बहाने से पानी और परिश्रम की हानि होती तथा खेतों को भी हानि पहुँचती है। यदि कोई हिस्सा दिन भर पानी में डूबा रहे तो वह पानी अधिक सोखेगा। अनावश्यक पानी के सोखने से कृषक के जल की हानि है। कोमल शस्य को अधिक पानी से हानि पहुँच सकती है।

जिस स्थान से पानी खेत में प्रवेश करता है उसे "घावा' अथवा 'मुहारा' कहते हैं। यह स्थान खेत से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिससे पानी सारे खेतों में बराबर पहुँच सके।

चित्र में गिनती के क्रम के अनुसार खेतों में पानी देना चाहिए। बरहा द्वारा खेतों में पानी जाता है और इन्हीं से क्यारियाँ भरी जाती हैं। जब एक क्यारी भर चुकती है तब घावा मिट्टी से बंद कर दिया जाता है और क्रम से दूसरी क्यारी भरी जाती है। तीसरे चक्र में सबसे अधिक साव-धानी की जरूरत ज्ञात होती है। प्रायः दोनों चक्रों में यदि जल दहिने ओर से प्रवेश करता है तो सिंचाई बाईं ओर से आरंभ की जाती है। इससे धरती क्रम से भीगती है और पानी देनेवाले को गीली जमीन में नहीं चलना पड़ता। यदि उसी स्थान से जहाँ से कि पानी प्रवेश करता है सिंचाई आरंभ कर दी जाय जैसा ४ नंबर के चक्र में दिखाया गया है तो बीच में पहुँचकर निकलने की कठिनाई पड़ेगी। यदि कहीं मेंड़ टूटी तो समीप स्थान पर सूखी मिट्टी भी न मिलेगी। गीली मिट्टी से मेंड़ बनाने में कठिनाई पड़ती है और वह चूने लगती है।

बरहा के टूटने से अथवा उसके चूने से पानी की हानि होती है तथा सींचे हुए खेतों में अधिक पानी पहुँच जाता है। क्रम से रीति के अनुसरण से खेतों को बराबर पानी मिल जाता है, अकारण दिक्कत और समय की बचत होती है, पानी की हानि नहीं होती और उगते हुए शस्य का नुकसान नहीं होता।

क्यारियाँ बनाने की आवश्यकता उस समय भली भाँति विदित होती है जब खेतों की सिंचाई बिना क्यारी बनाए की जाती है। तोड़ के जल में अधिक पानी प्राप्त होता है। अधिक जल देना कृषक को कठिन नहीं जान पड़ता। डाल के जल में इसके प्रतिकूल होता है जहाँ कि पानी की यथा-संभव बचत की जाती है।

यदि एक ही स्थान से पानी प्रवेश करता है तो उसके पास के खेतों के भाग दिन भर जल में निमग्न रहते हैं, पर अंतिम भाग में थोड़ी देर तक पानी चलता है। इससे अधिक जल और समय नष्ट होता है।

चोदहवाँ परिच्छेद

खाद और उसका व्यवहार

खाद का विषय कृषिकार के लिये अत्यंत उपयोगी और विचारणीय है। कृषिकार इस विषय पर विचार करके अपने खेतों की शक्ति बढ़ा सकता है, नहीं तो कम से कम उसे स्थिर रख सकता है।

खादों का व्यवहार निम्नलिखित उद्देश्य के लिये किया जाता है।

(१) पौधों को भोजन पहुँचाना अथवा उनके भोजन की कमी को पूरा करना।

(२) खेतों की उपज बढ़ाना।

१—पौधों को भोजन पहुँचाना

पौधे धरती से और वायु-मंडल से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। वायु-मंडल का कोष इतना बड़ा है कि उसमें कमी नहीं होती और न तो साधारण कृषिकार का उस ओर कोई कर्तव्य है। पौधे जो भोजन धरती से लेते हैं उसकी कमी को पूरा करना कृषिकार को अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

कुछ फसलों को विशेष भोज्य पदार्थ (पोटाश, नाइट्रोजन, फासफोरस) की अधिक आवश्यकता होती है, और उसके कम

होने के कारण अच्छी तरह नहीं बढ़तीं, जैसे तमाखू, भाँटा को पोटाश की अधिक आवश्यकता होती है।

२—खेतों की उपज बढ़ाना

पौधों को खाद से भोजन दो प्रकार से प्राप्त होता है; एक यह कि स्वयं खाद में पौधों का आवश्यक भोजन मौजूद रहता है, दूसरे यह कि खाद द्वारा धरती में ऐसी क्रियाएँ होने लगती हैं कि पृथ्वी में पड़ा हुआ भोज्य-पदार्थ पौधों के काम में आने योग्य हो जाता है। पौधों को उनकी आवश्यकतानुसार भोजन प्राप्त होने से, वे बलिष्ठ होते हैं, अच्छी तरह से फूलते फलते हैं और उनकी पैदावार अच्छी होती है।

खाद से धरती में खनिज अथवा जीवित पदार्थों की, जैसी कि खाद हो, उसके अनुसार बढ़ती होती है। इसका प्रभाव धरती की बनावट पर पड़ता है, जिससे अवस्था के अनुसार धरतियाँ खुल जाती हैं, ठस हो जाती हैं अथवा अधिक जल-वायु धारण करती हैं।

निम्नलिखित गणना में कुल खाद आ जाती है।

१—जीवित खाद Organic Manures.

२—खनिज खाद Inorganic Manures.

जीवित प्राणियों से प्राप्त खाद को जीवित खाद कहते हैं। खान से अथवा निर्जीव प्राणियों से प्राप्त खाद को खनिज खाद कहते हैं। दोनों प्रकार की खादों की यह गणना उनकी उत्पत्ति के अनुसार है। इनसे और कई प्रकार की खादें बनती हैं।

साधारण खाद वह है जिसमें प्राय: पौधों के भोजन के सब अंश मौजूद रहते हैं।

मुख्य खाद वह है जिससे धरती की कोई विशेष कमी पूरी हो अथवा किसी विशेष कार्य्य के लिये उसका प्रयोग किया जाय।

३—साधारण खाद

१—गोबर की खाद।

२—कूड़ा-करकट अथवा घूर की खाद।

३—भेंड़, बकरी की खाद।

४—घोड़े की लीद की खाद।

५—विष्टा की पाँस—१।

६—सूअर की विष्टा की पाँस—२।

७—सूअर की पाँस।

८—हरियाली की पाँस।

९—मछली की पाँस।

१०—रेंड़ी की खली की पाँस।

११—महुवा की " "।

१२—नीम की " "।

१३—अलसी, सरसों, बर्रे की खली की पाँस।

१४—हड्डी की खाद।

४—विशेष खाद

प्राय: विशेष खादों के रंगीन विज्ञापन निकाले जाते हैं। ऐसी सभी खादें न तो निकम्मी कही जा सकती हैं और न

सब अपने दाम के अनुकूल उपकार करती हैं। इसलिये इनके खरीदने में विचार से काम लेना ही अच्छा होता है।

कभी कभी बड़े बड़े कारखानेवाले और साधारण सामर्थ के पुरुष कारखानों की तलछट के मेल से, जिनमें वे और बहुत सी निकम्मी चीजें मिलाते हैं, एक पदार्थ बनाकर खाद के नाम से बेंचकर दाम खड़ा करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे विज्ञापनों से सावधान रहना उचित है।

कुछ कारखाने मर्म-वेत्ता विद्वानों की सम्मति से अपने कारखाने से बची हुई तलछट से खाद बनवाते हैं जिसका फल विशेष अवस्था में बहुत उत्तम देखने में आता है। इनके खरीदने में अधिक दाम लगता है। साधारण अवस्था में अधिक व्यय करने की आवश्यकता नहीं। साधारण खादों को उचित रीति से रखकर उनका प्रबंध करना ही अच्छा होता है। बागवानी में दो एक गमले के लिये विशेष पौधों की आवश्यकता के अनुसार किसी मूल्यवान् खाद का समय के अनुसार प्रयोग किया जा सकता है।

कुछ विशेष खादों के निम्नलिखित नाम हैं। विशेष अवसर पर इनका प्रयोग किया जा सकता है। सबसे उत्तम साधारण खादों का यथाविधि व्यवहार उत्तम है।

१—शोरा नाईटर — Nitre

२—साल्टपिटर — Chille Saltpeter.

३—अमोनियम सलफेट — Ammonium Sulphate

४—पोटैशियम सलफेट	Potassium Sulphate.
५—केनाइट	Kainite
६—मिनरल सुपरफासफेट	Mineral Superphosphate
७—जिपसम	Gypsum
८—नाइट्रोलिम	Nitrolim
९—चूना	Lime.

१०—हड्डी से बनी हुई खाद—इसमें प्राय: पचास फी सदी से अधिक खनिज पदार्थ रहते हैं।

५—गोबर की खाद

पशुओं का गोबर, मूत्र, पशुशाला का झारन बहोरन, खराब भूसा, सड़े गले पत्ते, खली इत्यादि पदार्थ गोबर की खाद में शामिल रहते हैं।

यह खाद अत्यंत साधारण है। सब जगह और सबको मिल सकती है। इसका दाम कम है और यह पौधों को हर प्रकार के लाभ पहुँचाती है। इसमें उनके भोजन के सभी अंश रहते हैं। इसकी भली भाँति रक्षा करने से पौधों के भोजन के उपयोगी अंशों की बचत हो जाती है और उससे पौधों को अधिक लाभ पहुँचता है।

गोबर का अधिक अंश गृहस्थी के अनेक कार्य्यों में लग जाता है। बचा हुआ भाग तथा गोबर की राख पौधों के लिये खाद रूप में रखी जाती है। उसको खराब रीति से रखने

से अथवा असंयम से खेतों में देने से उपयोगी अंश घुलकर नष्ट हो जाते हैं और पौधों तक केवल खाद का तलछट पहुँचता है।

गोबर को खाद के लिये बचाना चाहिए। ईंधन के लिये लकड़ी काम में लानी चाहिए और उसके लिये उपयोगी वृक्ष लगाने चाहिएँ। जहाँ कोयला प्राप्त हो सकता है वहाँ कोयले का प्रयोग किया जा सकता है।

खाद का असर निम्नलिखित कारणोंके अनुसार पड़ता है—

खाद रखने की रीति।

पशुओं की अवस्था।

पशुओं का भोजन।

नई या पुरानी खाद।

६—खाद रखने की रीति

१—खाद ढेर लगाकर मैदान में तथा मकान की ओलती के नीचे एकत्रित की जाती है। इस पर आतप, वर्षा, वात का प्रकोप होता है। खाद के घुल जानेवाले पदार्थ पानी पड़ने से घुलकर बह जाते हैं। हवा से बचाव न होने के कारण बहुत सी खाद के अंश उड़ जाते हैं। धूप के प्रकोप से खाद गरम हो जाती है।

मैदान में ढेर लगाकर खाद रखने में आसानी और सुगमता अवश्य होती है, परंतु खाद की शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाती है।

२—उपर्युक्त रीति की हानि रोकने के लिये विज्ञ कृषक खाद गड्ढे में एकत्रित करता है। उसको पानी के निकास
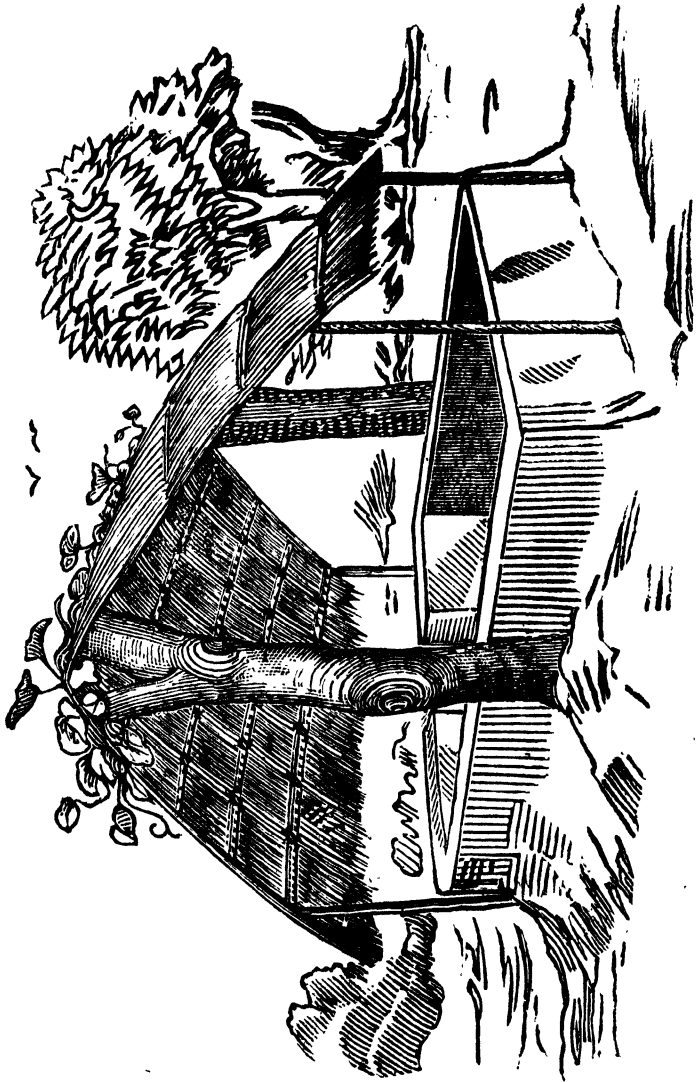
से बचाता है जिसमें गड़हे में पानी न भर जावे। वर्षा और धूप से बचाने के लिये उस पर एक छप्पर डाल देता है। गर्मी के दिनों में जब खाद सूखकर बहुत गरम हो जाती है उस पर पानी छिड़कता है जिससे रासायनिक क्रियाएँ और बैक्टीरियों (Bacteria) का काम जारी रहे।

गड़हा ऊँचे स्थान पर बनाना चाहिए। इसके चारों ओर पानी निकालने के लिये मेंड़ बनानी चाहिए और उसके भीतर की धरती और दीवारों को खूब पीटकर ठस कर देना चाहिए ताकि धरती खाद के तरल अंश सोख न जाय।

३—जब खेतों के बोने जोतने का समय आता है खाद खेतों में कूरा करके फैलाते हैं और उसको तुरंत ही जोतकर धरती में मिला देते हैं। बहुत दिनों तक खाद खेतों में पड़ी रहने से खराब हो जाती है।

७—पशुओं का भोजन

जो पशु केवल भूसा, ज्वार-बाजरे के डंठल के सदृश सूखा भोजन पाते हैं उनकी खाद उन पशुओं की अपेक्षा जो खली, भूसा, कराई, बिनौर इत्यादि बलदायक भोजन पाते हैं अच्छी और शक्तिशाली नहीं होती। अच्छा भोजन पानेवाले पशुओं से प्राप्त खाद उत्तम होती है।

८—पशुओं की अवस्था

युवावस्था में पशु के भोजन का अधिक अंश मांस, मज्जा के बनाने में लगता है। भोजन का अंश बहुत कम वृथा

जाता है। वृद्धावस्था में मांस मज्जा कम बनती है इससे पशु-भोजन का अंश केवल उनके पालन के काम में आता है। इस कारण उनके गोबर में खाद के अंश अधिक होते हैं। रक्षित पशु तथा कामकाजी और बेकार पशुओं के गोबर में भी भेद रहता है।

९—नई और पुरानी खाद

कूड़े करकट के ढेर का सब अंश जिसके द्वारा खाद बनती है, इस अवस्था में नहीं रहता कि तुरंत ही खाद के काम में आ जाय और पौधे को भोजन से तुरंत लाभ होने लगे। हवा, पानी, गर्मी, सर्दी के प्रभाव से इस प्रकार का परिवर्तन उनमें हो जाता है कि उनसे पौधों को भोजन प्राप्त होने लगता है।

प्रायः नई खाद में पौधों को लाभ देनेवाले पदार्थ बहुत कम बने रहते हैं। इस कारण नई खाद लाभदायक नहीं होती।

पुरानी खाद में पौधे का भोजन बना हुआ मौजूद रहता है। इसकी अधिक रक्षा करनी चाहिए। पाँस देने में अधिक लाभ होता है।

१०—मूत्र एकत्रित करने की रीति

रासायनिक क्रिया द्वारा विदित होता है कि गोबर की अपेक्षा मूत्र में पौधों के भोज्य पदार्थ अधिक होते हैं। इससे मूत्र अत्यंत मूल्यवान खाद है। मूत्र के भोज्य-पदार्थ जल्दी

इस अवस्था में हो जाते हैं कि उनसे पौधों को भोजन प्राप्त हो। मूत्र की खाद गोबर के साथ मिलाकर एकत्रित करनी चाहिए।

पशुशाला यदि पक्की बनी हुई है तो उसकी नाली द्वारा पशुशाला का धोवन मूत्र इत्यादि बह सकते हैं। इनको एक नाद में एकत्रित करके क्रमशः खाद के गड़हे में एकत्रित करते जाना चाहिए।

कच्ची पशुशाला में घास, पत्ती, मिट्टी अथवा बालू बिछाकर मूत्र एकत्रित करना चाहिए। जब पत्ती, मिट्टी इत्यादि में मूत्र सोख जाय तो उसे खाद के गड़हे में गोबर के साथ एकत्रित करना चाहिए। नई मिट्टी तथा बालू या पत्ती या और किसी किस्म की बिछाली गोशाले में बिछा देनी चाहिए।

जिसके पास पचीस या तीस पशु हैं उसे, बीस फुट लंबा और पंद्रह फुट चौड़ा और पाँच फुट गहरा गड़हा खोदना चाहिए।

जब गड़हा भर जाय तो उसको मिट्टी से ढाँक देना चाहिए। मिट्टी की तह एक बित्ता काफी होगी। इस रीति से रखी हुई खाद छः महीने में काम के लायक हो जायगी।*

११—पत्ती की खाद

पत्ती की खाद गोबर की खाद के समान गड़हे में एकत्रित करनी चाहिए। इसके साथ पशुओं का मूत्र मिलाकर

---

* रोगी पशुओं के मल-मूत्र कदापि खाद के काम में न लाना चाहिए। इससे पशुओं में रोग उत्पन्न होने का भय रहता है।

सड़ाना चाहिए। यह खाद लगभग छ: महीने में काम के योग्य हो जाती है। फूल पत्तियों के वास्ते तथा अन्य फसलों के लिये साधारण खाद की जगह यह काम में लाई जा सकती है।

१२—खाद देने की रीति

जब खेतों के बोने का समय आता है और उनकी जोताई आरंभ की जाती है, उसी समय खाद खेतों में देकर जोत देना चाहिए। खाद खेतों में बराबर फैल जाय इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिए। जोताई के बहुत दिनों पहले से खाद खेतों में कदापि न फैलानी चाहिए।

खाद ढोने के लिये बहँगा, टोकरी, गदहा, बैल, भैंस, गाड़ा और गाड़ी का प्रयोग सुविधा के अनुसार किया जा सकता है।

पशुओं के गोबर आदि की खाद देने की दूसरी रीति यह है कि कई महीनों तक पशु उसी खेत में बाँधे जाते हैं जिसमें कि खाद देना होता है। इस रीति के अनुसार मूत्र की खाद खेतों में सोख जाती है और गोबर की खाद की ढोवाई और उसके परिश्रम की बचत होती है। पशुओं को पूरी तौर से रक्षा करनी चाहिए। बेपरवाही के कारण पशु चोरी हो जाते हैं। गड़हे में सड़ी हुई खाद पौधों को शीघ्र लाभ पहुँचा सकती है।

१३—राख, कूड़ा-करकट और पत्ती की खाद

इसके रखने की वही रीति है जैसी कि गोबर के खाद की। सबसे अच्छा यह होता है कि ये पदार्थ गोबर के खाद के गड़हे

में मिला दिये जायँ। मिलुवाँ खाद घूर की खाद के समान होती है और सब फसलों के लिये उपयोगी होती है।

केवल सूखी राख खाद के काम में लाई जाती है। राख में पोटाश का अंश अधिक होता है। इससे बढ़ती हुई दाल की फसलों को विशेष लाभ पहुँचता है। राख के छिड़कने से पौधों पर लगे हुए कीड़े फतिंगे मर जाते हैं अथवा बढ़ने नहीं पाते। तरकारी आदि के पौधों पर अकसर राख छिड़की जाती है।

१४—भेंड़, बकरी की लेंड़ी की खाद

गाय बैल के गोबर की खाद की अपेक्षा भेंड़ बकरियों की लेंड़ी की खाद के टुकड़े महीन होते हैं और इनमें पानी का अंश कम होता है। भेंड़ बकरियों की लेंड़ी की खाद जहाँ उनके बाड़े होते हैं एकत्रित करके गोबर की खाद के समान रखी जाती है।

यह खाद देने की सुगम और प्रचलित रीति यह है कि दो तीन सौ भेंड़ों के झुंड को अपने खेत में बैठाते हैं। कृषक चरवाहे को जिनकी कि भेंड़ें होती हैं इसके लिये कुछ दाम देता है। चरवाहे का काम यह होता है कि वह रात दिन भेंड़ों को उसके खेत में रखता है। भेंड़ बकरियाँ खेत में पौधों की जड़ें तथा अंकुर, घास पात जो खेत में उगे होते हैं खाकर उस खेत में रहती हैं और उनसे जो खाद प्राप्त होती है वह खेत को लाभदायक होती है। कहते हैं भेंड़ बकरियों तथा

पशुओं के खेत में बैठने से धरती को उनके अंग की गरमी से लाभ पहुँचता है। जो हो, वैज्ञानिक रीति से उनकी खाद की मीमांसा की गई है और वह उपयोगी साबित हुई है।

भेंड़ बकरियों की लेंड़ी की खाद पौधों को शीघ्र प्राप्त हो जाती है। वह खेत बोने के थोड़े ही काल पहले दी जाती है। उगती हुई फसल को भी सड़ी हुई खाद दी जाती है।

खेती में भेड़ों का प्रथम जोताई के बाद बैठाया जाना उचित है अथवा जब खेत जोतकर तैय्यार हो जायँ। हेंगा देने के समय बैठाने से भी लाभ होता है।

बाग में पौधों के लिये भेंड़ बकरियों की लेंड़ी पीसकर खाद के काम में लाई जाती है परंतु कृषि को विस्तार के साथ करने से यह सब दशाओं में संभव नहीं। ऊख, गेहूँ, जौ इत्यादि मूल्यवान् फसलों में भेंड़ बकरियों की खाद दी जाती है। बिठालने के बाद खेतों को जोत देना चाहिए।

१५—घोड़े की लीद की खाद

अस्तबल के झाड़न बटोरन, घास, जली हुई घास की राख, खराब चारा, बिछालो, लीद, पशुओं के गोबर की खाद के साथ अथवा उसी रीति के अनुसार अलग एकत्रित करने से अच्छी खाद प्राप्त होती है। घुड़साल की खाद के सड़ने में अधिक समय लगता है और यह खाद गोबर की खाद की अपेक्षा अधिक गरम होती है। सड़ने के लिये इसे आठ महीने के लगभग गड़हे में पड़ा रहने देना चाहिए और केवल

अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद इस्तेमाल करनी चाहिए। जोताई के समय खाद देना उचित होता है।

१६—विष्टा की खाद

खेतों की पैदावार के अधिकांश का भोगी मनुष्य है। वह पैदावार की उन्नति के अनेक उपाय निकालता है, नाना प्रकार की खादों का प्रयोग किया करता है। परंतु बहुत सी विष्टा की खाद खेतों को बिना कोई लाभ पहुँचाए हुए नष्ट हो जाती है। इसे यथाशक्ति रोकना चाहिए। विष्टा की खाद नीच जातियों के अतिरिक्त और कोई छूना पसंद नहीं करता। केवल शौच के समय देहातों में नालों, और पोखरियों की भीटों से बची हुई विष्टा खेतों तक पहुँचती है।

विष्टा की खाद खुली धरतियों के वास्ते अत्यंत उपयोगी साबित हुई है।

विष्टा की खाद बनाने की निम्नलिखित दो रीतियाँ हैं—

(१) सड़ी हुई विष्टा (पूडरेट Poudrette)

(२) जल में सड़ी हुई विष्टा (सीवेज Sewage)

१७—विष्टा सड़ाना और उसका व्यवहार

गाँव में पाखाने बनाने का अधिकतर रिवाज नहीं है। नित्य-क्रिया के लिये लोग खेतों में अथवा नालों में तथा पोखरों के भीटे पर जाया करते हैं। शहरों में मेहतर विष्टा को शहर के बाहर गाड़ देते हैं अथवा खटिकों या कोइरियों के हाथ बेच देते हैं जो उसको खाद के काम में लाते हैं।

एक बालिश्त गहरे, दो डेढ़ हाथ लंबे गड्ढे खोद खोदकर विष्टा भर देते हैं। वह तीन चार महीने में अच्छी तरह सड़ जाती है। इस पदार्थ को निकालकर खेतों में खाद की जगह प्रयोग करते हैं। इसमें पौधे के भोज्य पदार्थ अधिक रहते हैं। इस पदार्थ में मैले के समान अत्यंत दुर्गंध नहीं रहती। यह महँगी खाद होती है और मूल्यवान् फसलों को दी जाती है; जैसे आलू, तरकारियाँ, ऊख, पौढ़ा इत्यादि को।

इस रीति के अनुसार बहुत सा अमोनिया, जिसमें नाइ-ट्रोजन शामिल रहता है, उड़कर हवा में मिल जाता है। जहाँ मैला गाड़ा जाता है वहाँ सड़ने की बदबू, जिसके साथ बहुत सा अमोनिया मिला रहता है, मालूम होती है।

अमोनिया की हानि को रोकने तथा सफाई करने के निमित्त नवीन पद्धति पर सुएज की रीति निकाली गई है। परंतु यह तरीका केवल बहुत बड़े शहरों में जहाँ अधिक पानी का प्रबंध हो सकता है, पक्के नवीन रीति पर बने हुए बमपुलिसों (सैनेटरी लैटरीनों) द्वारा किया जाता है। इस रीति में जल में विष्टा सड़ती है और इसके साथ ही पौधों का भोजन-अंश जल में घुल जाता है और वही जल सिंचाई के काम में लाया जाता है।

बड़े बड़े शहरों में, जहाँ मल मूत्र नदियों में बाहरी ओर बहाव की तरफ बहाने का प्रबंध किया गया है, यदि कृषकों के सुभीते के अनुसार उसे खेतों तक पहुँचाने का प्रबंध किया

जाय तो उससे खासी आमदनी हो सकती है, कृषि को लाभ पहुँच सकता है और म्यूनिसिपैलिटी को तथा किसी प्रबंध-कर्त्ता ठीकेदार को लाभ हो सकता है।

म्यूनिसपैलिटियों (शहरों की सफाई का विभाग) में किस प्रकार और किन किन रीतियों द्वारा सफाई की जाती है, कैसे मल एकत्रित किया जाता है और किस सिद्धांत और रीतियों पर और किस नकशे पर सैनेटरी लैटरीन बनाए जाते हैं उनका कोरा वर्णन अनावश्यक जान पड़ता है। इसका सविस्तर वर्णन उस विषय की पुस्तकों में मिलेगा।

रीति यह है कि विष्टा पानी से बहकर कई चलनियों में छनता है। फिर कंकड या ईंटों की तह से निकलता है। हवा और पानी के साथ उस पर बहुत से छोटे छोटे कृमि जिनको बैक-टीरिया कहते हैं अपना प्रभाव डालते हैं। छना हुआ जल सूएज-वाटर अथवा विष्टा-जल कहलाता है जो सिंचाई के काम के लिये पानी उठाने की रीति में वर्णित रीतियों की मदद से निचाई से ऊँचे उठाया जा सकता है अथवा उँचाई से नीचे बढ़ाया जा सकता है। इसके उठाने के लिये बाल्टी, छोटी गाड़ियाँ जिनमें उलट जानेवाली बाल्टियाँ लगी होती हैं, काम में लाई जा सकती हैं अथवा चेन पंप का यथास्थान प्रयोग किया जा सकता है।

१८—सूअर की विष्टा की खाद

खटिक, पासी और कहीं कहीं चमार या अन्य जातियाँ सूअर पालती हैं। इनकी विष्टा की खाद बलदायक होती है।

कहीं कहीं ये केवल खाद के लिये पाले जाते हैं। कहीं मांस के लिये नीच जातियाँ अधिक सूअर पालती हैं।

इस खाद का असर गरम होता है इससे खेतों की सिंचाई अधिक करनी पड़ती है। खाद रखने की रीति वही है जो गोबर और घूरे की खाद गड्ढों में रखने के लिये लिखी गई है। इस खाद से अंगूर, आलू, लहसुन, प्याज इत्यादि को विशेष लाभ पहुँचता है।

१९—हरियाली की खाद

फसल को हरी अवस्था में जोतने को हरियाली की खाद कहते हैं। अनुभव द्वारा सिद्ध हुआ है कि दाल की फसलें हरियाली की खाद के लिये अधिक उपयुक्त हैं। धरती से अथवा हवा से जो भोजन पौधा लेता है उसको पृथिवी तक पहुँचाने को हरियाली की खाद अत्यंत लाभकारी है। हरियाली की खाद देने के लिये किसी उचित फसल के बीज धरती में बो दिए जाते हैं। जब पौधा फूलने की अवस्था को पहुँचता है फसल को धरती में जोत देते हैं। कुछ काल में वह सड़कर धरती में मिल जाती है।

रबी की फसलों के लिये हरियाली की खाद देने के निमित्त हरियाली की फसल खरीफ में बोनी चाहिए। जून अथवा जुलाई मास का समय उचित होता है। खरीफ की फसल को खाद देने के लिये फसल अकतूबर अथवा नवंबर में बोई जाती है। बोने के पश्चात् फसल की सिंचाई इत्यादि

कृषि-कर्म्म यथाविधि होते जाने चाहिएँ। जब उनके फूलने का समय निकट आवे और प्रथम फूल की कलियाँ दिखाई देने पर हों उन्हें गहराई तक जोतनेवाले हलों द्वारा जोतकर अच्छी तरह धरती में मिला देना चाहिए। इस काम के लिये मिट्टी पलटनेवाले हल अति उत्तम पाए गए हैं।

खाद के लिये सनई, कुल्थी, ग्वार, लोबिया, मोथी, नील सरीखी फसलें अच्छी होती हैं जिनमें से सनई सबसे सुलभ और सस्ती फसल है। इसका प्रयोग हरियाली की खाद के लिये किया जाता है।

हरियाली के खाद से सजीव अंश की वृद्धि होती है, धरती खुल जाती है, दाल की फसलें हवा से नाइट्रोजन पदार्थ लेकर पृथ्वी को उपजाऊ बनाती हैं।

२०—मछली की खाद

मछली की खाद पौधों के भोज्य पदार्थ से परिपूर्ण होती है। इस कारण इसका प्रयोग खाद के लिये अत्यंत लाभ-दायक होता है। फलदार पेड़ों को मछली की खाद देने से उनके फल मीठे और बड़े होते हैं। मछलियों की खाद में फासफोरस का अंश अधिक होता है। मछली की खाद मूल्यवान् फसलों को भी दी जाती है।

जहाँ मछलियाँ अधिक प्राप्त हो सकती हैं, जैसे नदी के तीर पर अथवा गाँव में जहाँ अधिक पोखरे हैं तथा समुद्र के तीर पर, वे सुखा डाली जाती हैं। उन्हें कूटकर अथवा खड़ी

खेतों में डालते हैं। कूटने में केवल हड्डी तोड़ने में थोड़ा परिश्रम लगता है वरना यह बहुत जल्द चूर हो जाती है। गोबर की सड़ी हुई अच्छी खाद और मछली का चूरा पेड़ों की बाढ़ की अवस्था में तथा फूलने के पहले उन्हें हाथ से जड़ों के पास धर देते हैं और मिट्टी से तोप देते हैं। खाद से भोज्य पदार्थ शीघ्र ही पौधों के काम में आते हैं। मूल्यवान् फसलों के लिये यह खाद बढ़ती हुई अवस्था में देनी चाहिए।

बहुत से लोग जीव-हिंसा के विचार से मछलियों की खाद का प्रयोग नहीं करते। जिन्हें इस बात का विचार नहीं होता उन्हें गाँव के तालाबों में, गड़हियों में तथा नदी में बहुत मछलियाँ प्राप्त हो सकती हैं। कभी कभी पानी की बाढ़ के समय मछलियाँ स्वयं मर जाती हैं और उतरा चलती हैं। उनका प्रयोग खाद के लिये हो सकता है।

२१—रुधिर तथा मांस मज्जा की खाद

कसाईखाने के झारन बहोरन का छू जाना बहुत सी जातियों को रोमांच कर देता है। इस झारन बहोरन रुधिर इत्यादि का नीच जातियाँ खाद के लिये प्रयोग करती हैं। इस खाद से अति उत्तम खाद का काम निकलता है। उसका उत्तम परिणाम देखने में आया है। घूर की खाद तथा गोबर या लीद अथवा भेड़ बकरियों की लेंड़ी की खाद के साथ इन्हें गड़हे में सड़ाकर उत्तम खाद बनाते हैं। इसको अलग सड़ाकर भी खाद बना सकते हैं। मूल्यवान्

फसलों तथा फलदार वृक्षों के लिये यह अच्छी खाद होती है। इस खाद के रखने में असावधानी होने से मनुष्यों में बीमारी फैलने का भय रहता है।

२२—खली की खाद

खली की खादों में फसलों के भोजन-पदार्थ अधिक होते हैं। ये भोजन-पदार्थ पौधों को प्राप्त होने की दशा में जल्दी परिवर्तित हो जाते हैं। इस कारण खली को अधिक समय तक वायु या सूर्य की धूप में न रहने देना चाहिए। इसमें असावधानी के कारण भोज्य अंश उड़ जाते हैं। खली की खाद पौधों की बाढ़ की अवस्था में देना सबसे लाभदायक होता है। जिन मूल्यवान् फसलों को खाद देनी होती है उनके अनुसार खाद की मात्रा न्यूनाधिक की जा सकती है।

खानेवाली और वह जो खाने के काम में नहीं आती—दो प्रकार की खली होती है। तिल, अलसी कुसुम या बर्रे, सरसों, लाही, दुवाँ इत्यादि की खली खाने के काम में आती है। इसलिये इनकी खली पशुओं को भोजन के साथ देने से पशुओं के भोजन का काम भी चलता है, वे बलिष्ठ होते हैं और अधिक परिश्रम कर सकते हैं। अच्छा भोजन पाने से उनके गोबर की खाद अच्छी होती है। इस प्रकार खाने की खलियों की खाद का प्रयोग करने के लिये यही अच्छा है कि उनको पशुओं को खाने के लिये दिया जाय और उनका गोबर खाद के लिये यथाविधि सड़ाकर काम में लाया जाय।

उन खेतों के, जिनकी सिंचाई होती है और जिनमें अच्छी फसलें बोई जाती हैं जैसे कछियाना इत्यादि, के लिये खली की खाद अच्छी होती है।

प्रतिवर्ष हजारों टन तेलहन अन्य देशों को बाहर भेजा जाता है। इस प्रकार पशुओं और धरती का बल कम होता जाता है और कृषि को क्षति पहुँचती है। इससे जहाँ तक संभव हो कृषिकार अपनी रक्षा के लिये तेलहन की फसलें न बेचा करें।

साधारण अवस्था में यह व्यापार बंद नहीं हो सकता, इससे यदि संभव हो तो कृषक अधिक तेलहन बोकर कुछ अपने काम के लिये रख छोड़ा करे। बिना खानेवाली फसलें जैसे महुआ की खली, नीम की खली कूटकर खेतों में दी जाती है और उससे अच्छी खाद का काम चलता है।

२३—खानेवाली खली

इसके रखने का प्रबंध अच्छे स्थानों पर होना चाहिए जिससे पानी के कीड़े मकोड़ों तथा दीमक और फफूँदी से उसकी रक्षा हो। अच्छी खली पशुओं के भोजन के काम में लानी चाहिए और उनका गोबर खाद के काम में। खराब खली जिसमें दीमक लग गई है अथवा जो अधिक पुरानी होने से फफूँद गई है पशुओं के भोजन के काम में नहीं आ सकती। उसको खाद के काम में लाना चाहिए। खाने की खली प्रति एकड़ पाँच मन के लगभग काम में लाई जाती है।

खाद देने की यह रीति है कि खली को ढेकुली या मूसल से कूट डालना चाहिए। जब फसलें फूलने लगें अथवा वे बाढ़ की अवस्था में हों उस समय खेत में उसे फैला देना चाहिए, या गोड़ाई के समय खली पौधों की जड़ों के समीप गाड़कर मिट्टी से तोप देना चाहिए।

खली देने के बाद सिंचाई करनी चाहिए।

२४—खली जो खाई नहीं जाती

नीम की खली—नीम की निमकौड़ी सुखाकर कोल्हू में पेरकर तेल निकाला जाता है। तेल दवा के अथवा जलाने के काम में आता है। पौधों की बढ़ती हुई अवस्था में उनको यह खली देने से लाभ होता है। खली देने की रीति वही है जो ऊपर लिखी गई है। इस बात का विचार रहे कि यह खली खाने के काम में नहीं आती। नीम की खली से खेत के कीड़े मकोड़े, दीमक की क्षति में एक हद तक बड़ी सहायता मिलती है।

खली की खाद उन फसलों को दी जाती है जिनकी सिंचाई होती है। मात्रा १० से २० मन प्रति एकड़ होती है।

महुआ की खली—महुए के वृक्ष से वैशाख के महीने में (अप्रैल-मई) में फूल चूते हैं और उनके फल पेड़ ही में लगे रह जाते हैं। जब फल तैयार हो जाते हैं तो वे जेठ तक तोड़कर सुखा लिए जाते हैं। उनको कोल्हू में पेरकर तेल निकालते हैं। तेल घी के समान होता है जो बहुत से कामों में लाया

जाता है। जाड़े के दिनों में यह बहुत जल्दी जम जाता है और उसमें सफेद दाने पड़ जाते हैं। कुछ लोग बेईमानी से इसे घी में मिलाते हैं। खली कूटकर नीम की खली के समान खेतों में दी जाती है। नीम से यह खली शक्ति-शाली होती है। प्रति एकड़ लगभग दस मन दी जाती है।

रेंड़ी की खली—रेंड़ी का पेड़ खराब बलुई धरतियों पर खूब होता है। इसकी खली लाभदायक और सुलभ होती है। इससे पौधों को लाभ भी अच्छा पहुँचता है। इसका छिलका निकालकर तेल पेरने से जो खली प्राप्त होती है वह छिलकेदार खली से अच्छी होती है। उसमें भोज्य पदार्थ अधिक और शीघ्र पौधों को प्राप्त होते हैं। छिलकेदार खली कड़ी होती है। रेंड़ी की खली से खेत के कीड़ों मकोड़ों की क्षति में सहायता मिलती है, पौधे नीरोग रहते हैं। जिन खेतों में रेंड़ी की खली दी जाती है वे गहरे हरे रंग के हृष्ट पुष्ट दिखाई पड़ते हैं।

खली देने की यह रीति है कि इसे ढेंकुली या मूसल से कूट लेना चाहिए और नीमकी खली के सदृश खेतों को देना चाहिए। अथवा कूटी हुई खली को गोबर की खाद के साथ मिला देना चाहिए और खेत में ज्योंही खेत तैयार हो जावें देना चाहिए।

गेहूँ, जौ, ऊख, कछियाना, तंबाकू के लिये रेंड़ी की खली अच्छी खाद है।

रेंड़ी अथवा नीम की खली बोरों में भरकर घात्रा में, जहाँ से पानी खेतों में जाता है, रख देनी चाहिए। खली घुलकर

पानी में मिलती जायगी और उसका घुला हुआ अंश खेतों को प्राप्त होगा। पर इस बात का विचार रहे कि ऐसा पानी नष्ट होने से बचाया जाय और घावा खेतों से दूर न हो। यदि ऐसा होगा तो खली की हानि होगी। बची हुई खली की तलछट घूर की खाद के गड्ढे में डाल देनी चाहिए।

नीम, महुए और रेंड़ी की खली का सड़े हुए गोबर की खाद के साथ मिलाकर प्रयोग किया जा सकता है। खली की खाद पौधों को गोबर की खाद के समान सुलभ और साधारण खाद है। खानेवाली खली पशुओं को हृष्ट पुष्ट करती है और उनके गोबर की खाद खेतों के काम में आती है जिससे अच्छे शस्य उत्पन्न होते हैं और पृथिवी की उपज शक्ति अथवा देशी कोष संचित होते हैं। दुर्भाग्य से तेलहन की माँग अन्य देशों में अधिक है, जिससे देशी कोष खाली होता है पर उसके बदले खेतों को कुछ फायदा नहीं होता। कृषक भले ही महँगे तेलहन बेचकर अपना कोष रुपए से परिपूर्ण कर लेवे पर धरती जिससे वह अन्न उपार्जन करके बेंचता है उसके बदले में कुछ नहीं पाती। इसलिये भारतवासियों को चाहिए कि तेल के कारखाने स्थापित करें। खली खाद देने के लिये रखें और तेल अन्य देशों में भेजें। दाना मनुष्य और चारा पशुओं के काम में आता है। दरिद्र पशुओं का गोबर खाद के लिये मिलता है पर उसका भी बड़ा अंश ईंधन के काम में लाया जाता है।

पहाड़ी जिलों में तथा तराई में कुछ स्थानों पर, जहाँ पशु कम पाले जाते हैं, कृषक बालियाँ ले लेता है और डंठल खेत में खड़ा छोड़ देता है तथा उनमें आग लगा देता है जिससे वे राख होकर धरती को फायदा पहुँचाते हैं। परंतु ये क्रियाएँ मैदानों में नहीं बर्ती जा सकतीं क्योंकि पशुओं को भूसे की आवश्यकता होती है।

२५—हड्डी की खाद

बहुत सी जातियाँ जिनका व्यवसाय कृषि है हड्डी छूना पसंद नहीं करतीं। हड्डी किसी प्राणी की हो खाद के काम में लाई जाती है। प्रति वर्ष लाखों मन हड्डी इस देश से दूसरे देशों को जाती है और वहाँ बहुत से कामों में आती है। उससे चाकू के दस्ते बनते हैं और साफ करके ऐसे ही अन्य बहुत से कामों में वह आती है। उससे चीनी साफ की जाती है और पीसकर तथा अन्य रासायनिक परिवर्तन से खाद के काम में लाई जाती है। हड्डी जो घुल सड़कर इस देश में किसी काम में आती थी वह अन्य देशों को चली जाती है। इससे देशी कोष की हानि होती है। बेचनेवाला भले ही कुछ धन प्राप्त कर लेवे पर उससे धरती को लाभ नहीं पहुँचता।

हड्डी देर में सड़ती और घुलती है इस कारण पौधे के काम लायक तुरंत नहीं होती। हड्डी बड़ी बड़ी लोहे की बनी हुई चक्कियों में तोड़ी जाती है और पीसने के बाद खाद के काम में लाई जाती है। खाद के काम में गोबर की खाद के

समान इसका प्रयोग किया जाता है। बारीकी के अनुसार हड्डी का चूरा, बुरादा तथा मैदा बनाया जाता है।

हड्डी को कोयले के समान जलाकर उससे हड्डी का कोयला बनाते हैं।

तेजाब डालकर हड्डी गलाई जाती है जो खाद के काम में लाई जाती है। इस रीति के अनुसार हड्डी से पौधों को भोजन सुलभ रीति से प्राप्त होता है।

हड्डी में फासफोरस अंश अधिक मौजूद होता है। इसका प्रयोग सभी फसलों और सब खेतों के लिये किया जा सकता है। इसे गोबर की खाद के साथ मिलाकर देना उत्तम होता है। यदि गोबर की खाद के गड़हे में हड्डी का मैदा, बुरादा अथवा चूरा सड़ने के लिये डाल दिया जाय तो उस खाद की उत्तमता का नतीजा शीघ्र देखने में आ सकता है। देश-वासियों को उचित है कि अपने अपने गाँव में चमारों द्वारा मरे हुए पशुओं की हड्डियाँ एक गढ़े में एकत्रित कराते रहें, उनमें कुछ ताजा गोबर और पानी डालते रहें। इससे हड्डियाँ गल जावेंगी और खाद का काम देंगी।

२६—विशेष खाद

कई प्रकार की मुख्य मुख्य खादों के नाम ऊपर लिखे गए हैं। वे खाद के काम में लाई जाती हैं। पर भारतवर्ष में ये खादें सब जगह नहीं प्राप्त होतीं। इनको दूर से लाने में इनका दाम बहुत होता है जिसके अनुसार लाभ का परता

साधारण अवस्था में नहीं पड़ सकता। इसलिये उनका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं।

२७—नोना मिट्टी

इससे शोरा बनाया जाता है। शोरे में संयुक्त नाइट्रोजन और पोटाश का अंश अधिक होता है। नोना मिट्टी पुराने मकानों पर पाई जाती है। इसका पर्त नम धरतियों पर जमा हुआ दिखाई पड़ता है। यह गोभी, भाँटा, तंबाकू इत्यादि फसलों को, जिन्हें नाइट्रोजन और पोटाश की आवश्यकता होती है, लाभकारी है। यह पानी के साथ घुलकर बह जाती है इसलिये सिंचाई के बाद बढ़ती हुई फसलों के ऊपर छिड़क दी जाती है।

२८—तालाब की मिट्टी

खुली हुई धरती के खेतों को तालाब की मिट्टी की खाद लाभदायक होती है। तालाबों में बहुत से पानी के जीव जंतु रहते हैं जैसे मछली, घोंघे, सिवार, मेंडक इत्यादि। वे पानी सूखने पर मर जाते हैं तथा उनके अंश मिट्टी में मिल जाते हैं और पौधों के भोजन के काम में आते हैं। आस-पास का बहुत सा जल जिसमें गाँव का पानी, पशुओं का गोबर मूत्र इत्यादि मिला होता है, घुलकर तालाब में पहुँचता है। प्रति एकड़ लगभग दस मन मिट्टी दी जा सकती है।

छोटे गड़हों और पोखरियों की मिट्टी अवस्था के अनुसार तालाब की मिट्टी से अधिक उपजाऊ और बलिष्ठ होती है।

२९—चूने की खाद

ऊपर वर्णन हो चुका है कि चूना पौधों के मुख्य अंशों में से है। चूनेवाली मिट्टी, घोंघा, सीपी, बुझा हुआ चूना, पौधों के लिये अच्छी खाद है।

इसका प्रभाव प्रायः साधारण खादों से इस प्रकार भिन्न है कि और खादों में स्वयं पौधों का भोजन-अंश मौजूद रहता है परंतु चूने के प्रभाव से दूसरी खादों में तथा पृथ्वी में जो पौधों का भोजन संचित रहता है वह इस अवस्था में आ जाता है कि पौधा उसका प्रयोग कर सकता है। ऐसी खाद का प्रभाव या तो स्वयं पृथ्वी पर पड़ता है या इनके कारण से दूसरे भोजन पदार्थों का प्रयोग होता है। इन्हें अँगरेजी में इनडाईरेक्ट मैन्योर अथवा परोक्ष खाद कहते हैं।

चूना पौधों की हृष्ट पुष्ट उत्पत्ति के लिये आवश्यक खाद है। जिस धरती में चूने की कमी है और इस कारण से पौधे हृष्ट पुष्ट नहीं रह सकते उनको चूने की खाद देने से शीघ्र लाभ पहुँचता है। जैसे, यदि गेहूँ जौ इत्यादि की फसलें बाढ़ के समय पीली पड़ गई हों तो उनकी अवस्था का कारण समझकर चूने की खाद दे देने से वे ठीक अवस्था में आ जाते हैं। धरती में मौजूद चूना प्रायः पृथिवी के नीचे की तह में चला जाता है जिससे ऊपर की तह कमजोर पड़ जाती है। अच्छी जोताई और गोड़ाई से चूना फिर ऊपर चला आता है और पृथ्वी ठीक हो जाती है। यदि ऐसा न हो

तो चूने की खाद का अभाव समझना चाहिए। धरती में जो पोटाशिक पदार्थ संयुक्त दशा में रहते हैं उन्हें चूना अलग करके पौधों को भोजन प्राप्त कराता है। चूना साधारण पानी में, जिसमें कार्बोनिक एसिड गैस घुली रहती है, घुल भी सकता है।

चूना हमेशा बुझाकर खाद के काम में लाना चाहिए क्योंकि बे बुझा चूना बहुत गरम होता है। बुझा हुआ चूना पृथ्वी पर शीघ्र असर करता है और उसके गुण देखने में शीघ्र आते हैं। चूना धरती पर रखकर सावधानी से उस पर थोड़ा थोड़ा पानी छिड़कना चाहिए। इस प्रकार वह बुझ जाता है। बुझाते समय चूना बहुत गरम हो जाता है इस लिये जलने से बचना चाहिए।

चिकनी मिट्टी में जो चिकनाहट होती है वह चूने की खाद से कम हो जाती है। ऐसी धरती जब सूखती है बड़े बड़े ढेलों में नहीं बँधती, और पानी में तर होने से उसमें अधिक काँदा जैसा निरी चिकनी मिट्टी में हो जाता है नहीं होता। उसमें कुछ भुरभुराहट भी आ जाती है।

बुझा हुआ चूना खेत में फैलाकर हल द्वारा धरती में मिला देना चाहिए। अधिक काल तक पड़े रहने से चूना रासायनिक क्रिया द्वारा खरिया मिट्टी बन जाता है। खरिया मिट्टी में गुण कम होते हैं; वह चूने के समान तेज नहीं होती। चूना दालवाली फसलों को विशेष करके लाभदायक

है। लगभग तोन से चार मन प्रति एकड़ चूने की खाद काफी होती है। चूने की खाद खेत बोने से पहले दी जाती है। एक ही खेत में प्रति वर्ष चूने की खाद न देनी चाहिए। पाँच वर्ष में एक बार खाद का देना काफी है, क्योंकि यह तेज होता है।

३०—मिलुवाँ खाद

खाद के मिलाने में बड़ी सावधानी से विचार करना चाहिए। साधारण लीद, हड्डी, खली इत्यादि जीवित पदार्थ में खादों के आपस में मिलाने में विशेष युक्ति की आवश्यकता नहीं, पर विशेष खादों के संयोग से भीषण रासायनिक क्रियाएँ उपस्थित होती हैं। जैसे चूनेवाली धरती में गोबर तथा अन्य नौसादर-युक्त खाद का मेल देने से अमोनिया गैस बनती है और वह उड़कर खराब हो जाती है। चूने और नौसादर का योग न होना चाहिए।

३१—विशेष खादों का प्रभाव

विशेष खादें जिनका नाम ऊपर दिया गया है अधिकतर शीघ्र अपना प्रभाव दिखाती हैं। वे पौधों को बाढ़ की अवस्था में दी जाती हैं। उनकी मात्रा $\frac{१}{२}$ मन से १$\frac{१}{२}$ मन फी बीघा होती है। जितनी खाद होती है उसकी दुगनी मिट्टी मिलाकर देते हैं। ऐसा करने से खाद बराबर फैल जाती है।

सोडियम नाइट्रेट और एमोनियम सल्फेट इसी प्रकार दी जाती हैं। इनके देने से फस्ल शीघ्र बढ़ती है। नाइट्रोलिम से पौधों की पत्तियाँ जल जाती हैं, इस कारण वह जोताई के साथ दी जाती है।

३२—खेतों की उपज

उपज दो प्रकार की होती है, प्राकृतिक अथवा कृत्रिम। प्राकृतिक उपज पृथ्वी में वर्तमान उत्पादन-शक्ति को कहते हैं। इससे सूचित होता है कि पृथ्वी में पौधे के भोजन के अंश वर्तमान रहते हैं और प्राकृतिक परिवर्तन से वे पौधों के काम में आने योग्य हुआ करते हैं। ऐसी उपज जल्दी नाश नहीं होती। यद्यपि वह धीरे धीरे पौधों को भोजन पहुँचाती है पर उसकी उपज कायम रहती है।

कृत्रिम उपज कृत्रिम रूप से खाद अथवा पौधों की आवश्यकताओं को पूरा करने से प्राप्त होती है। यदि ये आवश्यकताएँ बराबर पूरी न की जाया करें तो उपज जाती रहती है। जैसे अच्छे बाग की धरती में, जो खूब परिश्रम से बनाई गई है और जिसमें खूब खाद दी गई है यदि बराबर भारी फसलें बोई जायँ और उसमें खाद का देना बंद कर दिया जाय तो कुछ समय में ऐसी धरती निर्बल पड़ जायगी। ऐसी बनाई धरती की उपज-शक्ति इस प्रकार खराब करना उचित नहीं है, क्योंकि थोड़ी देख भाल से बनी हुई धरती की उत्पादन-

शक्ति कायम रहती है और उसकी रक्षा न करने से अधिक परिश्रम और व्यय से संचित की हुई शक्ति नष्ट हो जाती है जिसके पुनः संचय में अधिक व्यय और परिश्रम करना पड़ता है।

३३—खाद में बचत

विधिवत् खाद की रक्षा करने से यह देखा जाता है कि जहाँ गाड़ियों खाद लगती थी वहाँ कम मात्रा में खाद से उत्तम काम निकलता है। वैज्ञानिक नियमों का अनुसरण हर हालत में लाभदायक है।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

मिलवाँ शस्य, शस्यचक्र, चौमास छोड़ना

धरती में खाद देने के अतिरिक्त कृषिकार प्राय: उन रीतियों का अनुसरण भी करता है जिनसे वह अपनी धरती से किफायत के साथ लाभ उठा सके और धरती की शक्ति को भी स्थिर रख सके। वह क्रम से धरती के अनुसार फसल अदल बदलकर बोता है। एक फसल में एक फसल तो दूसरी फसल में दूसरी फसल बोता है। वह समय समय पर खेतों को पलिहर या पड़ती छोड़ता है, जिससे उसकी धरती की उत्पादन-शक्ति की रक्षा होती है।

खेतों में अदल बदलकर फसल बोना शस्यचक्र अर्थात् बड़ी सावधानी और अनुभव से बैठाया जाता है, नहीं तो पैदावार अच्छी नहीं होती। साधारण कृषक यद्यपि इन रीतियों का कारण नहीं जानता और उनको वैज्ञानिक भाषा में प्रगट नहीं कर सकता तथापि परंपरा के अनुभव से उसको शस्यचक्र का ऐसा ठीक ज्ञान होता है कि प्राय: वह एक फसल के बाद दूसरी फसल बोने का चुनाव करने में गलती नहीं करता।

१—मिलवाँ फसल का बोना

कई फसलें मिलाकर बोने से यह बात रहती है कि यदि एक फसल न हुई तो उसके साथ वाली दूसरी फसल तो

होगी। खरीफ की फसल में इस प्रकार की अस्थिरता अधिक होती है। अवध के अधिक भागों में चावल के साथ कोदों मिलाकर बोते हैं।

यदि पानी मिला तो धान अच्छी तरह से बढ़ता है और यदि पानी न मिला तो कोदों की फसल मिल जाती है। ज्वार अरहर बोने का साधारणतः रिवाज देखा जाता है जिसका एक कारण यह है कि जोताई के परिश्रम में बचत होती है। खेत ज्वार के लिये बोया जाता है, साथ में अरहर भी मिलाकर बो देते हैं। ज्वार की फसल जल्दी बढ़ती है। उसके साथ साथ अरहर धीरे धीरे बढ़ती जाती है। यदि ज्वार की फसल जोरदार हुई तो अरहर की फसल दब जाती है। जब ज्वार की फसल काट ली जाती है अरहर तेजी से बढ़ने लगती है और उससे समय रहने के अनुसार ज्वार के बाद अच्छी फसल मिलती है। यदि ज्वार कमजोर है तो अरहर जोर से बढ़ सकती है।

मिलवाँ फसल बोने से पृथ्वी में जल का संचय रहता है। वह भाफ बनकर उड़ने से बच जाता है। पानी पड़ने से धरती कड़ी हो जाती है और उसके भीतर की केश-नलिकाओं का तार बराबर हो जाता है जिससे पानी व्यर्थ जाने लगता है। ज्वार अरहर के साथ उर्द अथवा और कोई लता की फसल बो देते हैं। यह धरती को ढके रहती है और सूर्य की तीक्ष्ण गरमी से बचाती है।

मिलवाँ फसल बोने में यह भी विचार होता है कि भिन्न भिन्न प्रकार के पौधों की फसलों की जड़ें अधिक अथवा कम गहराई तक बढ़ती हैं और अपना भोजन पृथ्वी की भिन्न भिन्न सतहों से प्राप्त करती हैं। एक ही प्रकार की फसल केवल एक सतह से भोजन प्राप्त कर सकती है। मिलवाँ फसलों की जिंसों को एक साथ ही कई सतहों से लाभ पहुँचता है और कई फसलें लेकर उनसे पैदावार अधिक प्राप्त होती है। दाल की फसलों को मिलाकर बोने से उनसे नाइट्रोजन मिलता है। उदाहरण के तौर पर खरीफ में सनई, मूँग, उर्द, मोठ, अरहर, और नील दाल की फसलें हैं। रबी में चना, मटर, मसूर इत्यादि हैं।

रबी में मौसिम की इस प्रकार की अस्थिरता कम होती है जैसी कि खरीफ में। सिंचाई का विचार करके दाल और अनाज की फसलें एक साथ बोते हैं; जैसे, गोजई, चना, मटर, जौ, सरसों, गेहूँ इत्यादि।

२—शस्य का अदल बदलकर बोना

शस्यचक्र—एक ही खेत पर कई प्रकार के शस्य बोने को शस्य का फेर फारकर बोना अथवा शस्यचक्र (Rotation of Crobs) कहते हैं। अदल बदलकर फसलों के बोने से खाद में बचत होती है और जहाँ तक संभव होता है धरती पर जोर कम पड़ता है। भिन्न भिन्न शस्यों के भोजन की आव-

श्यकता भिन्न होती है। जिंसों (Cereals) की फसलों की जैसे जौ गेहूँ की आवश्यकताएँ और भोजन भिन्न होते हैं और दाल की फसलों की आवश्यकता भिन्न होती है। यदि किसी एक फसल में एक ही प्रकार की फसल बार बार बोई जायगी तो धरती से एक ही प्रकार के भोजन की खींच होगी और अधिक भोजन-पदार्थ संचार होने का समय न मिलेगा। खेत की उत्पादन-शक्ति कायम रखने के लिये अधिक खाद और अन्य कृषि संबंधी क्रियाओं की आवश्यकता होगी।

इनमें से कुछ पौधों की जड़ों की प्रकृति अधिक गहराई तक जाने की है और कुछ धरती की सतह के पास ही रह जाती हैं। दाल की फसलों की जड़ें, तमाखू की जड़, रेंड़ी इत्यादि फसलों की जड़ गहराई तक जाती है। जौ, गेहूँ, मकई, ज्वार के पौधों की जड़ें धरती की सतह के पास रहती हैं।

एक फसल के उत्पन्न करने में जितनी खाद की आवश्यकता होती है प्रायः उस खाद का सब अंश उसी फसल में समाप्त नहीं हो जाता। खाद का शेष भाग यद्यपि वही फसल दोबारा उत्पन्न करने के योग्य न हो पर उसके बाद उससे दूसरी कोई फसलें बोने से अच्छा फल निकलता है जैसे तंबाकू के बोने के बाद ऊख बोना।

कुछ शस्यों के, जिनका वर्णन हरियाली की खाद के संबंध में हुआ है, पश्चात् दूसरे शस्य बोने से लाभ होता है जैसे ज्वार बोकर तब ऊख बोवे तो ऊख की फसल अच्छी होगी।

शस्यचक्र से खर पतवार के नाश करने में सहायता मिलती है क्योंकि क्रमशः पृथ्वी में वर्तमान पौधों के सभी भोजन-अंश फसल के काम में आते रहते हैं। घनी बोआई और मिलवाँ फसलों की बोआई धरती से खर पतवार साफ करने में अधिक गुणकारी होती है।

कई प्रकार की फसलों के बोने से साल में धंधा बराबर लगा रहता है और कृषक को कई प्रकार की फसलें मिल जाती हैं।

यदि एक फसल के लिये मौसिम खराब हुआ तो दूसरी फसल के उत्पन्न होने की आशा की जा सकती है। जैसे जब एक फसल मारी जाती है, कृषक उसके बाद कोई दूसरी फसल बोता है।

एक ही फसल के बार बार बोने से उसमें रोग लग जाते हैं, उस पर कीड़ों के आक्रमण होते हैं जिससे कृषक की बड़ी हानि होती है और वह विवश हो उस शस्य का बोना बंद कर देता है। इसका एक कारण यह होता है कि इन ईतियों के बीज तथा अंडे धरती में बने रहते हैं और जब उनकी भक्ष्य फसल तैयार होने लगती है, वे अपना आक्रमण प्रति फसल अधिक वेग से आरंभ कर देते हैं। फसल बदल देने से वे भोजन न पाकर मर जाते हैं, क्योंकि वे दूसरी फसल पर, जो उनका भोजन नहीं है, नहीं जी सकते; जैसे कपास का कीड़ा ज्वार तथा मटर अथवा ऊख पर नहीं जीता। गेहूँ की

गेरुई चने अथवा मटर पर नहीं लगती। इस बात का प्रबंध होना चाहिए कि पास में भक्ष्य फसल और कहीं तो नहीं है, नहीं तो कीड़े नष्ट न हो सकेंगे।

(१) धरती में कितनी खाद दी जाती है अथवा कितनी खाद उसे प्राप्त हो सकती है, (२) धरती की भौतिक और रासायनिक अथवा उसकी विशेष शक्तियों का विचार, (३) स्थान, पानी का प्राप्त होना, बाजार निकट होना इत्यादि, (४) बिक्री, माँग, (५) कृषक की आवश्यकताएँ, (६) मौसिम, (७) शस्यों के रोग और अन्य ईतियाँ प्रभृति कारणों का विचार करके खेतों में शस्यचक्र बैठाने का विचार उचित होता है।

भारतवर्ष में प्रायः फसलें अदल बदलकर बोने का रिवाज है और कृषक इसके लाभों को भली भाँति जानते हैं। स्थानीय दशाओं के अनुसार वे शस्यचक्र बना लेते हैं। धान के खेतों में धान के अतिरिक्त बहुत कम दूसरी फसल बोई जाती है, पर अवसर और सुभीते के अनुसार चना, तीसी, लतरी अथवा मटर भी बोते हैं। गाँव के निकट तथा उपर्युक्त कारणों के विचार के अनुसार धनाऊ धरतियों पर मूल्यवान् और साल में कई फसलें उत्पन्न होती हैं।

३—कई फसलों का बोना

बहुत से मुल्क ऐसे हैं जहाँ साल में केवल एक ही फसल बोई जाती है। भारतवर्ष में भी बहुत से स्थान ऐसे हैं जहाँ साल में केवल एक ही फसल धरती से प्राप्त होती है। इसका

कारण कहीं कहीं तो यह होता है कि धरती खराब होती है, एक फसल भी जो होती है अच्छी नहीं होती। कहीं कहीं धरती अच्छी होती है परंतु वहाँ का जलवायु और अन्य बातें सुविधा के अनुसार नहीं होतीं, जंगली पशुओं का भय होता है जिससे पशु, शस्य और आदमियों की रक्षा नहीं हो सकती, कहीं खेत और खेती की सुविधाएँ अच्छी हैं पर कृषक निरुत्साही तथा आलसी हैं। इस अवस्था में उन्नति के दो मार्ग हैं। ऐसे स्थान जहाँ किसी कृषि की कोई सुविधा जैसे पानी का प्राप्त न होना, बैलों का न होना, बीज का न मिलना, नीलगाय, बंदर इत्यादि पशुओं का आक्रमण होना इत्यादि कारण मौजूद हैं वहाँ उनके निवारण का उपाय करना चाहिए।

दूसरे कृषकों को अन्य स्थानों की कृषि की दशा दिखाकर उत्साह दिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि लगान बहुत कम है तो वह बढ़ाई जा सकती है। यदि लगान अधिक है तो उसे कम कर देना उचित है अथवा कृषि संबंधी सुविधाओं की उन्नति कर देनी चाहिए। यदि कृषक दरिद्र है तो उसे कम व्याज पर रुपया दिया जाना चाहिए। यदि खेतों के लिये उपराचढ़ी होती हो तो सबसे अधिक लगान देनेवाले को खेत दिया जाना चाहिए परंतु यह विचार कर लेना उचित है कि आसामी देनेवाला है या न देनेवाला। ठीक लगान बराबर दे देनेवाला आसामी ईमानदार होता है। एक फसल में

अधिक लगान देकर बैठ जानेवाला आसामी ठीक नहीं होता। जहाँ कृषकों की कमी है समझ बूझकर काम करना चाहिए। बोई जानेवाली धरती पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है। उस पर विधिवत् खेती करने से और खाद देने से उसकी शक्ति स्थिर रहती है और बढ़ती है। परती छूटी हुई धरती अकाम धन के समान है जो एक कोने में गड़ा है। अँगरेजी राज्य में तथा अन्य किसी स्थापित राज्य में कृषि करने की परिपूर्ण सुविधा प्राप्य है। खेत और उनकी शस्य को स्थापित राज्य के कारण का होना एक प्रकार से दृढ़ बीमा सा हो गया है। हमारे सौभाग्य से हमें ऐसा अवसर मिला है जिसमें हमें कृषि की उन्नति करने की सब सुविधाएँ प्राप्त हैं, या हो सकती हैं।

भारतवर्ष की जलवायु और धरती सुवर्णमयी कही जाती है। यहाँ साल में कई फसलें उत्पन्न करके कृषक धनवान् हो सकता है। अपने उद्योग से यदि वह एक फसल की पैदावार अपने पास रख लेवे तो वह एक वर्ष के लिये निश्चिंत हो सकता है।

बाजार की माँग, ले जाने की सुविधाएँ जैसे रेल, सड़कें इत्यादि का होना, कृषकों को अन्न उत्पन्न करने और धन कमाने के लिये उत्तेजित करते हैं। जमींदार इनको स्थापित करने में उसके सहायक हो सकते हैं। गोयँड़े के खेत तथा शहरों के खेत इस प्रकार साल भर में शायद ही कभी खाली

छोड़े जाते हैं। उनमें एक न एक फसल अन्न या तरकारी की बोई ही रहती है। जो काम एक स्थान पर हो सकता है उन सुविधाओं के अनुसार उद्यम से दूसरे स्थानों पर भी उसका होना संभव है। रेतीली, परती, मरायल धरती पर उद्यम से इस समय बाग लगे हुए हैं। हमें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सुविधाओं को उत्पन्न करके उनकी रचा करनी चाहिए। ईश्वर उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।

धरती पर और उसकी उपज पर प्रति दिन अधिक बल पड़ता जाता है। धुनिएँ, लकड़ी, पत्थर का काम करनेवाले इत्यादि जो मिलों और बड़े बड़े कारखानों की बराबरी नहीं कर सकते अपने व्यवसाय छोड़कर कृषि पर अवलंबित हैं। नई धरती जोत में आती जाती है और स्थापित राज्य में कृषि पर भरोसा बढ़ता जाता है जिससे धरती की माँग और मूल्य बढ़ता जाता है। इस अवस्था में यह भी कर्तव्य उपस्थित है कि कृषि अच्छी तरह से की जाय, उससे अधिक और उत्तम शस्य उत्पन्न किए जायँ और धरती को उचित बदला दिया जाय जिससे उसकी उपज न घटे।

४—खेत का परती छोड़ना

अधिक फसलें बोते बोते अथवा अन्य किसी विशेष कारण से जब खेत की उत्पादन-शक्ति कम हो जाती है अथवा जाती रहती है अथवा यह होता है कि शस्य बोने से बोआई की

कीमत नहीं प्राप्त होती या फसल खराब होती है तो कृषक समझता है कि उसकी धरती निर्बल पड़ गई है और उसको आराम देने की आवश्यकता है। इस संबंध में यह विचारणीय है कि कृषि करने की बुरी रीतियों के कारण तो ऐसा नहीं हुआ है। इस विषय में खेतों को परती छोड़कर कुछ समय के लिये कृषक उन्हें आराम देता है। धरती की परती अवस्था में भी कुछ लोग कोई साधारण दाल अथवा जिंस की फसल बोकर गारू अथवा भेड़ बकरियों को खिलाते हैं। इस प्रकार उनके गोबर की खाद परती जमीन को मिल जाती है। फसल कट जाने के पश्चात् दूसरी फसल की बोआई तक जो धरती परती रहती है उसे इस प्रकार कुछ अवकाश मिल जाता है जिससे उसमें पौधों का भोजन संचित हो जाता है, जैसे रबी की फसल के बाद खरीफ की फसल बोने में लगभग तीन महीने का अवकाश मिल जाता है अथवा रबी के बाद दूसरे साल रबी बोने में नौ मास के लगभग अवकाश मिल जाता है।

खेत के अवकाश-काल में प्रायः और हर घड़ी अनुकूल अवस्थाओं में रासायनिक और भौतिक क्रियाएँ होती रहती हैं। उनमें छोटे छोटे पौधों की जिन्हें बैकटीरिया कहते हैं वृद्धि होती रहती है और वे पौधों के अनुकूल दशाएँ धरती में उत्पन्न करते रहते हैं। इस प्रकार पौधों का बहुत सा भोजन एकत्रित होता है जो आगामी शस्यों के काम में आता है और कृषक का अभिप्राय धरती परती छोड़ने का यही रहता है।

इस प्रकार धरती को परती छोड़ने को कृषक चौमास रखना या पलिहर छोड़ना कहते हैं। चौमास छोड़ने के बाद खेत में कोई मूल्यवान् फसल बोते हैं। छोटे छोटे खेत के कृषक को यथासंभव खेत परती छोड़ने का अवसर कम रहता है क्योंकि उसके पास खेत कम होते हैं और अपने भरण पोषण के लिये उसे शस्य उत्पन्न करने अथवा लगान देने के दबाव में पड़ा रहना होता है।

जहाँ पानी अधिक बरसता है वहाँ धरती को पलिहर अवस्था में छोड़ने में हानि होती है क्योंकि धरती के घुल जानेवाले पदार्थ जैसे नाईट्रेट्स इत्यादि पानी के साथ बह जाते हैं। ऐसी अवस्था में खेतों में कोई शस्य बोने से इस हानि का बचाव किया जा सकता है। इससे धरती पर खड़ी फसलें उन पदार्थों का उपयोग करती हैं और उन्हें बहने से रोकती हैं। संयुक्त प्रांत में अथवा अन्य स्थानों में जहाँ पानी बरसने की कम संभावना होती है साफ परती छोड़ने में कोई हर्ज नहीं। जब आवश्यकता के अनुसार परती बहुत दिनों के लिये छोड़ी जाय तो उस पर सनई गुवार प्रभृति फसलें बोने से धरती के भोजन-तत्त्व में अधिक अन्तर नहीं पड़ता। इस प्रकार कोई घटिया फसल परती भूमि पर बोने को भी पाश्चात्यदेशीय किसान एक प्रकार की परती ही समझते हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद

शस्य की कटाई, लवाई, मड़ाई

१—समय

फसलें जिस उद्देश्य से बोई जाती हैं, जब वह पूर्ण हो जाता है तो शस्य तैयार समझा जाता है और उसके एकत्रित करने का समय आ जाता है। यह किसी नियम से नहीं वरन् अनुभव से ज्ञात होता है कि अब फसल के काटने का समय आ गया है। तैयार शस्य के खेत में पड़े रहने से बड़ी हानि होती है। चोरी हो जाना, हवा पानी से शस्य का खराब हो जाना, पककर दानों का झड़ना, चिड़ियों और पशुओं से शस्य को हानि पहुँचना साधारण आपदाएँ हैं। ऊख अथवा रेशे की फसलों को भी हानि पहुँचती है। जब ऊख तैयार हो गया तो उसका रस खराब होने लगता है और उसके रस में कमी होने लगती है। रेशे की फसलों के अधिक काल तक पड़े रहने से उनका रेशा कड़ा हो जाता है।

संयुक्तप्रांत में शस्य की कटाई का समय अगस्त अथवा भादों के महीने से आरंभ होता है और बराबर बैसाख के महीने तक जारी रहता है। भादों में नील की फसल की कटाई होती है और बहुत सी छोटी छोटी फसलें काकुन,

कुटकी, साँवा इत्यादि तैयार होती हैं। भादों के अंत तक अथवा कुँवार के महीने तक कटाई समाप्त हो जाती है और अगैते धान की कटाई होती है। अन्य दाल की फसलें, कपास और पछैता धान कुँवार से अगहन तक काटे और माँड़े जाते हैं। कार्तिक की एकादशी से ऊख की पिराई आरंभ हो जाती है और माघ तक जारी रहती है। इसी समय मूँगफली की खोदाई का समय होता है। तब तक अरहर, मटर, चने की कटाई होती है। इसके उपरांत रबी की बड़ी फसलों गेहूँ, जौ इत्यादि की कटाई और मड़ाई का समय आ जाता है और चैत्र अथवा बैसाख तक चलता है।

तंबाकू बैसाख अथवा ज्येष्ठ में काटा जाता है और बनाया जाता है। आलू पूस माघ में खोदे जाते हैं। चैत से कुँवार तक कोंहड़ा, लौकी, करैला, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज का मौसिम रहता है। बैसाख ज्येष्ठ में चना अथवा साँवा काटते हैं।

पूर्वी जिलों में रबी की फसल पश्चिमी जिलों की अपेक्षा प्राय: एक मास के लगभग पहले पककर तैयार हो जाती है। इसका कारण यह है कि पश्चिम में सर्दी कुछ अधिक दिनों तक रहती है। इस कारण से उनके पकने में विलंब होता है। पश्चिम में खरीफ की फसलें जल्दी पककर तैयार होती हैं क्योंकि पश्चिम में उतना पानी नहीं बरसता जितना पूर्वी जिलों में।

२—कटाई के यंत्र

हँसिया या दरेती—स्थानी अवस्था के अनुसार हँसिया या दरेती कई आकार प्रकार की बनाई जाती है। कहीं उसकी सान सपाट होती है, कहीं उसकी बाट में आरी के समान दंदाने बने रहते हैं।

खुर्पी, कुदारी, फावड़ा, देसी हल, खोदने के काम में लाए जाते हैं।

कस्सी या बाँकी—अरहर अथवा ऊख काटने के काम में लाई जाती है।

गँड़ासी—चारा काटने अथवा अरहर, ऊख की फसलें काटने के काम में आती है।

३—कटाई की रीतियाँ

रेशे की फसलें जैसे अलसी इत्यादि जड़ से उखाड़ ली जाती हैं। कमजोर पौधे उर्द, मूँग, मटर प्रभृति हाथ से बटोर लिए जाते हैं क्योंकि उनको उखाड़ने में कुछ भी परिश्रम नहीं होता। यदि पौधे कुछ हरे हुए तो उन्हें हँसिया से काट लेते हैं।

ज्वार, मकई, बाजरा प्रभृति पौधों के भुट्टे हँसिया से काट-कर एकत्रित किए जाते हैं। उनको डंडों से पीटकर दाना अलग कर लेते हैं। मकई के भुट्टों को आपस में रगड़कर उनका दाना छुड़ाते हैं। मकई के भुट्टे के दाने छुड़ाने की एक मशीन भी होती है।
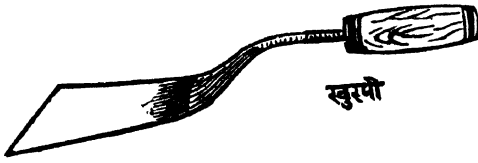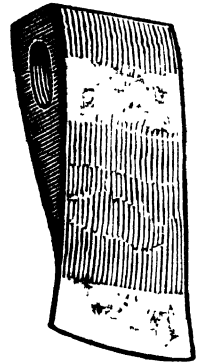
खुरपी
हँसिया
कुदारी
टांगा
फावड़ा

अधिकतर अन्न के पौधे धरती से लगाकर हँसिया से काट लेते हैं। जैसे गेहूँ, धान, जौ इत्यादि।

आलू, गाजर, शलगम, मूँगफली, प्रभृति फसलें धरती से खोदी जाती हैं। कपास तरकारी प्रभृति फसलें हाथ से चुनी जाती हैं। कभी कभी गेहूँ प्रभृति अनाज की बालियाँ अलग और पेड़ी अलग काटते हैं और अलग माँड़ते हैं।

पहाड़ी अंचल में बालियाँ काटकर दाना निकाल लिया जाता है। पेड़ी खेत में छोड़ देते हैं। जब जोताई का समय आता है उनमें आग लगा देते हैं। राख खाद का काम देती है। यह रिवाज खाद के विचार से एक हद तक अच्छी है। इसका कारण यह है कि पहाड़ी अंचल में लोग पशु बाँधकर नहीं खिलाते। इससे उन्हें भूसे की परवा नहीं रहती। मैदान में पशुओं को अधिकतर अपने स्वामी के दिए हुए भोजन का अवलंब रहता है।

४—लवाई या सिला (Gleaning)

फसल काटते समय कुछ अन्न खेतों में गिर जाता है। इसको एकत्रित करने को लवाई या सिला कहते हैं। इसको छोटे छोटे लड़के तथा लड़कियाँ अथवा औरतें बीन लेती हैं या कूँचे से बटोर लेती हैं। जो कुछ बच जाता है वह चिड़ियों तथा चरनेवाले पशुओं के काम में आता है।

लवाई की मजदूरी बोनी हुई शस्य का एक अंश होता है, जो जितना लवता है वह उतना ही अधिक पाता है।

५—मड़ाई

अधिकतर अनाज की फसलें काटकर खलिहान में एकत्रित की जाती हैं। खलिहान किसी आम या दूसरे वृक्षों के

मकाई के भुट्टे से दाना अलग करने की मशीन।
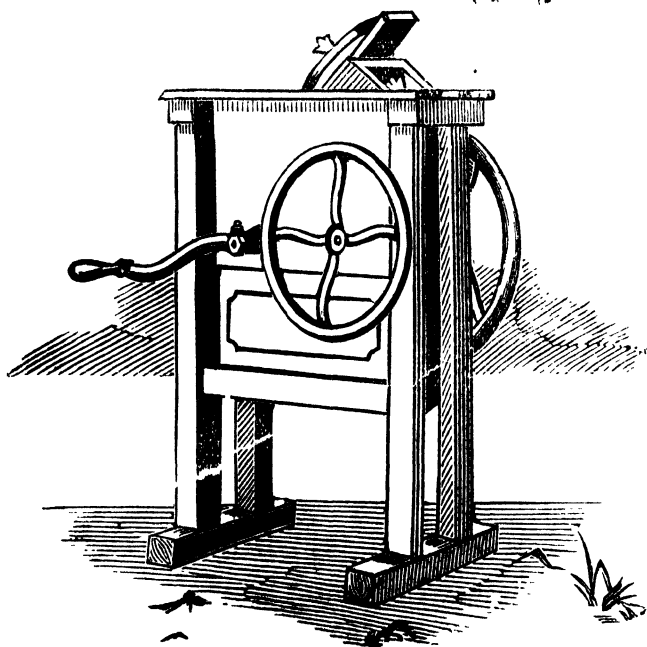
समूह के बीच, जहाँ फैलाव की जगह हो, धरती को समतल करके लीप पोतकर बनाया जाता है। कुछ लोग खेतों ही

में धरती बराबर करके उसे गोबर से लोपकर खलिहान बनाते हैं। कहीं चारदीवारी से घिरे हुए स्थानों में खलिहान बनाए जाते हैं। खलिहान में शस्य की रक्षा चोरों से, पशु पक्षियों से, अग्नि से, हवा से, अथवा वर्षा से की जाती है।

आम के बाग में रबी की फसल का खलिहान रखने से आमों की निगरानी भी होती है। प्रायः खलिहान में गाँव भर की फसलें एक ही स्थान में रखी जाती हैं पर यह गाँव के रिवाज और सुविधा के अनुसार होता है। इसमें कितने ही लाभ हैं।

कटा हुआ शस्य घाम में फैलाया जाता है। इस पर बैल, भैंसे, चलाए जाते हैं जिससे उनके चिरे हुए खुरों के नीचे अनाज दबकर भूसे से अलग होता जाता है। फैले हुए शस्य के स्थान को पैरी कहते हैं। बैलों की चलान को दौंरी या दायँ हाँकना कहते हैं और इस काम को शस्य का दाँना या गहावर कहते हैं। जब तक भूसा बारीक नहीं होता दौंरी जारी रहती है। दौंरी में एक साथ अधिक शस्य रखने से उस पर एक साथ अधिक बैल चलाने की आवश्यकता होती है, इस प्रकार जल्दी दाना निकलता है और अच्छा अनाज निकलता है। हाँकने में आसानी और मजदूरी में किफायत होती है। कहीं कहीं सुभीते के अनुसार धान के पौधों को तख्ते पर पीटकर धान अलग कर लेते हैं और कहीं कहीं धान पर दौंरी चलाते हैं और पुआल से धान अलग कर लेते हैं।

दौंरी
पैरी
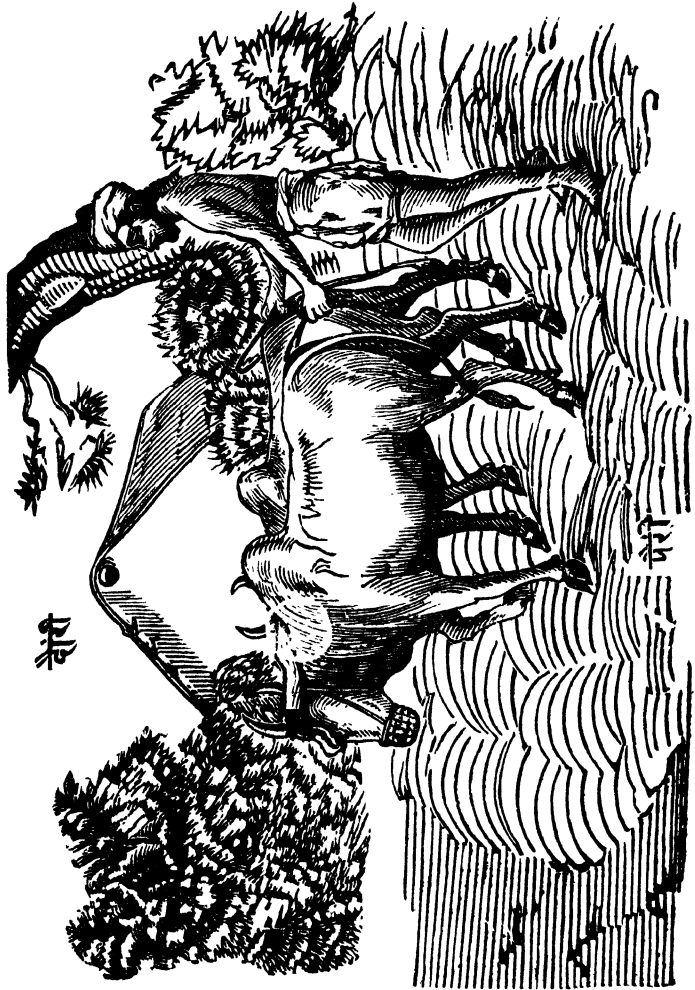
पुआल झगरा की तरह अलग जमा करते हैं। उसे गँड़ासी से काटकर पशुओं को खिलाते हैं।

गेहूँ, जौ, चना, उर्द, मूँग, मटर प्रभृति फसलों का दाना भूसा से अलग कर लेते हैं। यदि भूसा मोटा रह जाता है तो केवल भूसे पर दैंरी चलाकर उसे महीन करते हैं और पशुओं को खिलाते हैं।

६—ओसाई

पैरी पर जब शस्य अच्छो तरह से टूट जाते हैं कृषक उन्हें डलियों में भरकर अपने सर की उँचाई तक उठाकर दोनों हाथों से हवा के रुख खड़े होकर धीरे धीरे गिराते हैं। इस क्रिया को ओसाना कहते हैं। हाथ धीरे धीरे हिलाया जाता है जिससे शस्य धरती पर गिरता जाता है। अनाज भूसे से भारी होता है इसलिये वह उसके पैरों के पास गिरता है और भूसा कुछ दूर पर हलका होने के कारण हवा के वेग से गिरता है। ओसाने में हवा के वेग की बड़ी आवश्यकता होती है। जब हवा नहीं चलती कंबल या चादर से दो आदमी सामने हवा करते हैं और उसके सामने तीसरा आदमी शस्य ओसाता है। रबी के शस्यों के लिये चैत्र अथवा फाल्गुन में ऐसे ही कभी हवा का अभाव हो तो हो, नहीं तो हवा की कमी नहीं रहती। यदि ऐसा होता है तो उसके लिये कल के पंखों से हवा कर सकते हैं अथवा ऊपर कही

ओसाई

गई रीति से कंबल से हवा कर लेते हैं। पैरी पर यदि अनाज से कूड़ा करकट अलग कर दें तो अनाज साफ रहता है।

ओसाई के बाद कुछ लोग अनाज सूप में पछोरकर और बनाकर साफ करके रखते हैं। अधिक अनाजवाले ऐसा नहीं कर सकते। कुछ लोग लाभ के लिये अधिक गर्दा और खराब शस्य मिला लेते हैं कि तौल भारी हो जाय परंतु इससे भाव खराब हो जाता है।

कटाई, मड़ाई और ओसाई में अनाज की सफाई का विचार रहने से उसके पुनः साधारण अवस्था में साफ करने का न तो रिवाज है और न उसकी आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि अनाज अधिक होता है और सूप से पछोरने की क्रिया में अधिक परिश्रम और समय लगता है।

७—विशेष शस्य

विशेष शस्य जैसे ऊख की पैदावार को एकत्रित करने की रीतियाँ आवश्यकता के अनुसार होती हैं। कहीं वे चूसने के काम के लिये बाजार में भेजे जाते हैं। कहीं पेरकर उनसे रस निकालते हैं। रस उबालकर उससे राब, गुड़ तथा चीनी बनाते हैं।

नील की खेती जब से संयुक्त-रंग का प्रचार हुआ बंद हो गई और उसके कारखाने टूट गए। उसके काटने और भिगोने की रीतियाँ विस्तृत हैं।

कपास की फसल हाथों से चुनकर एकत्रित की जाती है। उसके बीज रुई से चर्खी अथवा जिनिंग मशीन (Ginning

ऊख पेरने का कोल्हू।
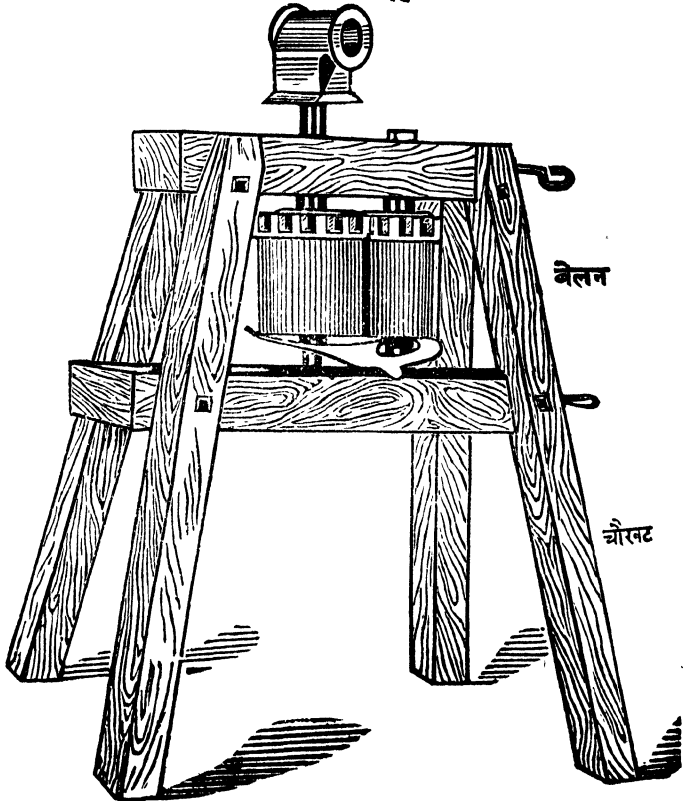
machine) से अलग किए जाते हैं। तंबाकू की पत्तियाँ नोच कर सुखाई जाती हैं। उन्हें कूटकर अथवा कड़ाही में

चारा और सन का गट्ठा बाँधने की कल।
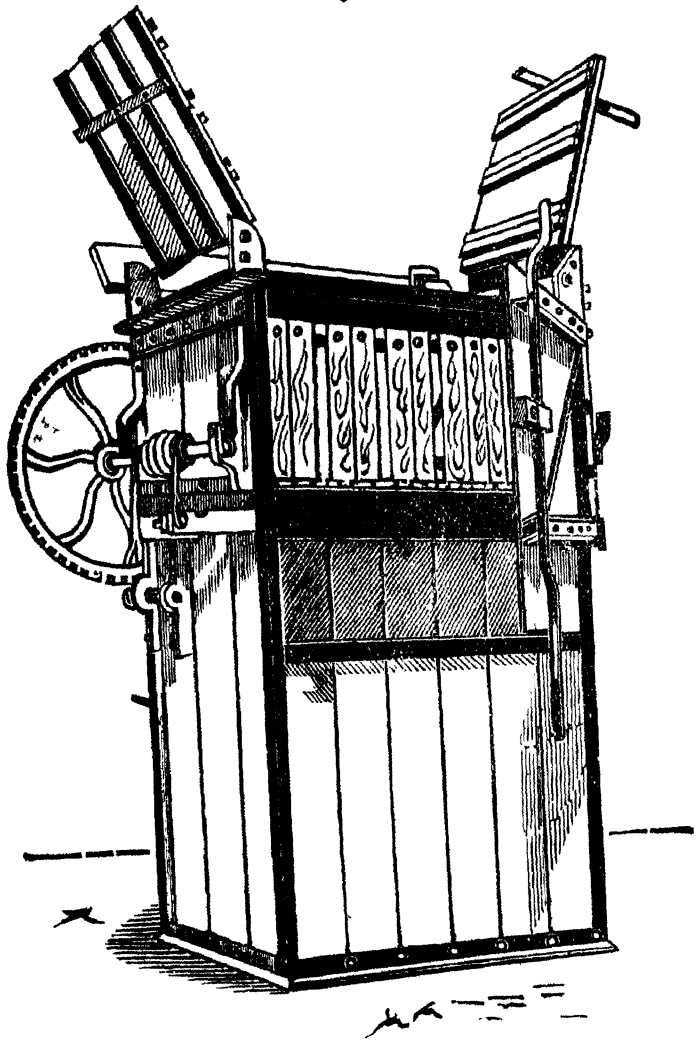
उबालकर विविध विधि के अनुसार खाने, पीने और सूँघने की तंबाकू बनाते हैं।

सनई के पौधे पानी में दबाए जाते हैं। उनको पानी में पीटकर सन अलग कर लेते हैं। फिर कल द्वारा उनके भटके बाँधकर बेचने के लिये भेजे जाते हैं।

पोस्ते की बोड़ी सूई से पाछी जाती है। उसका रस एकत्रित करके कच्ची अफ़यून, अफ़यून के मोहकमे को दे देना होता है।

सत्रहवाँ परिच्छेद

ईतियाँ और उनका निवारण

फसलों को बोआई से कटाई तक बहुत प्रकार की ईतियों का सामना करना पड़ता है। कुछ ऐसी हैं जिनका कि निवारण स्वयं किसान कर सकता है, कुछ ऐसी हैं जो एक साधारण किसान के हाथों से बाहर हैं। उनका निवारण करने के लिये कई किसानों को मिलकर उपाय करना पड़ता है। ये ईतियाँ पशु, पक्षी, कीट, पतिंगे, गिरुई, लवा प्रभृति होती हैं। व्यवहार से प्रतीत होता है कि जो आपदा जितने ही छोटे स्वरूप में है उससे उतनी ही अधिक हानि पहुँचती है। जहाँ तक संभव हो जब उनकी संख्या कम हो उसी समय उनसे छुटकारा पाने का प्रबंध करना चाहिए। जब वे बढ़ जाती हैं उनसे बचने का उपाय करना कठिन और मूल्य-वान् हो जाता है।

१—पशु ईतियाँ

मनुष्य—भुट्टे, फल, खरबूजे, ककड़ी प्रभृति तरकारियाँ चुरा लेते हैं। बोता कोई और है, चोर जब फसल तैयार हो जाती हैं दूसरे की खेती काट लेते हैं।

पशु—गाय, बैल, भैंस, घोड़े, बकरियाँ इत्यादि उगते तथा तैयार शस्य में पहुँचकर हानि पहुँचाते हैं। गाँवों में

प्रतिदिन यह सुनने में आता है कि आज उसने मेरे खेत को काट लिया। आज उसके पशु छूट गए थे। कोई कोई तो यथार्थ में जब सब सो जाते हैं पारी पारी से अपने पशु चरने को छोड़ देते हैं और बहाना करते हैं कि छूट गए थे। प्रायः चतुर और तेज पशु छोड़े जाते हैं, भद्दे और बोदे पशुओं के पकड़ जाने, चोरी चले जाने का भय रहता है। कभी कभी उन्हें पकड़कर मवेशीखाने में डाल देते हैं, कहीं चोर बाहर ले जाकर बेंच देते हैं, कहीं कहीं उन्हें मार डालते हैं।

बंदर तथा लंगूर—ये जहाँ पर अधिक हैं बोई फसल के बीज बीन बीनकर खा जाते हैं जिससे पौधे जमते ही नहीं। कहीं उगती फसल को नोच डालते हैं। कहीं तैयार फसल को खा जाते हैं।

सूअर और नीलगाय—जो खेत जंगली अंचल में हैं उनको जानवरों के झुंड से बड़ी हानि पहुँचती है। सूअर प्रायः रात के समय आक्रमण करते हैं। जड़ें उन्हें रुचिकर होती हैं। उन्हें खोद खोदकर वे खाते हैं और उगी फसलों को गिरा देते हैं। नीलगाय झुंड की झुंड मिलकर फसलें चर लेती हैं और उन्हें रौंद डालती हैं।

हरिन—उगती फसल को अधिक हानि पहुँचाते हैं। वे खेतों को रौंद भी डालते हैं।

सिआर—मकाई के भुट्टे खा जाते हैं। तैयार फसल नोचते हैं। ककड़ी, खरबूजा, तरबूज प्रभृति तरकारियाँ खराब

कर डालते हैं, ऊख को भी इनसे बड़ी हानि पहुँचती है। दूसरी फसलों को भी इनसे बड़ी हानि पहुँचती है।

खरहा—खरगोश उगती फसल चर लेते हैं और तैयार फसल खा जाते हैं।

साही—आलू, मूँगफली, शकरकंद प्रभृति जड़वाली फसलें खोदकर खा जाती हैं। उगते पौधों तथा पेड़ों को रौंदती हैं। तैयार फसलें और फल खा जाती हैं।

चूहे—खेतों में बस जाते हैं। दूर दूर तक बिल खोदते हैं। तैयार फसलें खा जाते हैं और बहुत सा अनाज या बालियाँ चुराकर बिलों में एकत्रित करते हैं।

गिलहरियाँ—पक्के फल तथा तैयार शस्य कुतुर देती हैं। इसी प्रकार अनेक प्रकार से अन्य पशु भी हानि पहुँचाते हैं।

२—निवारण

इन आपदाओं का निवारण रखवाली करने से हो सकता है और प्रायः जब से फसल बोई जाती है पारी पारी कृषक के परिवार के लोग या मजदूर अपने खेतों की रखवाली करते हैं। दिन भर में वे कई बार खेतों पर ढेलवास, गोफिन लिए घूमते हैं या सन काता करते हैं और खेत की देख भाल करते जाते हैं। रात्रि के समय कोई कोई रखवाली नहीं करते। ऐसे लोग कई आदमी मिलकर एक बूढ़ी औरत या आदमी को नौकर रख देते हैं जो रात भर की घटनाओं का पता रखता है। कुछ लोग स्वयं रखवाली करते हैं और रात में भी एक

दो फेरा खेतों का करते हैं। कुछ फसलों की रखवाली के लिये खेतों में मचान बाँधते हैं और ढेलवास, गोफिन लेकर उस पर

से हाँक लगाया करते हैं। कुछ फसलों की रखवाली के लिये जब पानी का भय नहीं रहता और साँप बीछी का डर, जैसा

बरसात में रहता है, जाता रहता है तो किसी उचित स्थान पर झोंपड़ी डालकर रखवाली करते हैं।

पशुओं को डराने तथा उन्हें भगा देने के लिये किसी थूनी के सहारे फटा हुआ बाँस या टीन का कनस्तर टाँग देते हैं। इसमें रस्सी लगी रहती है जिसको रखवार मचान पर से खींचते हैं। इसका शोर सुनकर पशु डर जाते हैं और भाग जाते हैं। रखवार हल्ला करते हैं और आग जलाते हैं। खेतों में जहाँ तहाँ आदमियों की भद्दी शकलें सरपत बाँधकर बनाते हैं और उस पर कंबल ओढ़ाते हैं, या काली हाँडी रख देते हैं। अँधेरी रात में एक मँड़ई से दूसरी मँड़ई या मचान तक बातचीत भी हुआ करती है। कृषक तंबाकू पीता रहता है और खाँसता रहता है। कुछ लोग फसलों के तैयार हो जाने पर बड़ी मुस्तैदी से रखवाली करते हैं। वे खेत ही पर भोजन बनाकर खा लेते हैं अथवा उनके घर से कुछ खाने को आ जाता है। ऊँची जातिवाले घर से खा पीकर तब रखवारी करने चलते हैं।

कहीं कहीं कुछ लोगों के पास पुराने ढब की पथरकला रहती है। ऐसी बंदूकों से पशुओं को भय दिखाने में अच्छी सहायता मिलती है।

चूहों के भगाने के लिये खेतों में तथा उनकी बिलों में पानी भर देने से वे भाग जाते हैं। थोड़े चूहे होते हैं तो एक नीच जाति जिन्हें मुसहर कहते हैं उनको फँसाकर खा जाते हैं।

खेतों की रक्षा चारदीवारी से की जाती है। उसके बनाने का वर्णन ऊपर आ चुका है।

३—पक्षी

बहुत से पक्षी केवल दाने पर बसर करते हैं। इस प्रकृति के पक्षी कृषि को अधिक हानि पहुँचाते हैं। वे बोए हुए खेतों का दाना चुग लेते हैं, तैयार शस्य और फल खा जाते हैं या कुतुर देते हैं, अनाज खा जाते हैं और बालियाँ गिरा देते हैं जैसे तोता और कौवा। रखवार गोफन में ढेला रखकर अथवा हाथ से ढेला फेंककर चिड़ियों को उड़ा देता है। पक्षियों को उड़ाने के लिये कनस्तर और फटे बाँस से भी शोर मचाते हैं।

कुछ लोग कौवों को डराने के लिये एक मरा हुआ कौवा बाँस पर ऊपर लटका देते हैं।

पौधों को हानि पहुँचानेवाले बहुत से कीड़े होते हैं। कुछ पक्षी इन कीड़ों को खा जाते हैं जिससे उनकी संख्या घट जाती है। ऐसे पक्षी कृषकों के मित्र होते हैं। आमिषी पक्षी प्रायः दाने को कम हानि पहुँचाते हैं।

४—कीड़े मकोड़े

कीड़े मकोड़े अगणित प्रकार के होते हैं। इनका अध्ययन जीवन-शास्त्र के अंतर्गत एक विस्तृत विषय है। कीड़ों मकोड़ों का कृषि से बहुत संबंध है। इनके द्वारा पुष्पों में पराग और गर्भ केसर का संयोग होता है जिससे दाना बनता

है। ये कीड़े तथा तितलियाँ फूलों पर रस तथा शहद के लिये बैठती हैं जिससे पराग केसर उनके बदन पर लग जाता है। जब वे दूसरे फूल पर जाते हैं पराग केसर उन पर गिर जाता है और वह गर्भ केसर तक पहुँच जाता है।

बहुत से कीड़े कृषि को लाभ पहुँचाते हैं। वे अन्य हानिकारक कीड़े मकोड़ों को खा जाते हैं।

बहुत से कीड़े कृपि को हानि पहुँचाते हैं। उनकी पेड़ों में छेद कर देते हैं, उनकी पत्तियाँ, दाना, फूल तथा फल खा जाते हैं जिससे पौधे बढ़ने नहीं पाते और उनकी पैदावार घट जातो है अथवा बिलकुल मर जाती है। जब तक इनकी संख्या कम रहती है इनके साथ युद्ध किया जा सकता है पर जब इनको संख्या बढ़ जातो है इनका नाश करना कठिन और महँगा हो जाता है।

इनकी क्षति एक कृपिकार के दूर करने से नहीं होती, क्योंकि एक खेत के कोड़े मर जाने पर दूसरे खेत में कीड़े फैल जाते हैं। इनके तथा गिरुई के दूर करने के लिये सब कृषकों के सहमत होने की आवश्यकता है।

छेदा एक प्रकार का कीड़ा है जो मटर, अरहर, चने की फलियों में घुसकर दाना खा जाता है।

भर्र, ढोला, गिरई, भुड़िला स्थान स्थान पर छेद करने-वाले कीड़ों के नाम हैं। वे बढ़ते हुए पौधों में अंडे देते हैं जिनसे कीड़े उत्पन्न होकर पौधों को हानि पहुँचाते हैं।

बागों में गुलाब प्रभृति वृक्ष तथा खेतों में अधिकतर सरसों, लाही और दुवाँ के खेतों में माहो से बड़ो हानि पहुँचती है। ये छोटे छोटे कीड़े हरे रंग के होते हैं। आलू
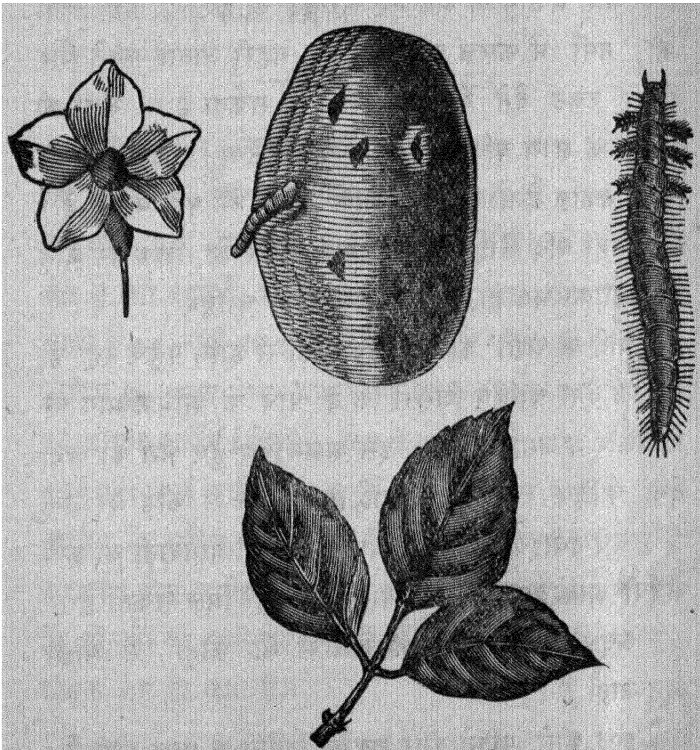
आलू का कीड़ा।

में छेद कर देनेवाला भुड़िला आलू के पौधों में छेद कर देता है तथा आलू को, जब वे जमा करके रखे जाते हैं, खा जाता

है। रुई के कीड़े उसके पेड़, रुई, बीज, फल, फूल को हानि पहुँचाते हैं।

५—निवारण

कीड़े मकोड़े के अंडे नष्ट कर देने चाहिएँ। यह खेतों की, गर्मी में फसल कट जाने पर, गहरी जोताई करने और मिट्टी उलट देने से सुगमता से हो सकता है। खेतों की जोताई के साथ यदि किसी पौधे की खूँटियाँ बाकी रहें तो उन्हें निकाल देना चाहिए क्योंकि कीड़े उन पर पलते हैं। और कहीं यदि कोई लकड़ी या खर पतवार हो, जिस पर कीड़े के अंडों का भय हो, तो उसे जला देना चाहिए।

पौधे के अंशों को जिन पर कीड़ों से हानि पहुँच रही हो निकाल देना चाहिए जिससे कि वे पौधे के अधिक भाग पर अधिकार न जमा सकें। इस अलग किए हुए अंश को जला देना चाहिए। पौधों पर दवाई छिड़क देने से कीड़े मर जाते हैं। ये दवाइयाँ अँगरेजी दवाईखानों तथा बागवानी या कृषि संबंधी आवश्यकताएँ बेचनेवालों के यहाँ मिल सकती हैं।

अदल बदलकर फसल बोने से भी कीड़ों से पीछा छूट जाता है।

कुछ कीड़े, पतिंगे और गुबरैले रोशनी के पास आते हैं। रात्रि के समय खेत में चिराग रख देने से उसके पास कीड़े जमा होते हैं। एक मिट्टी के बर्तन में पानी भरकर उसमें मिट्टी का तेल डाल दो। पानी में पत्थर, ईंट, या भारी

लकड़ी की दीवट रखकर उस पर तेज दीपक रखना चाहिए। आग जला देने से कीड़े उस रोशनी में आकर गिरते और स्वयं नष्ट हो जाते हैं। मसहरी के कपड़े के जाल बनाकर उड़नेवाले कीड़े पकड़ लेने चाहिएँ।

६—दीमक, टिड्डी, घुन

दीमक प्राय: निर्जीव जीवित पदार्थों पर फैल जाती है। पर इन्हीं पर उनका आक्रमण बंद नहीं है। वे गेहूँ, जौ, ऊख, गन्ने, मूँगफली प्रभृति बहुत से पौधों को, जब वे खेत में लगे रहते हैं, खा जाती हैं या अन्य स्थान पर हानि पहुँचाती हैं। जहाँ पर इनका अड्डा हो उसे खोदकर जला देना चाहिए। ताजा गोबर एक स्थान पर रख दिया जाय तो उस पर दीमक एकत्रित होंगी। जब वे एकत्रित हो जायँ तो उन्हें तुरंत जला देना चाहिए। इसमें सावधानी इस बात की होनी चाहिए कि अधिक दीमक न फैलने पावें, उन्हें शीघ्रता से नाश कर देना चाहिए और इस बात का पता लगाना चाहिए कि दीमकों की रानी कहाँ है, उसके नाश कर देने से कुल दीमक नष्ट हो जाते हैं।

इन्हें नष्ट करने की दूसरी रीति यह है कि सिंचाई कर दी जाय।

नीम या रेंडी की खली दीमक लगनेवाले खेतों में देनी चाहिए।

जब खेत काटे जायँ उनकी जोताई तत्काल कर देना चाहिए और खूँटियाँ निकाल देनी चाहिएँ। जब उन्हें भोजन का अवलंब न रहेगा वे नष्ट हो जायँगी।

टिड्डी—टिड्डी बलुए मैदानों में बढ़ती हैं। राजपूताना और सिंध की ओर से इनका झुंड का झुंड उड़ता है। वे गिनती में इतनी अधिक होती हैं कि हरियाली का विनाश कर देती हैं। इससे तो देखने में वैसी हानि नहीं मालूम होती पर संयुक्त हानि बहुत अधिक होती है। जब इनका आक्रमण होता है टीन के कनस्तर, ढोल, तासे बजाकर हल्ला करने से अथवा आग जलाने से उसका थोड़ा बहुत निवारण हो जाता है।

रेगिस्तानी मैदानों में जहाँ वे अंडे देती हैं वहाँ उनके अंडे नष्ट कर देने चाहिएँ अथवा जब वे अंडे से बाहर निकलकर फुदुकने लगें तो उन्हें बोरियों में बटोरकर नष्ट कर देना चाहिए।

घुन—प्रति वर्ष अन्न के व्यापारियों का बहुत सा अन्न घुन खराब कर देते हैं अथवा खा डालते हैं। छोटे छोटे कृषक उनका प्रबंध कर लेते हैं। वे अपना अनाज थोड़ा थोड़ा करके धूप में सुखाते हैं और फटकते हैं। बड़े बड़े व्यापारी जिनके पास अनाज का खत्ता होता है कई बार अनाज नहीं निकाल पैठाल सकते। यदि अनाज घुनने लगता है और उसकी देख भाल नहीं होती तो वह खराब होने लगता है। दाना

खोखला होने लगता है और बहुत सा कन्ना निकलता है। यह बोने के बीज के काम का नहीं रहता। खाने में इसमें कड़ुवा-पन आ जाता है।

अनाज को अच्छी तरह सुखाकर रखने से उसमें घुन नहीं लगता और अगर लगता है तो बहुत कम। इससे सहल उपयोगी सिद्धांत यही है कि अनाज अच्छी तरह सुखाकर रखा जाय। इसके पश्चात् उसको रखने में सावधानी होनी चाहिए कि उस पर नमी न असर करने पावे। बरसात के दिनों में अनाज न खुलना चाहिए। जहाँ घुन का भय अधिक रहता है वहाँ अनाज कई खानों में अथवा कई स्थानों पर रखना चाहिए जिससे यदि एक स्थान पर घुन लगे तो दूसरे स्थान का बचाव हो। यदि खाते पक्के बने हुए हैं तो उन्हें अच्छी तरह से साफ करके उनमें अनाज भरना चाहिए। कच्चे खातों को खूब लीप पोत और सुखाकर तब उनमें भूसे की तह देकर अनाज रखना चाहिए।

कोठले, कुंडे और घड़ों में अनाज रखकर उन्हें बंद कर देना चाहिए अर्थात् मिट्टी की गगरी या हाँड़ी रखकर मिट्टी से उसको मुँह पर लेस देना चाहिए जिससे बाहर से नमी न असर करे।

कीड़े मकोड़ों की रहन सहन आदि का अध्ययन जीवन-शास्त्रवेत्ताओं ने किया है। कृषि संबंधी उनके व्यवहार के अनुसार उनसे अपने शस्य की रक्षा करने अथवा उनको

नष्ट करने की रीतियाँ जानी गई हैं जिससे कृषक अपनी अवस्था की उन्नति कर सकता है। इस ज्ञान के अनुसार एक सहल रीति यही है कि अनाज खूब सुखाकर रखा जाय। अनाज में यदि घुन लग जाय तो उसको, यदि संभव हो तो, साफ करके नहीं तो उसी तरह उसके साथ नेपथेलीन रखे अथवा कार्बन वाई सलफाइड के अनाज पर डालने से अनाज की रक्षा होती है। दोनों दवाएँ अँगरेजी दवाखानों में मिलती हैं। कार्बन वाई सलफाइड को आग या किसी प्रकार की लौ से बचाना चाहिए, नहीं तो वह भभक उठेगी। जहाँ तक हो सके वर्षा ऋतु में गोदाम को न खोलना चाहिए।

७—फंजाई (Funjie.)

वनस्पति संसार में फंजाई एक प्रकार के छोटे श्रेणी के पौधों को कहते हैं। ये अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते वरन दूसरे पौधों द्वारा बनाया हुआ भोजन प्राप्त करते हैं। ये अवसर पाकर किसी दूसरे पौधे पर फैल जाते हैं और उस पौधे का रस चूस लेते हैं। इस प्रकार रस की लूट से पौधा अपना खाद्य पदार्थ एकत्रित नहीं कर सकता, दाना पोढ़ा नहीं होने पाता और पैदावार की कमी होती है तथा पौधा मुर्झा जाता है। फंजाई बहुत प्रकार के हैं, उनकी रहन सहन भिन्न भिन्न होती है। प्राय: गेरुई या रतवा, और कंडवा से जिस को अधिक हानि पहुँचती है।

ये प्राय: नमी पाकर बढ़ती हैं। बदली का होना इनके बढ़ने में सहायक होता है। ये खेत भर के शस्य पर अपना अधिकार अति शीघ्र जमा लेने की चेष्टा करती हैं। गेहूँ, जौ, तीसी पर जो गेरुई लगती है उसका रंग पीला, लाल अथवा भूरे लाल रंग का होता है। इसकी जीवनचर्या भिन्न है। वह पौधे के सब अंगों पर फैल जाती है जिससे इनकी एकट्ठा हानि बहुत हो जाती है।

जब पौधा तैयार हो जाता है एक प्रकार की फंजाई दाने पर आक्रमण करती है जिससे आटा काला हो जाता है। नमी पाकर पौधे उगते और बढ़ते दिखाई देते हैं परंतु उनका दाना बिलकुल मारा जाता है। ऐसी फसल के देखने से धोखा हो जाता है कि बढ़ती हुई फसल बेकाम है या अच्छी, और जब तक डाली पर नजर न डाली जाय उसकी असली-अत नहीं प्रतीत होती।

फंजाई के बीज बहुत हलके और छोटे होते हैं। ये एक फसल से दूसरी फसल तक पौधे पर अथवा धरती पर पड़े रहते हैं और जब उनके अनुकूल मौसिम होता है, बढ़ निकलते हैं और पौधों को हानि पहुँचाते हैं। इस अवस्था में फसलों के अदल बदल कर बोने से लाभदायक परिणाम देखे जाते हैं। यदि एक फसल पर कीड़े या फंजाई का आक्रमण हो तो उसके पश्चात् कुछ समय तक ऐसी फसल बोई जाय जिन पर उस प्रकार की फंजाई का असर न पड़े और

उनकी वृद्धि न हो। इन ईतियों की जीवनचर्या से विदित होता है कि एक का जीवन दूसरे से भिन्न है। ऐसा देखा गया है कि एक प्रकार के ऊख के बजाय दूसरे प्रकार का ऊख बोया गया तो नए प्रकार के ऊख पर फंजाई का आक्रमण नहीं हुआ। एक प्रकार के गेहूँ पर प्रति वर्ष गेरुई लगती थी उसी जगह दूसरे प्रकार का गेहूँ बोने से उसका आक्रमण नहीं हुआ। ऐसी फसलों का प्रबंध और उन्नति साधारण बात नहीं है। इनका पता लगाना और स्थान और काल के अनुसार इनका प्रबंध करना अनुभव का काम है। इस विषय में स्थानीय फसलें जो सफलता से बोई गई हैं उनका पता सरकारी कृषि विभाग में लग सकता है जहाँ कृषि के विद्वान् ऐसी छान बीन किया करते हैं अथवा स्वयं जमींदार उसका अनुभव कर सकते हैं। अगले साल के लिये बीज ऐसी फसलों से चुनना चाहिए जिनमें कि गेरुई या कंडुआ न लगा हो। कंडुआ लगी हुई फसल का बीज फौरमैलीन या तूतिया के पानी में भिगोकर और सुखाकर बोना चाहिए।

८—खर पतवार

खर पतवार के बीज सभी जगह उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कृषक सावधानी से उन्हें न निकाले तो ऐसा होता है कि वे बोई हुई फसल से अधिक वेग से बढ़ते हैं और फसल को दबा लेते हैं। इनको जड़मूल से निकाल देने से इनका निवारण हो सकता है। खेत को साफ करने के लिये इस बात

पर ध्यान देना चाहिए कि उनको फूलने फलने से पहिले ही खोदकर निकाल दिया जाय ताकि आगामी बार इनके बीज धरती में न गिरने पावें और प्रति वर्ष इनकी कमी होती जाय, जब तक कि ये साफ न हो जायँ। यद्यपि यह कठिन है पर सबको उद्योग करना उचित है। फलने पर इनके बीज धरती में गिर जाते हैं और प्रति वर्ष अपने समय पर बढ़ते हैं। बीज हलके होने के कारण वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ जाते हैं अथवा कृषक की लापरवाही से खाद के साथ खेत में आते हैं या पशु ऐसे वनस्पतियों का भोजन करते हैं और उनके गोबर के साथ वे खेत तक पहुँच जाते हैं। सब किसान मिलकर यदि इनको दूर करने का प्रयत्न करें तो इनके नाश करने में सफलता प्राप्त हो सकती है। जो खर पतवार जड़ या तने से बढ़ते हैं उनका कोई भाग खेत में पड़ा न रहने देना चाहिए नहीं तो नमी पाकर वह दुबारा उग आवेगा।

अठारहवाँ परिच्छेद

शस्य

कृषि की साधारण रीतियों के वर्णन के उपरांत हम पाठकों को अधिक समय तक एक एक फसल के बोने काटने और उनके संबंध की अन्य क्रियाओं के विशेष वर्णन में नहीं लगाना चाहते। इस कारण विस्तारपूर्वक वर्णन का क्रम छोड़कर नीचे एक तालिका दी जाती है जिससे संक्षेप में हर एक फसल की परिचर्या, जो संयुक्त प्रांत में बर्ती जाती है, विदित हो जायगी।

हमने हर एक फसल के लिये विस्तारपूर्वक व्यवस्था लिखी है किंतु इस स्थान पर हमें वह व्यर्थ ज्ञात होती है क्योंकि हर एक फसल के बोने काटने और उन फसलों के संबंध की अन्य क्रियाएँ स्थान स्थान पर मनुष्य की अवस्था के अनुसार भिन्न भिन्न होती हैं। इस अवस्था में केवल संयुक्त प्रांत की कृषि के वर्णन से सबको लाभ नहीं पहुँच सकता, परंतु एक प्रांत की व्यवस्था ज्ञात हो जाने पर अन्य स्थानों की बातों का पता लगाने में सुगमता हो जायगी।

१—तीन फसलें

फसलें तीन हैं—

खरीफ—अथवा बरसात की फसल। इसे सावनी या जेठी भी कहते हैं।

रबी—अथवा जाड़े की फसल। इसे चैती भी कहते हैं।

जायद—अथवा गर्मी की फसल। इसे जेठ, वैशाख की फसल कहते हैं। इसमें प्रायः ककड़ी, खरबूजा, चना अथवा बोरो धान बोते हैं।

२—ऋतुचक्र

बसंत	ग्रीष्म	वर्षा
चैत, वैशाख	जेठ, आषाढ़	सावन, भादों
अप्रैल, मई	जून, जुलाई	अगस्त, सितंबर
शरद	हेमंत	शिशिर
कुवार, कार्तिक	अगहन, पूस	माघ, फागुन
अक्तूबर, नवंबर	दिसंबर, जनवरी	फरवरी, मार्च

एक जोड़ी बैल के लिये ७ से १० बीघा धरती चाहिए। एक एकड़ धरती के लिये १०—१५ घंटा समय लगता है। एक एकड़ निराई या मिट्टी चढ़ाई के लिये १०—१५ आदमी लगते हैं। गेहूँ की फसल काटने में १०—१२ आदमी लगते हैं।

नीचे उन चीजों के नाम दिए जाते हैं जो भिन्न भिन्न फसलों में बोई जाती हैं—

३—खरीफ (बरसात)

अनाज—

(१) मकई — Zeamays.

(२) धान — Oryza sativa.

(३) ज्वार — Andronopogon sorghum, sorghum vulgare.

(४) बाजरा — Pennisetum typhoideum.

(५) मंडुवा — Eleusine coracana.

(६) कोदों — Paspalum scrobiculatum.

(७) साँवाँ — Panicum frumentaceum.

(८) काकुन — Setaria italica.

(९) कुटकी — Panicum silopodium.

दाल—

(१०) अरहर — Cajanus indicus.

(११) उर्द — Phascolus radiatus.

(१२) मूंग — Phaseolus mungo.

(१३) मोठ — Phaseolus aconitifolius.

(१४) लोबिया — Vigna Catiang.

(१५) गोवार — Cyamposis psoralioides.

तेलहन—

(१६) तिळ — Sesamum indicum.

(१७) एरंड — Ricinus communis.

(१८) मूँगफली — Arachis hypogea.

रेशे की फसलें—

(१९) कपास — Gossypium neglectum.

(२०) सनई — Crotolaria juncea.

(२१) भाँग	Cannabis sativa.
(२२) पटसन	Hibiscus cannabinus.

अन्य फसलें—

(२३) शकरकंद	Ipomaea batatas.
(२४) रामदाना	Amaranthus candatus.

४—रबी (जाड़ा)

अनाज—

(१) गेहूँ	Triticum sativum.
(२) जौ	Hordeum vulgare.
(३) जई	Avena sativa.

दाल—

(४) चना	Cicer arietinum.
(५) मटर	Pisum arvense.
(६) मसूर	Ervum lens.
(७) केसारी	Lathyrus sativus.

तेलहन—

(८) सरसों	Brassica campestris.
(९) लाही	Brassica juncea.
(१०) दुआँ	Eruca sativa.
(११) अलसी	Linum usitatissimum.
(१२) कुसुम, बरें	Carthamus tinctorius.

अन्य शस्य—

(१३) पोस्ता	Papaver somniferum.
(१४) तंबाकू देसी	Nicotiana tabacum.
,, कलकतिया	Nicotiana rustica.
(१५) मूली	Raphanus sativus.
(१६) गाजर	Dancus carota.
(१७) आलू	Salanum tubersum.

५—चारे की फसलें

(१) लूसर्न

(२) गिनी घास

६—विशेष समय की फसलें

(१) नील	Indigofera tinctoria.
(२) ऊख	Saccharum officinarum.
(३) चेना	Panicum miliaceum.
(४) सिँघाड़ा	Trapa bispinosa.
(५) पान	Piper betle.

७—कछियाना

(१) बंडा, अरुई	Colocasia indica.
(२) शलजम	Brossica campestris.
(३) प्याज	Allium cepa.
(४) लहसुन	Alium sativum.
(५) जमींकंद	Amorphophallus campanulatus.

(६) गोभी (फूल)   Brassica obracea.

(७) गांठ गोभी

(८) करमकल्ला (पातगोभी)

(९) पोदीना   Mentha sylvestris.'

(१०) बथुआ   Chenopodium album.

(११) चौराई   Amarantus gangeticus.

(१२) पालक   Spinach.

(१३) पोई   Basella rubra.

(१४) परवल   Trichosanthes disica.

(१५) घिया तरोई   Luffa egyptiaca.

(१६) करेला   Momordica charantia.

(१७) चचींदा   Trichosanthes anguina.

(१८) ककड़ी   Cucumis melo var utilissimus.

(१९) तरबूज   Citrullus vulgaris.

(२०) खरबूजा   Cucumis melo.

(२१) फूट   Cucumis momordica.

(२२) पेठा   Benincasa cerifera.

(२३) सीताफल   Cucurbita moschata.

(२४) खीरा   Cucumis sativus.

(२५) कद्दू   Lagenaria valgaris.

(२६) बैंगन भाँटा   Salanum melongena.

(२७) मरसा, अनार-दाना, पोश्रा Amarantus paniculatus.

(२८) स्ट्राबेरी Fragaria vesca.

(२९) विलायती बैंगन Lycopersicum esculentum.

(३०) भिंडी, रामतरोई Hibiscus esculentus.

(३१) आरारूट Maranta arundinacea.

(३२) अद्रक Zinziber officinale.

(३३) सौंफ

(३४) धनिया Coriandrum sativum.

(३५) हल्दी Curcuma longa.

(३६) लाल मिर्च Capsicum annoum.

(३७) सोवा

(३८) मेथी

(३९) सेम

इन सब फसलों का विशेष ब्योरा आगे दी हुई सारिणी से विदित होगा।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

पशु-पालन

भारतवर्ष ऐसे कृषिप्रधान देश में कृषि का कुल बोझा पशुओं पर और उनमें भी अधिक गोसंतान पर है। भैंसों और कल द्वारा थोड़ो बहुत सहायता मिलती है। हल चलाना, पानी उठाना, अनाज दाना, अनाज ले जाना, खाद देना इत्यादि सभी काम पशुओं द्वारा होते हैं। इन्हीं का भरोसा है और इन्हीं द्वारा अन्न उपार्जन होता है। इनका पालन करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। इनके साथ कोई अन्याय करना बड़ी कृतघ्नता है।

इनके प्रजनन का सब जगह उचित ध्यान नहीं दिया जाता। प्रजनन के मुख्य मुख्य स्थान हैं, जहाँ जरूरत के अनुसार पशु मिलते हैं। दूध देनेवाले पशु, गाड़ी खींचनेवाले पशु, हल चलानेवाले पशु अपने अपने विशेष गुणों और आवश्यकता की पूर्ति करने के गुणों के अनुसार चुने जाते हैं। कृषि के लिये सबसे अच्छे और आवश्यक कामकाजी पशु वे होते हैं जो सख्ती सहन कर सकें, तेज, मजबूत और मेहनती हों। ऐसे पशु उसी समय उत्पन्न हो सकते हैं जब उनके माता पिता बलवान् होंगे। इसलिये प्रजनन में इस बात पर मुख्य ध्यान रखना चाहिए।

हर जगह अपनी आवश्यकता के अनुसार पशुओं के न मिलने से कृषि का कारबार ठीक नहीं चलता। बिना अच्छे पशुओं के अच्छा काम नहीं होता।

हर जगह अच्छे पशु नहीं मिलते। ऐसी जगहों में उन्हें बाहर से मँगाना अच्छा होता है।

सब जगह प्रजनन के लिये सुविधा नहीं होती। इसके लिये चारा पानी, जल वायु आदि आवश्यक हैं। भरपूर भोजन न पाने से पशु बलिष्ठ नहीं होते; इसलिये जहाँ पशुओं को ये सुविधाएँ हैं वहाँ ही के पशु अच्छे होते हैं।

१—पशुओं का भोजन

कामकाजी पशुओं के खरीदने में दाम लगाकर उन्हें बाँध रखना ही कृषक का कर्तव्य नहीं होता, उसे जहाँ तक बन पड़े पशुओं के भोजन का उचित प्रबंध करना चाहिए। भोजन का प्रयोजन यह है कि उससे पेट भरे और बल बढ़े। केवल पेट भर देनेवाले भोजनों में इतनी शक्ति नहीं होती कि वे बल प्रदान करें। इस काम के लिये भोजन में बल प्रदान करने के अंश वर्तमान होने आवश्यक हैं।

पशु प्राणी भी उन्हीं पदार्थों से बना हुआ है जिनसे कि पौधे बने हैं, परंतु वह उन्हीं पदार्थों को, जिन्हें पौधे भोजन के लिये प्रयोग करते हैं, खा पीकर नहीं रह सकता। वह उन्हीं पदार्थों को दूसरे रूप में अपने भोजन के काम में लाता है जो कि अधिकांश पौधों के अंश होते हैं।

पौधों के अंश में अधिक तत्व दाने में होता है। उसके भूसे और करबी में भी पौधों के अनुसार थोड़ा बहुत तत्व रहता है। भोजन की आवश्यकता पूर्ण करने तथा पशु में बल और मांस उत्पन्न करने के लिये उसको पूर्ण तत्व का भोजन देना उचित है। केवल करबी और पुवाल में बल देनेवाले बहुत ही कम तत्व हैं। इससे पशु जीवित रहते हैं पर अच्छा काम नहीं कर सकते।

जहाँ अच्छे पशु हैं वहाँ के कृषक धनवान् हैं। उनके पास अधिक धरती होती है जिसमें से कुछ भाग में वे अपने पशुओं के लिये चारा पैदा करते हैं। परंतु वे कृषक जिनके पास धरती कम है अपने और अपने कुटुंबियों के लिये पर्याप्त अन्न उत्पन्न करने में व्यग्र रहते हैं जिससे वे और उनके पशु दरिद्र बने रहते हैं।

पशुओं को चारा, दाना, बिनौला, खली और नमक का देना उचित है। खली को कूटकर पानी में भिगो देना चाहिए। जाड़े में आठ घंटे के लगभग और गर्मी में चार घंटे के लगभग खली भीगी रहनी चाहिए। बिनौले कूटकर तथा दाना दलकर देना अच्छा है। प्रति सानी नमक और तेल का देना पशुओं को बलवान् बनाता है। हरा चारा देने से पशु रुचि से भोजन करते हैं और उनमें अधिक बल आता है। हरा चारा दूध देनेवाले पशुओं को देना अच्छा फल देता है।

सरसों, तीसी, लाही, दुवाँ, तिल, कुसुम की खलियाँ अच्छी होती हैं। चोकर, चूनी, भूसी, दाना के साथ या उसके बजाय इस्तेमाल होती हैं।

सुबह और शाम, तथा काम करने के पहले और पश्चात् भोजन देना चाहिए। मनुष्यों पर अकाल पड़ने से पशुओं के चारे की कमी दुस्सह दुख देती है। खराब और कम भोजन पानेवाले पशुओं में अधिक बीमारी फैलने का भय रहता है। जमींदारों को ऐसी दुर्घटना के लिये चारा एकत्रित करना चाहिए। सरकार की ओर से तथा बहुत से उदार धर्मात्मा सेठों और धनवानों से प्रायः इसमें सहायता मिला करती है।

२—पानी

पशुओं को साफ पानी देना चाहिए। जो पानी कृषक स्वयं न व्यवहार कर सके उसे पशुओं को न देना चाहिए। प्रायः पानी की कमी नहीं होती, काहिली और लापरवाही के कारण पशुओं को खराब पानी का कष्ट भुगतना पड़ता है।

बस्ती के पास के गँदले गड़हों का पानी कदापि न देना चाहिए। जहाँ पोखरे, नहरें, नदी या अन्य शुद्ध जलाशय नहीं हैं वहाँ कुएँ से पानी पिलाना चाहिए। खराब पानी से पशुओं का स्वास्थ्य खराब हो जाता है और उन पर बीमारी शीघ्र आक्रमण करती है। पशुओं को नियत समय पर दिन में २–३ बार पानी पिलाना चाहिए।

३—रहन-सहन

पशुओं से काम लेने के साथ साथ हमारा यह भी कर्तव्य है कि हम उनकी रक्षा करें। गर्मी और जाड़े की कठिनाइयों से उन्हें बचावें, बरसात में पानी के झोकों से उनकी रक्षा करें। अच्छे और मूल्यवान् पशुओं की रक्षा तो थोड़ी बहुत की जाती है पर सब जीवों पर दया रखना उचित है। अच्छी तरह पशुओं को रखने से उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है। वे बलवान् बने रहते हैं और अधिक काम करते हैं। पर कठिनाइयों का सामना करने से उनकी हिम्मत टूट जाती है और वे कमजोर हो जाते हैं, अधिक काम नहीं कर सकते। अच्छी रहन-सहन के लिये साएदार तथा हवादार मकान बनाने की आवश्यकता पड़ती है। पशुओं को बिछावन और ओढ़न दिया जाता है और यथासंभव अवस्था के अनुसार उनकी अन्य आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं।

जैसे मनुष्यों को व्यायाम की आवश्यकता स्वास्थ्य स्थिर रखने के निमित्त होती है वैसे ही पशुओं को भी होती है। जब पशु काम में न हों उन्हें एक ही स्थान पर खूँटा सेने को न बाँधना चाहिए। उनके चरने और डोलने फिरने का प्रबंध होना उचित है।

४—बीमारियाँ

अच्छी रीति से रखे गए, खिलाए पिलाए पशुओं को साधारणतः बीमारियाँ कम होती हैं। इसके विपरीत दशा

होने पर पशु बीमार होते हैं परंतु यह कोई नियम नहीं है। कोई बीमार हो सकता है और अच्छा हो सकता है या मर जा सकता है। जहाँ तक शीघ्र संभव हो बीमारियों का इलाज करना उचित है। साधारण बीमारियों का इलाज सुगमता से हो सकता है।

पशुओं में बवाई बीमारियाँ फैल जाने से कुल के कुल पशु एक ही बार या एक या दो बार करके मर जाते हैं जिससे कृषिकार की बड़ी क्षति होती है। कभी कभी तो वह पुनः पशु खरीद न सकने के कारण खेती छोड़ देता है। इन बीमारियों के फैलने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं। उनसे बचने का उचित उपाय करना चाहिए। ऐसा करने से प्रायः देखा गया है कि पशु बच जाते हैं।

जब बवा फैलती है हर प्रकार से बीमार पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। उनके संबंध से, उनका जूठा चारा खाने से, उनका पानी पीने से तथा उनकी जूठी चरनी में खाने से, उनकी काठी या पगहा या रस्सी इस्तेमाल करने से यह रोग हैजे के समान छूत से लग जाता है।

एक ही आदमी दोनों प्रकार के पशुओं से संबंध रखता है तो भी वह बीमारी फैलाता है। कुत्तों के इधर उधर आने जाने से बीमारी लग जाती है।

सड़क के किनारे हवा के रुख पशुओं को बाँधने से किसी बीमार पशु की बीमारी उन्हें लग जाती है।

बीमार पशुओं के छुए नाल से या जिस यंत्र से उनके नाखून काटे गए हों उनके छू जाने से भी बीमारी लग जाती है।

मरे पशुओं के मवाद या उनके चमड़े के संसर्ग से भी बीमारी फैल जाती है। सारांश यह कि किसी प्रकार की असावधानी से यदि बीमार और स्वस्थ पशुओं का संबंध हो तो पशुओं में बवा फैल जाने का भय होता है। इस अवस्था के अनुसार चमारों को चमड़ा देना हानिकर है। इससे अच्छी एक अनुभव की बात यह ज्ञात हुई है कि पशु को कुल मवाद के साथ जला देवे और जहाँ वह रहा हो साफ करके कई बार आग सुलगाकर सफाई कर दे। यदि ईंधन न मिले तो छः फुट गहरे गड़हे में पशु की लाश गाड़ दे और ऊपर से चूना देकर डेढ़ फुट मिट्टी से पाट दे। किसी अभागे आदमी की नीयत चमड़े की ओर न डोले और उससे बीमारी का भय न उत्पन्न हो, इसलिये उचित है कि चमड़ा चाकू से काटकर खराब कर दिया जाय। इस रीति से चमड़ा जल्दी गल जाता है और भय भी छूट जाता है।

अलग रखने के अतिरिक्त कोई साधारण बिना दाम का उपाय इन बीमारियों से बचने का नहीं मालूम है और चतुर कृषक हर अवसर पर अलग रखने के विचार का पालन करते हैं।

कृषि-विज्ञान के चमत्कार के उदय के साथ टीका लगाने की रीति प्रचलित करके प्रजावित्सल सरकार ने बड़ा उपकार किया है। मवेशियों को टीका लगाने से उनकी उतनी ही

रक्षा हो जाती है जैसे मनुष्य की चेचक के टीका से। टीका लगाने में कुछ व्यय भी नहीं है। कृषि विभाग के अधीन तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के अधीन सरकारी पशु अस्पताल के शालिहोत्री मुफ्त टीका देकर कृषकों का बड़ा उपकार करते हैं। नई रीति होने के कारण इसके प्रतिकूल कुछ घृणा और तास्सुब है, जो ज्ञान के प्रकाश से नष्ट होता जाता है।

५—गोशाला

कृषि का एक मुख्य अंग गोशाला है। दूध, दही, घी, मक्खन, केसीन, क्रीम इत्यादि दूध से अनेक अमृत तुल्य दुर्लभ पदार्थ तैयार होते हैं। उनसे उपयोगी और लाभकारी पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यह एक अलग ही विषय है जिसके सूक्ष्म रूप से यहाँ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।

६—पशु-पालन

अच्छी कृषि के लिये अच्छे पशुओं का उत्पन्न करना अत्यंत आवश्यक है। यह पशु-पालन के उद्देश्य के अनुसार पहला उपकारी, आवश्यक और लाभकारी विषय है।

हमारे देश में प्रायः गोवंश की वृद्धि और उन्हीं के आश्रित खेती पर ध्यान दिया गया है। इनसे हमारी कृषि का विशेषतः कुल काम चलता है। कहीं कहीं भैंस से कुछ सहायता मिलती है। भैंसें दूध देती हैं और भैंसा गाड़ी, हल खींचते हैं, बोझा ढोते हैं तथा अन्य प्रकार से उपयोगी सिद्ध

होते हैं। उनके भोजन और रहन-सहन का उचित प्रबंध करना दूसरा आवश्यक विषय है।

जिन्हें इस बात पर विचार नहीं है वे मुर्गी पालते, उनके अंडे तथा बच्चे खाने के लिये बेंचते और लाभ उठाते हैं। वे भेड़ बकरियों को भी खाने के निमित्त तैयार करते हैं। भेंड़ बकरियों को वे दूध, ऊन और खाद के उद्देश्य से भी पालते हैं। मुर्गी और तीतर इत्यादि पक्षी फसल के कीड़ों को खा जाते हैं। उनकी बीट से खाद मिलती है।

७—चारा और उसका प्रबंध

पशुओं को चैत से जेठ तक रबी की फसलों से भूसा मिलता है। कोई कोई साल भर के लिये भूसे का प्रबंध कर लेते हैं। चैत में भूसा सस्ता मिलता है, आषाढ़ से भादों तक बरसाती घास और करबी पर गुजारा किया जाता है। पानी बरसने के कारण भूसे के अभाव में यदि घास न मिल सकी तो गीली धरती और बरसते पानी में घास करना बड़ा कठिन हो जाता है। करबी या हरी ज्वार सब काश्त-कारों के पास काफी नहीं होती जिससे कठिनाई झेलनी पड़ती है। काफी भूसा, जैसे, जौ, गेहूँ, चना, मटर, केसारी इत्यादि का, रख लेनेवाले निश्चिंत रहते हैं। हरे चारे के लिये कुछ हिस्सा अगैती चरी बो देने से कठिनाई मिट जाती है। कुवार से जब तक नया भूसा नहीं हो जाता खरीफ के घटिया शस्यों के डंठल और पुवाल पर तथा भदई दाल के भूसे पर पशुओं

को अवलंबित होना पड़ता है। हरी घास भी इस समय मुश्किल से मिलती है। ऐसे समय के लिये जब फ़सलें कटती हैं भूसा और करबी लेकर रख छोड़नी चाहिएँ। बरसात में उगी हुई बहुत सी खिलाने योग्य घास सुखाकर साल भर के खर्च के लिये रख छोड़नी चाहिए। चारे के लिये लूसर्न एक अच्छी घास है जिसकी खेती से साल भर बराबर चारा मिलता है। बरसात में इसकी कटाई छोड़ दी जाती है। उस समय अन्य चारे भी मिल सकते हैं। बोआई कार में होती है। एक बार की बोई हुई ५, ६ वर्ष तक काम देती है। यह अत्यंत बलदायक और पुष्ट चारा है। मूँगफली के बोने-वाले भी अच्छे समय पर चारा पा जाते हैं जिससे उनके पशुओं का काम चलता है। सबसे अच्छी बात चारे का रखना होता है।

चारा काटने के लिये खुरपी, हँसिया और गँड़ासी का इस्तेमाल किया जाता है। गँड़ासी से चारा छोटे छोटे टुकड़ों में काटा जाता है। जिनके पास अधिक पशु होते हैं उनके लिये दो चार आदमी गँड़ासी से चारा मारते हैं। ऐसी दशा में जिनके पास अधिक बैल, गाय, भैंसे हों, अथवा कई आदमी मिलकर कुट्टी काटने की मशीन मोल ले लेवें तो उनके समय और मेहनत में बचत हो जायगी। इसकी कीमत लगभग ४०) के है।

हरा चारा गड्ढों में भी रखते हैं। जब ज्वार या मक्का की चरी फूलने को होती है तब काटकर गड्ढों में भर देते हैं।

चारा काटने की मशीन
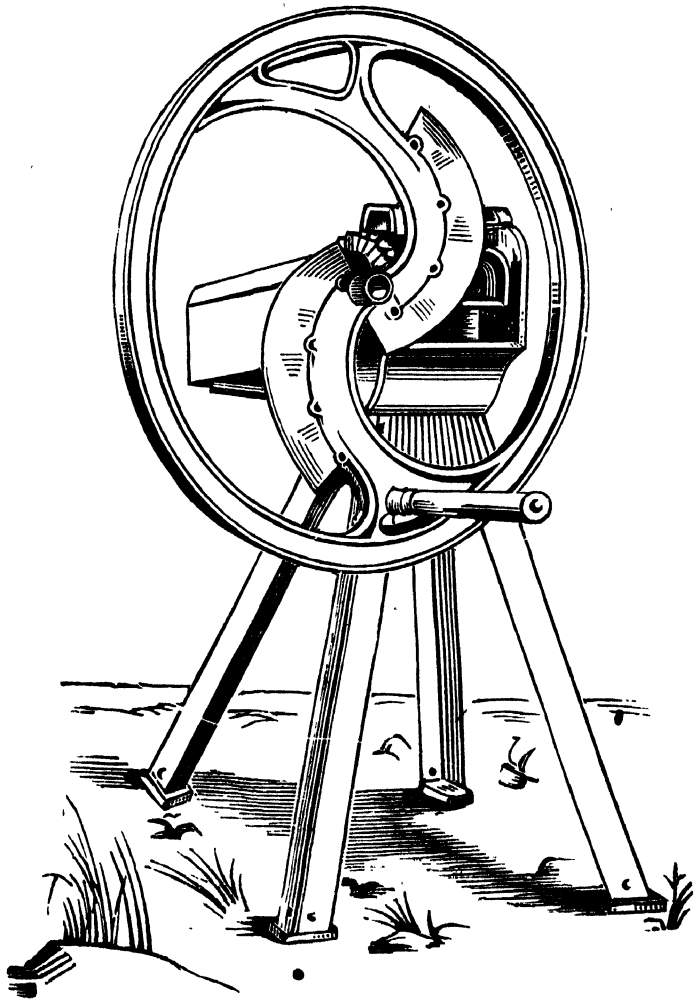
भरते समय दबाते जाते हैं। ऊपर से इस तरह से बंद कर देते हैं कि वर्षा का पानी अंदर नहीं जाने पाता। गड्हे ऊँची जगह पर बनाए जाते हैं। यह चारा भूसे के साथ मिलाकर खाने को दिया जाता है। गड्हे पक्के भी बनाए जा सकते हैं। धरती के ऊपर भी इस काम के लिये पक्के घर बनाए जा सकते हैं।

बीसवाँ परिच्छेद

कृषि-चमत्कार

पाश्चात्य (Europe) और पाताल लोक (America) में कृषि की अद्भुत उन्नति का हाल सुनकर बड़ा अचंभा होता है। आजकल अनेक विद्वानों ने कृषि में अद्भुत उन्नति की है। उन्होंने वनस्पति और रसायन विद्या में पारदर्शित विद्वत्ता से नवीन चमत्कार दिखाया है और उसमें वे बराबर उन्नति करते जा रहे हैं। हमारे कृषि-प्रधान देश में इन विद्वानों के स्थान पर लुटावन पासी और जोखू भर अपने टुटुहूँ टूँ की राग अपने ठाकुर शहजोर सिंह के साथ अलाप रहे हैं। किसी को हल की मुठिया काट रही है, कोई खाद की बदबू से नाक दबाए है, कोई खेती को गँवारों का पेशा बतलाता है। किसी प्रकार जोई नहीं सोई सही कुछ खेतों में पवार दिया जाता है, न तो हल है न बैल, और न बीज ही मिलता है। खेती की उन्नति की कौन कहे। यदि एक फसल में हल है तो एक बैल है, दूसरी में बैल नहीं, पुनः बैल है तो बीज नहीं यह हमारी दशा है।

ठाकुर साहब की खेती प्रायः उनके नौकरों के बुरे या अच्छे होने के अनुसार बदलती रहती है। अधिकांश मजदूर गँवार, अनपढ़ और विद्याहीन होते हैं।

ठाकुर साहब मुकदमेबाजी में अपनी संपत्ति को नष्ट करने, उसमें अनेक दाँव पेंच लगाने और उसके साथ स्वयं फँसते जाने में मकड़ी के जाले में फँसी हुई मक्खी के समान हो जाते हैं। वे अपनी गिरवो को छोड़ाने के लिये फड़फड़ाया करते हैं। निज प्राप्त धन के महत्त्व को भूलकर वे पैत्रिक अथवा दैवात् प्राप्त धन की आकांक्षा में लगे रहते हैं।

वे अपने मजदूरों का भी उचित प्रबंध नहीं कर सकते; न तो उनके रहने को मकान बनवा सकते हैं, न उनकी दरिद्रता दूर करने की चेष्टा करते हैं। यदि क्रोधित हुए तो उनका मकान भले ही उजाड़ने चलते हैं।

इन गृह-कलहों और जंजालों के परे जहाँ स्वतंत्रता का मार्ग है वहाँ उन्नति की चाट है। वहाँ आलस्य का नाम नहीं है, समय नष्ट करने को कौन कहे एक समय में कितना ही कार्य संचित किया जाता है! रात दिन लोग किसी आदर्श शिखर की ओर निश्चित मार्ग से जाने की चेष्टा में लौलीन दिखाई देते हैं। विज्ञान के उच्च शिखर पर भी वे इसी प्रकार चढ़ते दिखाई देते हैं। रेल, जहाज, बेतार की तारवर्की, टेली-फोन, टेलीग्राफ, व्योमयान, ग्रामोफोन इत्यादि विज्ञान कला-कौशल के अद्भुत नमूने हैं। ये एक ही दिन में नहीं बने; एक ने उसका रूप खड़ा किया, दूसरे ने उसमें कुछ जोड़ा घटाया, क्रमशः निर्माण में उन्नति होती गई और उनका सफल स्वरूप खड़ा हो गया। आज दिन इतने पर भी वे लोग अपने

को बिलकुल परिपूर्ण नहीं समझते, और उनके विद्वान् अपने अनुभव से अधिक उन्नति और कमाल दिखलाने की चेष्टा में अपना सर टकराया करते हैं और मनुष्य के जीवन के प्रत्येक विभाग में उन्नति करने की चेष्टा में पड़े हैं।

कृषि भी इससे वंचित नहीं है। चाहे फोनोग्राफ की मधुर ध्वनि के बिना सुने मनुष्य भले रह सकता है पर बिना भोजन पाए कोई भी नहीं रह सकता। इस बात को संसार में सभी जानते हैं और उसका अनुभव करते हैं। कितने ही विद्वानों ने अपना समस्त समय इस ओर लगा दिया है और मनुष्य के कल्याण की कितनी उन्नति की है।

लूथर वरबैंक नामी अमरीकन विद्वान् ने छोटे फलों और फूलों को बहुत बड़ा और मीठा उत्पन्न करके उनकी रीति दिखा दी है। जो जामुन और बेर झरवरी के समान होते थे उन्हें छोटे अमरूद के बराबर तक उसने उत्पन्न करके दिखाया है। इसी प्रकार वनस्पति-विज्ञानवेत्ताओं ने बिना बीज के फल उत्पन्न किए हैं। काँटेदार और बिना काँटे के पौधे फल फूल उत्पन्न करते हैं। अधिक मीठा और स्वादिष्ट फल पैदा करते हैं। बिना भूसी का जौ, पाले से बचनेवाला गेहूँ, तीन प्रकार की अरहर, बिना रोग की कपास हमारे देश में कृषिमार्तंड कृषि विज्ञानवेत्ताओं ने उत्पन्न की है जो प्रजा-वत्सल गवर्नमेंट के कृषि विभाग के उद्यमों का नतीजा है। यह प्रति दिन तरक्की कर रहा है और कृषकों को लाभ पहुँचा रहा है।

कोई समय था जब शक्कर केवल ऊख से उत्पन्न होती थी। ऊख अधिकांश गर्म मुल्कों ही में होता था। जर्मनी के लोगों को एक साल शक्कर नहीं के बराबर मिली। वहाँ की सरकार ने अपने कृषिवेत्ता विद्वानों से यह प्रश्न किया—क्या शक्कर ऊख के अतिरिक्त और किसी चीज से नहीं उत्पन्न कर सकते? इस पर वहाँ के धुरंधरों ने अनेक कष्ट उठाए और बहुत प्रयोग करने पर चुकंदर से शक्कर निकालने की ठानी और उसमें वे सफल हुए और आज सैकड़ों मन चुकंदर की शक्कर उत्पन्न होती है।

किसी समय भारतवर्ष में नील की बहुत खेती होती थी जिससे बहुत द्रव्य उपार्जन होता था। वैज्ञानिकों ने बनावटी नील का रंग उत्पन्न करके ऐसा नील दिया कि बड़े बड़े कारखाने नष्ट हो गए। ऐसा ही प्रयोग आटे से रासायनिक क्रियाओं द्वारा शक्कर बनाने में किया जा रहा है। क्या जाने ये क्रियाएँ फलीभूत हो जायँ और आटे से शक्कर बनने लगे तो जो दशा नील की हुई वही ऊख की हो। क्योंकि रासायनिक क्रियाओं के योग वियोग से जो वस्तु तत्काल तैयार होती है उसके आगे महीनों कृषि कर्मों में परिश्रम करके वह वस्तु उत्पन्न कराई जाती है। ऐसी अवस्था में जब कृषि में ऐसी उन्नति हो कि रसायन शास्त्र से मुकाबिला कर सके तो काम चले।

कृषि-शास्त्र के वैज्ञानिक सिद्धांतों से यह सिद्ध हो गया है कि यदि किसी मनुष्य को लाभ का ध्यान न हो और उसके

पास प्रयोग करने को काफी धन हो तो वह जिस शस्य को जहाँ और जिस समय चाहे बोकर इच्छित फल प्राप्त कर सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह बात असंभव नहीं है; उसको केवल व्यावहारिक रूप में लाने की आवश्यकता है।

जब यह मालूम होता है कि किसी वस्तु की माँग है तो उसे बोने से अधिक लाभ होता है। यदि ऐसी वस्तु साधारण समय से कुछ पहले प्राप्त हो जाय तो और भी अधिक दाम मिलते हैं। हमारे देश में मटर की फली, गोभी, मकई के भुट्टे, बेर इत्यादि फल इसके उदाहरण हैं। अधिक लगान पर खेत लेकर लोग इन्हें बोने का प्रबंध करते हैं। सुनते हैं इंग्लैंड में दूर से इच्छित खाने की चीजें ले जाने के लिये बरफिस्तानी जहाज और रेलें बनी हुई हैं। कितने फ्रांस से बहुत सी वस्तुएँ लाया ले जाया करते हैं। आस्ट्रेलिया, अमेरिका और हिंदुस्तान तक से दूध, गोस्त, मक्खन, क्रीम, अंडे इत्यादि ले जाते हैं। इन जहाजों में वैज्ञानिक रीति से पदार्थों को संचित करने का प्रबंध रहता है जिससे बिगड़नेवाले पदार्थ भी खराब होने से बचे रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि कृषिकार अपने पदार्थ युक्ति द्वारा दूर दूर भी भेजकर लाभ उठा सकते हैं और अपने रुपए का मूल और सूद समझकर लाभ कर लेते हैं। इन्हीं प्रबंधों से गरम देश में उगनेवाले पौधे फल फूल शीशे के मकानों में बोए जाते हैं, उनमें कृत्रिम रूप से भाफ की गरमी पहुँचाई जाती है और समयानुसार इच्छित

फल प्राप्त किए जाते हैं। इसी प्रकार कृत्रिम झील, झरने, तालाब बनाकर उनके ऊपर सर्द मुल्क के पौधे उत्पन्न करते हैं।

हमारे देश में बहुत सी उपयोगी वस्तुएँ उनका प्रयोग न जानने के कारण निष्फल फेंक दी जाती हैं अथवा उन सबसे अधिक लाभ नहीं उठाया जाता। ऊख को लीजिए। योरपवाले ऊख की चीनी लेने के उपरांत उसके बचे शीरे से शराब बनाते हैं जिससे चीनी से किसी प्रकार कम रुपया नहीं उत्पन्न होता। साधारण आलू की फसल का हाल सुनिए। आलू से माँडा निकालकर उससे कलफ करते हैं। आलू से शराब, स्पिरिट भी बनाते हैं जो मोटरकार और चूल्हों के जलाने के काम में आती हैं। आलू से पशुओं के लिये भोजन बनाते हैं। दूध से प्राप्त केसीन पदार्थ से इसी प्रकार हाथीदाँत के तुल्य छाते की मूठें वा तशतरियों की पालिश इत्यादि तैयार होती है। आस्ट्रेलिया का एक विद्वान् बालसिली, जो बिजुली और बेतार की तारबर्की का प्रतिष्ठित पंडित है, यथेच्छ कृत्रिम वर्षा करने का प्रयोग कर रहा है। उसकी युक्ति को कई विद्वानों ने युक्ति-संगत और कार्यकर बताया है जिससे कि आस्ट्रेलियन सरकार ने इस आविष्कार की उपयोगिता की विशेष रूप से परीक्षा करने के लिये आज्ञा और सहायता दी है। यदि यह आविष्कार यथार्थ में सफलीभूत हो गया तो आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के रेगिस्तानी भाग किसी समय हरे भरे हो जायँगे।

जिस समय अधिक शीत पड़ता है प्राय: पाले का भय होता है। यदि आकाश साफ हुआ, हवा बंद हो गई और शीत बढ़ता गया तो अवश्य पाला पड़ जाता है, महीनों की कमाई व्यय और परिश्रम पर पानी फिर जाता है और पाला पड़ जाने से शस्य ख़राब हो जाते हैं। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि यदि घना धुआँ कृत्रिम रूप से शस्य के ऊपर फैला दिया जाय तो पाला निवारण हो जाता है। इस अनुभव के अनुसार कई प्रकार की आतशबाजियाँ बनाई गई हैं जिनके द्वारा धुआँ उत्पन्न करके पाले का निवारण करके शस्य बचा लेते हैं।

ऐसे ही अनेक उपायों के द्वारा कृषिकार अपने अनुकूल क्रियाओं का प्रयोग करता है। अनेक व्यय और मेहनत बचानेवाली मशीनों द्वारा खेत जोते, बोए और काटे जाते हैं, पानी और दवाएँ छिड़की जाती हैं, चारा काटा जाता है और शस्य एकत्रित किए जाते हैं।

भारतवर्ष में उत्तम कृषि का मुख्य कारण अच्छा बीज बहुत खराब हो गया है। उसके एकत्रित करने का सुप्रबंध होना अति आवश्यक है। अन्य देशों में केवल बीज बेचने के लिये बीज-शालाएँ स्थापित हैं जो अच्छा और निर्दोषित बलिष्ठ बीज उत्पन्न करके और जाँच करके बेचती हैं। लाखों मन बीज हर साल बिकता है। यदि वे अच्छा बीज नहीं उत्पन्न कर सकते तो दूसरे स्थानों से मँगाकर बोते हैं। यह एक उत्तम व्यवसाय है जिसको शिक्षित लोग उठा सकते हैं।

दूसरा अभाव अच्छे बैल प्राप्त करने का है। उसके लिये पशुशालाएँ और पशु-चिकित्सालय स्थापित होना अत्यंत आवश्यक है।

कृषि के लिये रुपए की आवश्यकता पूर्ण करने के निमित्त सहकारी बंकों का होना लाभदायक है। भारतवर्ष की दशा सुधारने और जमींदारों और काश्तकारों को सहायता देने के लिये कृषि-संरक्षक प्रजा-पालक सरकार ने कृषि विभाग कायम किया है जो एक अत्यंत दीर्घदर्शी और अनुभवी डायरेक्टर के संचालन में काम करता है। डायरेक्टर कानून बनानेवाली कौंसिल का मेंबर होता है और पास होनेवाले कानूनों पर राय देता है।

डायरेक्टर के अधीन कृषिवेत्ता विद्वान् काम करते हैं और प्रजावर्ग को बिना किसी प्रकार की फीस या और कुछ लिए कृषि-कर्म्मों में घर बैठे सहायता देते हैं। कृषि विभाग के संबंध में प्रति सूबे में एक एक बड़े विद्यालय स्थापित हैं जिनमें छात्रों को कृषि की ऊँची शिक्षा दी जाती है। भारतवर्ष में इस समय कानपुर, लायलपुर (पंजाब), पूना (बंबई), नागपुर (मध्यप्रदेश) तथा कोयंबटोर (मदरास), में ऐसे विद्यालय हैं। पूसा (बिहार) में एक बहुत बड़ा कृषि कार्य्यालय बना हुआ है जहाँ धुरंधर कृषि विज्ञानवेत्ता कृषि को उन्नति देनेवाली बातों की छान-बीन किया करते हैं।

जमींदार और कृषिकार जो कृषि-संबंधी उन्नति करना चाहते हों, अथवा जिन्हें अपने कार्य में कुछ कठिनाई हो वे

कृषि विभाग से सहायता ले सकते हैं। एक पत्र लिख डाक द्वारा भेज देने से घर बैठे उसका उत्तर मिल जायगा। यदि किसी अफसर के भेजने की आवश्यकता होगी तो कृषि-विभाग कोई अफसर भेजकर जमींदार तथा कृषिकार की कठिनाई दूर कर देगा।

कृषि के ऊपर जो कुछ हमने लिखा है पाठकों को उसी पर संतोष न करना चाहिए। यह एक बहुत व्यापक विषय है। केवल पुस्तकों के पढ़ने से सब कुछ नहीं हो सकता। जहाँ आँखें खोलकर देखने की आवश्यकता है वहाँ आँखों से देखे, जहाँ हाथों की जरूरत है वहाँ हाथों से काम करे और अपने लिये स्वयं अनुभव प्राप्त करे। यदि किसी को कृषि का चमत्कार और इस विज्ञान की महिमा देखनी हो तो वह अपने जिले के सरकारी प्रयोगालय को देखे अथवा किसी कृषि महाविद्यालय में जाय। उसको वहाँ के कर्मचारी बड़े सत्कार से सब बातें दिखावेंगे और बतलावेंगे।

हम सौभाग्य से एक संगठित और स्थापित राज्य में रहते हैं जहाँ कहने सुनने और करने का अवसर हमें प्राप्त है। हमें अपनी योग्यता से अपनी उन्नति करनी चाहिए।

यह समय एक साथ मिलकर काम करने का है। दूसरे देशों में सहयोगी धंधों ने बड़ी उन्नति की है और वे करते चले जा रहे हैं। हमारे देश में भी सहकारी कृषि बंकों ने यह सिद्ध कर दिया है। उनकी सहायता से व्यापारी नियमों के

अनुसार हमें अच्छा बीज उत्पन्न करने के लिये कृषिशालाएँ, दूध, दही और पशु-पालन के लिये पशुशालाएँ; पशुओं के बीमा के लिये पशु बीमा कंपनी, रुपया का लेन देन करने के लिये सहकारी बंक, अनाज बेचने के लिये आढ़तें इत्यादि आवश्यक धंधों पर ध्यान देना चाहिए जिससे उद्योगी धंधों की उन्नति हो और हमारा देश सब प्रकार से संपन्न और सुखी हो ।

परिशिष्ट

नाप

कृषक को अपने खेतों को नापने की आवश्यकता पड़ती है। इस देश में स्थान स्थान पर नाप बदलते देख पड़ते हैं। अँगरेजी नाप जो जारी है उसके पैमाने हम नीचे लिखते हैं। नापने का विषय सरवे के अधीन है और उसका वर्णन हमारे विषय से परे है। परंतु साधारण ज्ञान के लिये हम कुछ पैमाने नीचे लिख देते हैं—

३ जौ या एक पैसे की लंबाई करीब एक इंच के होती है।

१२ इंच का एक फुट।

लंबाई के पैमाने

३ फुट = १ गज ५$\frac{१}{२}$ गज = १ पोल

४० पोल या २२० गज = १ फरलांग

८ फरलांग या १७६० गज = १ मील

देशी पैमाने

८ जौ = एक अंगुल ३ अंगुल = एक गिरह

८ गिरह = एक हाथ २ हाथ = एक गज

१$\frac{१}{२}$ फुट = एक हाथ १८ इंच = एक हाथ

२ बालिश्त = एक हाथ ४ अंगुल = एक मुट्ठी

३ मुट्ठी = एक बालिश्त

धरती नापने के अँगरेजी पैमाने

७९२ इंच = १ कड़ी

१०० कड़ी = १ जरीब गंटरी

४ पोल = ,,

२२ गज = ,,

१० जरीब = १ फरलांग

१०,०० कड़ी = १ ,,

८० जरीब = १ मील

८०,०० कड़ी = १ ,,

१ जरीब गंटरी = २२ गज

= ६६ फुट

= १० गठा

= १०० कड़ी

= ४ पोल

देशी पैमाना

३३ इंच = १ हिंदुस्तानी गज

$\frac{११}{१२}$ अँगरेजी गज = १ हिंदुस्तानी गज

३ हिंदुस्तानी गज या २$\frac{३}{४}$ अँगरेजी गज = १ गट्ठा

२० गट्ठा या ६० हिंदुस्तानी गज या ५५ अँगरेजी गज = १ जरीब

१ पोल = ६ हिंदुस्तानी गज = २ गट्ठा

क्षेत्रफल नापने का अँगरेजी पैमाना

१४४ मु० इंच = १ मु० फुट

६ मु० फुट = १ मु० गज

३०$\frac{1}{4}$ मु० गज = १ मु० पोल

४० मु० पोल या १२१० मु० गज = १ मु० रोड

४ मु० रोड या ४८४० मु० गज = १ मु० एकड़

६४० मु० एकड़ = १ मु० मील

१०,००० मु० कड़ी या

४८४ मु० गज = १ मु० जरीब

१० मु० जरीब = १ मु० एकड़

१,००,००० मु० कड़ी = १ मु० एकड़

देशी पैमाने

२० तिनवांसी = १ अनवांसी

२० अनवांसी = १ कचवांसी

२० कचवांसी = १ बिसवांसी

२० बिसवांसी = १ बिसवा

२० बिसवा = १ बीघा

२० बिसवा या ३०२५ मु० गज = १$\frac{5}{8}$ एकड़ = १ बीघा

एक एकड़ = ३२ बिसवा

१ बीघा १० बिसवा १७ धुर = १ एकड़

देशी पैमाना

एक जरीब लंबा × १ जरीब = १बीघा

जरीब × गट्ठा = बिसवा

गट्ठा × गट्ठा = बिसवांसी

कदम × कदम = कच्चा बिसवांसी

जरीबें तीन किस्म की होती हैं—

(१) गंटरी

(२) सरवेरी या वर्कमेस्टरी

(३) शाहजहानी या हिंदुस्तानी

१ गंटरी जरीब = २२ गज अँगरेजी

१ सरवेरी जरीब = ३३$\frac{1}{3}$ गज अँगरेजी

१ शाहजहानी या हिंदुस्तानी जरीब = ५५ गज अँगरेजी

५५ × ५५ गज अँगरेजी = १ बीघा

६० गज हिंदुस्तानी × ६० गज हिंदुस्तानी = १ बीघा = ३०२५ मु० गज अँगरेजी

मील	फरलांग	पोल	गज	फुट	इंच
१ =	८ =	३२० =	१७६० =	५२८० =	६३३६०
	१ =	४० =	२२० =	६६० =	७९२०
		१ =	५$\frac{1}{2}$ =	१६$\frac{1}{2}$ =	१९८
			१ =	३ =	३६
				१ =	१

१ पोल = २५ कड़ी